महारानी कुमारदेवी

(धूमकेतु की गुप्तकालीन उपन्यास-माला का 'राज्य-क्रांति' के बाद का उपन्यास)

मूल लेखक

धूमकेतु

*

अनुवादक

श्यामू संन्यासी

वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड

३, राउण्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई-२

• प्रथम संस्करण

१९६१

• मूल्य : ५.००

• प्रकाशक :

के. के. वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी
पब्लिशर्स, प्रा. लि.
३, राउण्ड बिल्डिंग,
कालबादेवी रोड,
बम्बई २.

• मुद्रक :

मुहम्मद शाकिर,
सहयोगी प्रेस,
१४१, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद ३.

प्रकाशकीय

'धूमकेतु' की गुप्तकालीन उपन्यास-माला ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है। इस उपन्यास-माला के माध्यम से लेखक ने भारत के स्वर्णिम अतीत की झाँकी अपने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की है। उस पुरातन काल की वीरता, साहस और शौर्य, अभिजात्य कुलों का कला-प्रेम और सांस्कृतिक सौष्ठव, राजपुरुषों के षड्यंत्र और दुरभिसन्धियाँ, सैनिक अभियान और विजय-पराजय का अविरत चलता हुआ चक्र सभी कुछ इन उपन्यासों में चित्रित और वर्णित हुआ है।

'कुमारदेवी' भारतीय इतिहास की एक जाज्वल्यमान पात्र रही है। इतिहास के प्रवाह को इस महीयसी महारानी ने मोड़ा है। गणतंत्रात्मक शासन-प्रणालि की व्यर्थता को देखकर कुमारदेवी ने सारे देश के लिए उपयुक्त चक्रवर्तीत्व की राजतंत्रात्मक प्रथा का उपोद्घात किया। पुराणों में जिस 'आसेतु-हिमालय एकराष्ट्र' की परिकल्पना की गई थी उसे इस वीर नारी ने सार्थक कर दिखाया।

'धूमकेतु' ने इसी ऐतिहासिक पात्र को अपने इस उपन्यास में जीवन्त किया है। कुमारदेवी इस कथा की प्राण है, ओज है, विद्युत्-प्रेरक शक्ति है। उससे अनुप्राणित चन्द्रगुप्त साहस और वीरता के भगीरथ कार्य करता है। काचदेव का आत्मत्याग और चर-कार्य पाठक को विस्मय-विमुग्ध कर देता है। महाबलाधिकृत कुंजरक और महामात्य मंत्रगुप्त की उपहासास्पद स्थिति मधुर परिहास की सृष्टि करती है।

'धूमकेतु' की यह उपन्यास-माला परिवारों में 'घरेलू पुस्तकालय' और पुस्तकालयों में बहुपठित पुस्तकों की कोटि में रखे जाने के योग्य है।

— सूची —

प्रवेश

पुष्यमित्र सुंग के वंश का अन्तिम राजा था देवभूति। उसका वध किया उसी के महामात्य वासुदेव ने। यह घटित हुआ ईसा पूर्व पहली शताब्दी में। इस घटना के पश्चात् मगध का महान राज्य अपने महत्त्व को पुनः गँवा बैठा। आन्तरिक कलह के परिणामस्वरूप देश छिन्न-भिन्न हो गया।

अराजकता का वह युग शकों, यवनों, पार्थियनों एवं यूनानियों के लिए स्वर्ण अवसर था। ये सभी विदेशी आक्रान्ता अभी भी महान सिकन्दर के विश्व-विजय के स्वप्न को चरितार्थ करना चाहते थे। भारत का चक्रवर्ती सम्राट् बनने की महत्त्वाकांक्षा इनमें से सभी के मन में थी।

अपने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए इनमें से प्रत्येक ने भारतवर्ष में अपनी सत्ता स्थापित करने के प्रयत्न किये। कइयों ने अपने पाँव दृढ़ता से जमा भी लिये। कुछ समय के लिए दक्षिण के शातवाहन राजा भी रंगमंच पर आये, परन्तु वे अधिक प्रगति नहीं कर सके। उनका आना-न आना एक-जैसा ही रहा। सुदूर दक्षिण से लेकर पाटलीपुत्र तक के विशाल साम्राज्य को सँभालना और उसका सुचारु संचालन करना उनके बूते की बात न थी।

बाहर से आनेवाले यूनानी यवन और शक राजा बौद्ध धर्म के प्रेमी और अनुगामी भी थे। सम्भवतः यही कारण था कि देश की जनता उन्हें आदर की दृष्टि से देखती थी। मिनेण्डर की लोकप्रियता के सम्बन्ध में तो यहाँ तक

कहा जाता है, कि जब वह मरा तो उसकी भस्म और अस्थियों को विभिन्न प्रदेशों के लोग अपने यहाँ स-सम्मान ले गए।

कुशान-वंश के शक राजा कनिष्क ने भी भारतवर्ष में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। उसने मद्र, मथुरा और गंगा-यमुना के मध्य का समस्त प्रदेश जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। पाटलीपुत्र को भी उसने जीता था। वह चेदि देश (वर्तमान बुन्देलखंड) तक बढ़ आया था और मालव, अवन्ती, सौराष्ट्र, सिन्धु तथा सौवीर में उसने अपने क्षत्रपों एवं महाक्षत्रपों को नियुक्त किया था। पुष्पपुर, जिसका वर्तमान नाम पेशावर है, उसकी राजधानी थी। इसे केन्द्र बनाकर उसने भारतवर्ष का बहुत बड़ा भू-भाग अपने अधिकार में कर लिया था। वह अपने समय का भारतवर्ष का चक्र-वर्ती सम्राट् माना जाता था। भारतवर्ष के अतिरिक्त काश्मीर और काश्मीर के उस पार गान्धार और बल्ख-बुखारा तक उसका साम्राज्य फैला हुआ था। इसी लिए कनिष्क ने पाटलीपुत्र के स्थानपर पुष्पपुर को अपनी राजधानी बनाया था। उसके समय के अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं। वह अपने नाम के आगे 'देवपुत्र' और 'राजातिराज' उपाधियों का प्रयोग करता था। भारत-विजय के जिस महान स्वप्न को सिकन्दर पूरा न कर सका, उसे कनिष्क ने पूरा किया। चीन के प्रतापी सेनापति चान-पाऊ से भी उसने युद्ध किया था। काश्मीर और काश्मीर के परे उसके साम्राज्य की सीमा चीन देश की सीमा का स्पर्श करती थी। सीमा-सम्बन्धी विवाद को लेकर ही चीन से उसका युद्ध हुआ था। अजातशत्रु अशोक के बाद बौद्ध भिक्षुओं का सम्मेलन करने-वाला पहला राजा भी वही था। उसने यह सम्मेलन काश्मीर में किया था।

कनिष्क के पश्चात् उसके वंशज यवन शकपति अनेक वर्षों तक भारत में राज्य करते रहे।

परन्तु ये विदेशी धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति का विनाश करने लगे। संस्कृत भाषा के गौरव को भी इन्होंने नष्ट किया। लिपि तक में परिवर्तन कर डाला। इनका प्रतिरोध करने की सामर्थ्य उस समय किसी में नहीं थी। बौद्ध होने के कारण भारतीय उन्हें अपने देशवासियों-जैसा ही समझते थे।

कनिष्क के समय में पाटलीपुत्र का क्षत्रप बनस्पर नाम का एक शक

था। पुराणों में उसका उल्लेख 'विश्वस्फूर्ति' नाम से किया गया है। यह श्मश्रुविहीन वनस्पर भारतीय संस्कृति का कट्टर रिपु था। भारतीय संस्कृति को विनष्ट करने में इसने कोई कसर बाकी न छोड़ी। अपने शासन-काल में इस क्षत्रप ने गौ-ब्राह्मणों की मर्यादा और महत्त्व को पूरी तरह नष्ट किया। इसके राज्य में गाय और बैल के वध को खुली छूट थी। कैवर्त, किरात, मद्र के निवासी, शूरसेन जनपद के रहनेवाले और कुभाकुल (काबुल) के पुलिन्द यवनों को बुलाकर उसने उन्हें ठेठ चेदि तक क प्रदेशों का अधिकारी नियुक्त किया। ब्राह्मणों और क्षत्रियों का वह सब तरह से अपमान और अवगणना करता था। उसके द्वारा प्रवर्तित यह नीति आगे चलकर कुशानों की स्थायी राजनीति बन गई। अपने राज्य में उसने अग्नि की पूजा पर प्रतिबन्ध लगाया, नाग-पूजा को नाम शेष किया और अग्नि-मन्दिरों का विध्वंस कर डाला।

इस प्रकार जब प्रजा शक शासकों के अत्याचारों से त्राहि-त्राहि कर रही थी, कोई सुरक्षित नहीं था, करों की बहुलता के कारण लोगों की कमर टूटी जा रही थी, नीति और नैतिकता नाम को भी नहीं रह गई थी तब भारशिवों ने विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया। उन दिनों वर्तमान ग्वालियर के समीप पद्मावती नाम का एक नगर था। यही नगर भारशिवों का केन्द्र और उनकी राजधानी थी। काश्मीर के राजा अशोकपुत्र जालौक की ही तरह भगवान शंकर के प्रतीक को लेकर ये भारशिव शक-अधिपतियों के अत्याचारों का अन्त करने के लिए उठ खड़े हुए। त्रिशूल इनकी मुद्रा थी। अपनी पताका पर इन्होंने वृषभ को अंकित किया और इसी लिए ये वृषभध्वज कहलाये।

इन्होंने कुशानों को चेदि देश से भगाया, गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी से मार भगाया, मथुरा और मद्र देश से निकालते हुए ये उन्हें भारत की सीमा तक खदेड़ते चले गए। लेकिन यह कार्य पाँच-सात वर्षों में नहीं, पूरे सवा-सौ वर्षों में जाकर सम्पन्न हुआ।

इस महत्त्वपूर्ण कार्य को दो राजवंशों ने मिलकर सम्पन्न किया। एक राजवंश भारशिवों का था और दूसरा राजवंश वाकाटकों का। वाकाटकों को विन्ध्यक भी कहा जाता है। ये विन्ध्य-प्रदेश के निवासी और द्रोणाचार्य के वंशज भारद्वाज थे। ईसा की तीसरी शताब्दी तक भारशिवों ने अपने तीन-

चार राज्य स्थापित कर लिये थे। उनके राज्यों की सीमा गंगा-यमुना के तटवर्ती प्रदेशों तक विस्तारित हो चुकी थी। गंगा-यमुना के समीपवर्ती भार-शैव राजवंश की एक शाखा में भवनाग नाम का एक प्रतापी राजा हुआ। वह अपने समय का अत्यन्त शक्तिशाली योद्धा और रणनिपुण सेनापति था। कांतिपुरी नाम का नगर इस राजवंश की राजधानी थी। इलाहाबाद और मिर्जापुर के समीप कहीं यह नगर पुराणकाल में अवस्थित था। आजकल वहाँ 'कन्तीत' नाम का एक छोटा-सा गाँव है। चम्पावती भी एक ऐसी ही महत्त्वपूर्ण राजधानी थी। यह नगर वर्तमान विहार राज्य में कहीं था।

भारशैव भवनाग की ही टक्कर का उस काल का दूसरा योद्धा था वाका-टकराज प्रवरसेन। ये दोनों उस समय के भारतवर्ष के परमप्रतापी और अतुलित बलशाली राजा थे। भवनाग का राज्य गंगा-यमुना के प्रदेश में था और प्रवरसेन का विन्ध्याचल में विदिशा नगर की ओर। भारतवर्ष से विदेशी आक्रान्ताओं को निष्कासित करने के लिए इन दोनो शक्तिशाली नरेशों ने संयुक्त रूप से एक महान अभियान आरम्भ किया। यह कार्य जितना दुष्कर था उतना ही पेचीदा भी। छोटी-सी भूल, जरा-सी असावधानी, थोड़ी-सी असहिष्णुता अथवा यत्किञ्चित् उतावलापन सारे किये-कराये पर पानी फेर सकता था; और तब देश में ही देशद्रोही उत्पन्न हो जाते। इसलिए दोनों राजवंशों ने पारस्परिक विवाह-सूत्रों से अपने सम्बन्धों को दृढ़ कर लिया। प्रवरसेन के युवराज गौतमीपुत्र का विवाह भारशैव भवनाग की राजकन्या के साथ सम्पन्न हो गया। इस प्रकार दो शक्तिशाली राजघराने मिलकर एक हुए। इन दोनो राजघरानों के पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध का एक कारण यह भी हो सकता है कि उन्हीं दिनों कनिष्क के एक वंशज ने अपनी राजकुमारी का विवाह पार्शव शासानुशास अर्थात् ईरान के शाहन्शाह के साथ करके अपनी दुर्बल स्थिति को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया था।

दोनो राजघराने एक तो हो गए, परन्तु विदेशियों को निष्कासित करने का काम वास्तव में बड़ा ही कठिन, लगभग असम्भव-सा ही, था। कनिष्क एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करके मरा था। वृद्धावस्था में गान्धार पर्वत को पार करते हुए उसकी मृत्यु हुई। उसने गान्धार में पुरुषपुर और

काश्मीर में कनिष्कपुर नामक दो नये और सम्पन्न नगरों की स्थापना की थी। बौद्ध-मतावलम्बी होने और बौद्ध-संघों के अधिवेशन करने के कारण भारतीय जनता उसे सद्भावना की दृष्टि से देखती थी। देश की कला, कारीगरी और उद्योग-धन्धों को भी उसने प्रचुर मात्रा में प्रोत्साहित किया था। विदेशों में भी उसकी ख्याति और धाक थी। रोम के शासक उसे भारत का चक्रवर्ती सम्राट् ही मानते थे। उसके पश्चात् उसका कोई उत्तराधिकारी उतना योग्य, वीर और शक्तिशाली नहीं हुआ। कुशान शासकों और उनके साम्राज्य की शक्ति क्रमशः घटती गई। परन्तु उनके नाम और आतंक का दबदबा अब भी था। इसका मुख्य कारण यह था कि अपनी सैनिक शक्ति के लिए व अब भी भारतीयों पर निर्भर नहीं करते थे। उनकी सेना के सभी सैनिक और सैन्य अधिकारी बाह्लीक, काश्मीर और गान्धार से ही आते थे। कनिष्क का नाम और परम्परा अब भी चल रही थी। विदेशों में अब भी, कनिष्क की मृत्यु के लगभग एक सौ वर्षों के बाद भी, कुशान शासकों को ही भारत का सम्राट् माना जाता था। शासक और साम्राज्य अवश्य निर्बल हो गया था, परन्तु दबदबा और आतंक अब भी विद्यमान था। श्मश्रुविहीन वनस्पर की नीति का अब भी अवलम्बन किया जाता था—भारतीय संस्कृति को पद-दलित ही नहीं किया जाता था, भारतवासियों को अपनी मातृभूमि से विलग-कर विदेशों में निर्वासित भी किया जा रहा था। 'महाभारत' के वनपर्व, 'गर्ग संहिता' और गुणाढ्य के 'कथासरित्सागर' में इस बात का उल्लेख है कि कुशान-शकों ने भारतीय संस्कृति का विनाश किया; और 'गर्गसंहिता' के अनुसार तो क्षिप्रा-तटवासिनी प्रजा के एक चतुर्थांश को अपने घर-द्वार से उखाड़कर बाह्लिक—बैक्ट्रिया में बसने के लिए ले जाया गया।

देश की यह स्थिति और प्रजा पर कुशान राजाओं का आतंक ही प्रवर-सेन और भवनाग के संयुक्त प्रयत्नों के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी। बाकी कुशानों की शक्ति पूर्णतः क्षीण हो चुकी थी। उन्होंने ईरान के शाहन्शाह को अपनी राजकुमारी ही नहीं दी, उसे अपना सम्राट् भी स्वीकार कर लिया था और ईरान सम्राट् की राजमुद्रा को अपने सिक्कों पर अंकित भी करने लगे थे। ईरान के प्रति उनकी भक्ति और दासत्व का पता इसी बात से चल जाता है कि

जब ईरान के सिंहासन के लिए बहराम और होर्मजद नामक दो भाइयों में संघर्ष छिड़ा तो कुशानराज कनिष्क तृतीय अपने क्षत्रपों के साथ बहराम की सहायतार्थ दौड़ा गया। वह अपने साथ सौराष्ट्र के आभीरराज, वल्लभीराज, अवंती के क्षत्रप, सिन्धु-सौवीर के प्रदेशपति और मरुभूमि के क्षत्रप आदि बारह क्षत्रपों को ले गया था। परन्तु फिर भी बहराम को अपमानजनक पराजय से बचाया न जा सा सका। होर्मज़द ने उसे मुँह काला करके गधे पर बिठाकर सारे ईरान में फिराया और राजातिराज देवपुत्र कनिष्क तृतीय उसकी यह दुर्दशा अपने 'वीर' क्षत्रपों के साथ खड़ा देखता रहा। अन्त में वह और उसके साथ के तीन-चार कुशान राजा ईरान के नये शाहन्शाह को सिर नँवाकर अपने देश लौट आये !

कुशानों को निष्कासित करने का अभियान तो बहुत पहले ही आरम्भ हो चुका था। इस अभियान का श्रीगणेश किया था प्रथम भारशैव नागराज महासेन ने ईसा पूर्व १८० के लगभग। यह स्वतन्त्रता-संग्राम कई वर्षों तक चलता रहा और भारशैवों ने गंगा-यमुना का समस्त मध्यवर्ती प्रदेश, अंग, बंग, विन्ध्याचल और विदिशा को मुक्त कर वहाँ अपने स्वतंत्र राज्य-स्थापित कर लिये। पाटलीपुत्र पर अब भी अधिकार नहीं किया जा सका था। वहाँ एक साधारण राजवंश का शासन था।

प्रवरसेन और भवनाग को कुशान राजाओं का तो कोई भय नहीं था। उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता प्रजा के मन और हृदय पर छाये हुए कुशानों के आतंक की थी और दूसरा बड़ा भय था पार्शव शासानुशास का। कुशानों की पीठ पर अब वही वास्तविक शक्ति था और ऐसी स्थिति में भारत को स्वतंत्र करने का अर्थ था पार्शव शासानुशास की सत्ता से देश को उबारना। प्रवरसेन और भवनाग पाटलीपुत्र पर अपना अधिकार स्थापित करें और उसे भारतवर्ष के चक्रवर्ती साम्राज्य का केन्द्र बना लें तो यह कार्य सम्पन्न हो सकता था। अन्य प्रदेशों के क्षत्रप और वहाँ की प्रजा तो किसी विद्रोही वीर के उभरने की प्रतीक्षा ही कर रही थी। केवल सिन्धु, सौवीर और सौराष्ट्र अब भी कुशानों के चंगुल में थे। यदि इन कुशान-अधिकृत प्रदेशों के क्षत्रप पाटलीपुत्र की सत्ता को स्वीकार कर लें तभी भारतवर्ष मुक्त हो सकता था।

भवनाग और प्रवरसेन अपनी सारी तैयारियाँ इसी कार्यनीति को लक्ष्य में रखकर कर रहे थे। पाटलीपुत्र की जैसी स्थिति थी उसमें उस पर अधिकार करना इन दोनो वीरवरों के लिए जरा भी मुश्किल नहीं था। लेकिन फिर भी उन्होंने पाटलीपुत्र को छेड़ा नहीं। पार्शव शासानुशास का संकट सिर पर मंडरा रहा था, फिर भी दोनो वीर प्रतीक्षा करते रहे। इसका कारण था।

उस समय पाटलीपुत्र में मौखरी-वंश का सुन्दर वर्मा मगधपति था। वह वृद्ध हो गया था, परन्तु वीरता और साहस का वह अब भी धनी था। जो कभी किसी के सामने झुका नहीं ऐसे पाटलीपुत्र का वह स्वयं को दुर्गपति मानता था। उसके लिए केवल दो ही बातें सम्भव थीं : या तो रण में वीर-गति प्राप्त करे या विजय-लाभ करे! तीसरी कोई बात उसके लिए नहीं थी। वह ऐसे फौलाद का बना था जो झुकना नहीं जानता; केवल टूट सकता है। इसी लिए भवनाग और प्रवरसेन प्रतीक्षा कर रहे थे कि बूढ़ा मरे तो उसके बाद पाटलीपुत्र और उसके आस-पास के प्रदेश को जीता जाये। सुन्दर वर्मा के कोई सन्तान भी नहीं थी, जो उसके बाद पाटलीपुत्र की रक्षा करती। बूढ़े के दिन आ लगे थे। अब-तब का मेहमान था। बिना लड़े तो वह इस स्थिति में भी किसी का आधिपत्य स्वीकार नहीं कर सकता था; और दो बलशाली राजाओं का ऐसे वृद्ध और निर्बल शासक को पराजित करना गौरव की बात नहीं थी।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण और भी था। सुन्दर वर्मा का ही एक निकट सम्बन्धी और घनिष्ट मित्र उन दिनों मथुरा का अधिपति था। यदि सुन्दर वर्मा को छेड़ा जाता तो उसका यह निकट सम्बन्धी अवश्यमेव उसके सहायतार्थ दौड़ा आता और तब दोनो मिलकर कुशानराज को अपनी मदद के लिए बुलावा भेज देते। कुशानराज के पीछे उसकी वास्तविक शक्ति पार्शव शासानुशास भी चला आता और यों पाटलीपुत्र को लेकर एक भीषण संग्राम छिड़ जाता। यह स्थिति विदेशी आक्रान्ताओं के हित में ही होती और भारत पुनः विदेशियों के आधिपत्य में चला जाता। भवनाग इसी लिए चुप बैठा प्रतीक्षा कर रहा था और प्रवरसेन भी इसी लिए चुप था। परन्तु अपने राजवंशों के पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध के द्वारा उन्होंने भावी

परिस्थिति का सामना करने के लिए एक अच्छी मोर्चेबन्दी अवश्य कर ली थी। भवनाग ने अपनी इकलौती कन्या का विवाह प्रवरसेन के पुत्र के साथ कर के विन्ध्य-विदिशा से लेकर गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश तक का भू-भाग एक ही राजा के छत्र-तले संगठित कर दिया था। उस राजा का नाम था प्रवरसेन-पुत्र गौतमीपुत्र। और दोनो बूढ़ो की अभिलाषा उसी को भारत-सम्राट् के रूप में पाटलीपुत्र के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने की थी। वे जानते थे कि समय आने पर गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश से चलकर विन्ध्य विदिशा में होते हुए मथुरा पर विजय प्राप्त करना और मगध-पाटलीपुत्र को भारत के चक्रवर्ती साम्राज्य का केन्द्र बनाना जरा भी मुश्किल न होगा। इसी लिए दोनो बूढ़े बैठे सुन्दर वर्मा के मरने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

परन्तु सहसा एक ही साथ दो ऐसी घटनाएँ घटीं जिन्होंने प्रवरसेन और भवनाग की समस्त मनोभिलाषाओं पर पानी फेर दिया। दोनो बूढ़े स्तम्भित ही रह गए। भवनाग से मिलने के लिए आया हुआ प्रवरसेन संज्ञा-शून्य हो गया। उसका बेटा गौतमीपुत्र अपनी ससुराल में भवनाग के पास ही था। वह अपने पिता और श्वसुर की ही भाँति धीर, वीर और पराक्रमी था। दोनो बूढ़े बैठे चर्चा कर रहे थे कि सुन्दर वर्मा मरे तो गौतमीपुत्र को पाटलीपुत्र के सिंहासन पर अभिषिक्त कर स्वयं वानप्रस्थ हो जायें और भगवान त्रिशूलपाणी के मन्दिरों का निर्माण-कार्य हाथ में लें। तभी संवाद-वाहक ने आकर सूचना दी कि हा, हन्त! अघटित घटित हो गया; परम प्रतापी गौतमीपुत्र सबको रोते-बिलखते छोड़कर सहसा चल बसे; भिषग्वर हाथ मलते रह गए, स्वजन-परिजन रोते रह गए और दोनो राज्यों का एकमात्र उत्तराधिकारी चला गया! यह ऐसा वज्रपात था, जिसने उन दोनो बूढ़ों की मति और गति को ही हर लिया।

अभी इस चोट से सँभलने भी नहीं पाये थे कि दुर्दैव ने दूसरा वार कर दिया। मगध से एक विशेष सन्देशवाहक ने आकर संवाद दिया कि पाटलीपुत्र के महाराज सुन्दर वर्मा को इस बुढ़ापे में पुत्र-रत्न की उपलब्धि हुई है, और इसके उपलक्ष्य में पाटलीपुत्र में घर-घर आनन्द मनाया जा रहा है। दोनो बूढ़ों ने सुना और सिर थामकर रह गए। गौतमीपुत्र के अवसान से

अधिक शोकजनक संवाद उनके लिए और क्या हो सकता था! बेचारों की कमर ही टूट गई थी!

कुशान यवनों को भारत से निष्कासित कर पाटलीपुत्र के सिंहासन पर गोतमीपुत्र को आसीन करने का उनका मधुर स्वप्न सदा के लिए भंग हो गया। अब आशा का केवल एक तिनका शेष बचा था। गौतमीपुत्र अपने पीछे एक नन्हा शिशु छोड़ गया था। उसका नाम था रुद्रसेन। अब दोनो बूढ़ों का सारा ध्यान रुद्रसेन पर केन्द्रित हुआ।

सुन्दर वर्मा के उत्तराधिकारी का जन्म उधर पाटलीपुत्र के राजप्रासाद में भी एक राजपुरुष के लिए घोर निराशा और असहनीय कष्ट का कारण बन गया। सुन्दर वर्मा ने इस राजपुरुष को सर्वोच्च मान से सम्मानित किया था। यह राजा का उत्तराधिकारी बनाये जाने को था। पाटलीपुत्र नगर का आधिपत्य इसी को सौंपा जानेवाला था। यह गुप्त-वंशोत्पन्न राजपुरुष साकेत की ओर का प्रदेशपति था। चन्द्रगुप्त इसका नाम था। यह मगध का महाराजाधिराज बनने के स्वप्न देख रहा था। परन्तु भगवान पिनाकपाणी ने प्रवरसेन और भवनाग के मधुर स्वप्नों के साथ-साथ इसके स्वप्नों का भी अन्त कर दिया।

अब चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र में अपना रहना ही असम्भव प्रतीत हो रहा था। उसके विरोधियों की अब निश्चय ही बन आयेगी। स्वयं सुन्दर वर्मा ही यह चाहेगा कि वह यहाँ से चलता बने। रानी तो उसे जीवित भी देखना पसन्द नहीं करेगी। एक ही रात में केवल एक ही घटना के परिणामस्वरूप जो पाटली पुत्र हस्तामलकवत् प्रतीत होता था वह अब आकाशकुसुम बन गया। पाटलीपुत्र का जो सुगंगप्रासाद पहले माता की गोद-सा सुखद और सुरक्षित लगता था, वह अब मुँह फाड़े खाने को दौड़ा आ रहा था। उसकी आँखों की नींद उड़ गई; मन का चैन नष्ट हो गया। जरा-सा खटका सुनते ही वह उछल पड़ता था। कहीं राजा के सैनिक निर्वासित करने अथवा बन्दी बनाने की राजाज्ञा लेकर तो नहीं आ गए? हो सकता है कि महाबलाधिकृत कुंजरक अथवा महामात्य मंत्रगुप्त ही आदेश लेकर आयें। यदि पुनः कोशल का प्रदेशपति बनाकर भेज दें तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।

पर क्या ऐसा होगा ? मगध के षड्यन्त्रकारी कूटनीतिज्ञ तो मुझे बन्दीगृह में ही देखना चाहेंगे। उनके षड्यन्त्रों का कुटिल चक्र तो चल भी पड़ा होगा ! तो क्या करूँ ? भाग जाऊँ ? समय रहते ही खिसक जाना बुद्धिमानी होगी। या रुका रहूँ और स्थिति का सामना करूँ ? अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करूँ या इसी अवसर को अपने अनुकूल बना लूँ ? क्यों न कह दूँ कि मैं पाटली-पुत्र का हूँ और इस समय पाटलीपुत्र का परित्याग कर जा नहीं सकता ! मगध के भविष्य को मैं एक नवजात शिशु के करों में छोड़ नहीं सकता, और कदापि नहीं छोड़ूँगा। तो क्यों न सैनिकों को विश्वास में लेकर सेना के सहारे अपने भविष्य का निर्माण करूँ ? अभी ही चलूँ और सैनिकों को लेकर राजप्रासाद को घेर लूँ ? फिर परिणाम जो भी हो । क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। जो करना है अभी ही कर गुजरूँ या प्रतीक्षा करूँ ! सन्देश-वाहक संवाद लाया है कि गौतमीपुत्र की मृत्यु हो गई। तो उसके अधूरे स्वप्न को क्यों न मैं ही पूरा करूँ ? हाय, क्या करूँ ? किस से सलाह लूँ ?

वह कोई निश्चय नहीं कर पा रहा था और उसके मन में विचारों का संघर्ष तुमुल रूप धारण करता जा रहा था।

इसी पाटलीपुत्र नगर में, शताब्दियों पूर्व, उसके नामराशि चन्द्रगुप्त मौर्य की जो स्थिति हुई थी ठीक वैसी ही विषम स्थिति आज उसकी हो रही थी। नन्द राजा ने जो हाल चन्द्रगुप्त मौर्य के किये थे बिलकुल वही दशा आज उसकी हो गई थी। चन्द्रगुप्त मौर्य को परामर्श देने और उसका मार्गदर्शन करने के लिए भगवान कौटिल्य थे; परन्तु उसे सलाह देने के लिए कोई चाणक्य दिखाई नहीं पड़ता था। कल वह जिस पाटलीपुत्र का स्वामी था, आज उसमें उसके लिए स्थान ही नहीं था।

वह अनेक प्रकार की बातें सोचता हुआ प्रशस्त चन्द्रशाला में इधर से उधर अकेला घूम रहा था। दूर-दूर से लोगों के उत्सव की स्वर-लहरियाँ और गीतों की गूँज पवन पर चढ़कर चली आ रही थीं। परन्तु उसका ध्यान उनकी ओर नहीं था। वह अपनी ही चिन्ताओं में खोया हुआ था और उसे रह-रहकर आशंका हो रही थी कि कहीं कोई राजाज्ञा लेकर आ न धमके !

१. कौमुदो-महोत्सव

चन्द्रगुप्त लगातार इधर-से-उधर घूम रहा था। बहुत सोचने के बाद भी वह किसी निर्णय पर पहुँच नहीं पाता था। कभी सोचता, सुन्दर वर्मा से मिलकर उसके मन की थाह ले और कभी सोचता कि उससे बिना मिले ही चलता बने। कभी उसे खयाल आता कि पाटलीपुत्र की श्रेष्ठी-परिषद् से, जो केवल नाम की ही परिषद् थी, जाकर मिले। कभी सोचता कि सेना को साथ लेकर प्रासाद को घेर ले और पाटलीपुत्र पर अधिकार कर ले।

क्या करे? जो करना है अभी ही कर गुजरे या प्रतीक्षा करे? यही बातें वह बार-बार सोचता था, परन्तु किसी निश्चय पर पहुँच नहीं पा रहा था।

एक बात तो बिलकुल स्पष्ट थी। उसमें किसी प्रकार के सोच-विचार और असमंजस के लिए जरा भी गुंजाइश नहीं थी। इतना तो वह स्वयं भी अच्छी तरह समझ गया था कि कल्याण वर्मा के जन्म के बाद पाटलीपुत्र में उसके लिए कोई स्थान नहीं रह गया था। लेकिन पाटलीपुत्र को छोड़कर वह जा भी नहीं सकता था। एक नहीं, दो शक्तिशाली राजा पाटलीपुत्र पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए तैयार खड़े थे। उनमें एक भारशिव भवनाग सामान्य योद्धा नहीं था। गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को उसी ने कुशान यवनों के पंजे से मुक्त किया और उनके क्षत्रपों को मथुरा के पार तक मार भगाया था। उधर विन्ध्य-विदिशा का प्रवरसेन भी उतना ही

महान योद्धा था। विन्ध्य पर्वत-माला उसकी पीठ पर प्रहरी की भाँति खड़ी थी। अपनी राजधानी पद्मावती के अतिरिक्त उसने एक नयी नगरी कांचनका बसाई थी और उसे एक सुदृढ़ सैनिक दुर्ग के रूप में संगठित किया था। इसी कांचनका नगरी को केन्द्र बनाकर उसने दक्षिणापथ के कई प्रदेशों को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया था। उसकी वीरता के कारण जन-सामान्य उसे 'प्रवीर महान' कहकर सम्बोधित करते थे। उसकी अश्व-सेना के टक्कर की दूसरी कोई भी अश्व-सेना उस समय सारे भारतवर्ष में नहीं थी, यहाँ तक कि सारे संसार में उसको जोड़ मिलना मुश्किल ही था। और उस प्रवरसेन की दृष्टि भी पाटलीपुत्र पर लगी हुई थी।

परन्तु दुर्बल और नितान्त गिरी हुई दशा में होने पर भी पाटलीपुत्र दाल-भात का कौर नहीं था कि जिसका जी चाहा मुँह में रख ले। उसका पुराना दबदबा और प्रतिष्ठा अब भी कायम थे। भारतवासी अब भी मगध को महान राज्य समझते और श्रद्धा तथा सम्मान की दृष्टि से देखते थे। पाटलीपुत्र अब भी भारत का श्रेष्ठतम नगर माना जाता था। मगधराज के राज्य की सीमा तो पाटलीपुत्र नगर और उसके आस-पास के कुछ योजनों तक ही सिमट-सिकुड़कर रह गई थी, फिर भी लोग-बाग उसी को भारत का महान राजा समझते थे। सैनिक शक्ति भी उसके पास इतनी नहीं थी कि वह कुशानों अथवा भवनाग या प्रवरसेन का प्रतिरोध कर पाता, परन्तु फिर भी लोग उस-को मगध का महान योद्धा कहते थे। परम्परागत सम्मान और प्रतिष्ठा उसे अब भी सहज रूप में प्राप्त थे। केवल भारत में ही नहीं, विदेशों में भी पाटली-पुत्र और मगधपति की ही ख्याति थी। रोमन और यूनानी भी यही समझते थे कि पाटलीपुत्र भारत का प्रमुख नगर और मगधपति भारत का सबसे शक्ति-शाली और महान राजा है। इस बीच नगर तो अनेक अस्तित्व में आये और सम्पन्नता के शिखर तक भी पहुँचे। चम्पावती थी, कान्तिपुरी, पद्मावती, कांचन-का, श्रावस्ती, वाराणसी, अवन्ती, विदिशा, वैशाली आदि अनेक नगरियाँ थीं। सभी एक-एक से बढ़-चढ़कर थीं। परन्तु पाटलीपुत्र की तुलना में कोई ठहर नहीं पाती थी। जो गौरव और महत्त्व, इस गिरी हुई दशा में भी, पाटली-पुत्र का था वह अन्य किसी भी नगरी को प्राप्त नहीं हो सका था। भारतीय

प्रजा के मन और मस्तिष्क पर मगध और पाटलीपुत्र अभी भी छाये हुए थे—मगधपति अब भी मगधपति था और पाटलीपुत्र अब भी पाटलीपुत्र।

उधर मथुरा में सुन्दर वर्मा का सम्बन्धी और घनिष्ट मित्र यादव कीर्तिसेन था। मगधपति का मित्र और सम्बन्धी होने के कारण पाटलीपुत्र में—पाटलीपुत्र की राजनीति में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान और देश तथा विदेश में पर्याप्त ख्याति थी। यह बताना तो सम्भव नहीं था कि पाटलीपुत्र पर आक्रमण होने की दशा में कीर्तिसेन किस प्रकार का आचरण करता, परन्तु इतना निर्विवाद था कि ऐसे कृत्य के बड़े ही दूरगामी परिणाम होते। मथुरा, मद्र, कम्बोज, काश्मीर वाहीक (सतलज और सिन्धु के बीच का प्रदेश), गान्धार और ठेठ ईरान तक उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती। कीर्तिसेन अपनी भौगोलिक और सामरिक स्थिति के कारण तथा विदेशी सेनाओं के सहारे उस समय क्या षड्यन्त्र रचता यह बताना अभी मुश्किल ही था।

भवनाग और प्रवरसेन मिलकर पाटलीपुत्र पर अधिकार करना चाहते हैं, इसी लिए वे सम्बन्धी बने हैं और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह बात कीर्तिसेन से छिपी हुई नहीं थी। उसने सुन्दर वर्मा को इस स्थिति से अवगत करते हुए सचेत भी कर दिया था। उसने सुन्दर वर्मा को बताया था कि इस आगामी युद्ध का सेनापति गौतमीपुत्र होगा और प्रवरसेन इस युद्ध को पाँचवें अश्वमेध के रूप में सम्पन्न करेगा। चार अश्वमेध तो प्रवरसेन पहले ही कर चुका था और यह पाँचवाँ अश्वमेध विदेशियों को भारत भूमि से निष्कासित करने के उद्देश्य से किया जाने को था। भवनाग अब प्रवरसेन का सहयोगी बन गया था। और यह भवनाग स्वयं भी सामान्य योद्धा नहीं था। उसके पूर्वजों ने दस-दस अश्वमेध करके वाराणसी में दशाश्वमेध का निर्माण किया था। गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश से उसने एक-एक कुशान, शक और यूनानी को चुन-चुनकर निकाल बाहर किया था; अब उसको चुनौती देनेवाला वहाँ कोई भी नहीं बचा था।

परन्तु दैवदुर्विपाक से गौतमीपुत्र की अकाल मृत्यु हुई और दोनो बूढ़ों की सारी बाजी ही उलट गई। प्रवरसेन के तीन पुत्र और भी थे। वे तीनों ही बड़े स्वरूपवान थे; परन्तु गौतमीपुत्र-जैसी वीरता और कार्यक्षमता किसी में

नहीं थी। इसलिए दोनों वृद्ध अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए तत्काल तो कुछ कर नहीं सकते थे। अभी तो उनका सारा ध्यान गौतमीपुत्र के शिशु रुद्रसेन में केन्द्रित होकर रह गया था।

मगध की ऐसी परिस्थिति थी और चन्द्रगुप्त चाहता तो उससे अवश्य लाभ उठा सकता था; और इधर कल्याण वर्मा के जन्म के बाद तो इस परिस्थिति से लाभ उठाना उसके लिए अनिवार्य हो गया था। पहले वाकाटक प्रवरसेन के भारत-सम्राट् बनने की संभावनाएँ दिखाई देती थीं, परन्तु गौतमी-पुत्र की मृत्यु के बाद परिस्थिति एकदम बदल गई थी। इस परिवर्तित परिस्थिति में चन्द्रगुप्त को तत्काल कुछ करना होगा। तत्काल कुछ कर गुजरने में ही उसका लाभ था। तभी वह अपना उद्धार कर सकता था। परन्तु उसे एक डर वैशाली का भी था। वैशाली भी कम महत्वाकांक्षी नहीं था। अपनी महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर वैशाली ने कुछ कर डाला तो क्या होगा? दूसरी चिन्ताओं के साथ वैशाली की चिन्ता भी उसे सताने लगी। वैसे वैशाला के साथ उसके अच्छे सम्बन्ध थे; लेकिन ऐसे मामलों में सम्बन्धों की परवाह ही कौन करता है?

इन सब विचारों में लीन वह चन्द्रशाला में घूम रहा था। चारों ओर शुभ्र धवल चाँदनी छिटकी हुई थी। पाटलीपुत्र नगर के शत-सहस्र सौधों, हर्म्यों और अट्टालिकाओं पर राजकुमार के जन्मोत्सव के दीपक जगमगा रहे थे। सारी नगरी उत्सव मना रही थी। अकेला वही इस चन्द्रशाला के एकान्त में व्यग्र और व्यथित घूम रहा था। भाग्यनियन्ता के एक ही संकेत ने सुन्दर वर्मा के भविष्य को बदल दिया था; भवनाग और प्रवरसेन के भविष्य भी बदल गए थे; स्वयं उसका अपना भविष्य भी बदल गया था।

तभी उसने कौमुदी-महोत्सव का डिंडिमिका-घोष सुना और वह एक निश्चय पर पहुँच गया। उसने मन-ही-मन निर्णय किया कि कारागृह का सकट सिर पर झेलकर भी कौमुदी-महोत्सव में उपस्थित रहूँगा, और तब जैसी पड़ेगी देखी जायेगी।

उसके मन में यह आशा भी स्फुरित हुई कि हो सकता है सुन्दर वर्मा मुझे राजपितामह नियुक्त कर दे। राजा के मन में क्या है, राजपुरुष और

दरबारी लोग क्या सोच रहे हैं, इसकी जरा-सी भी भनक उसे मिलने नहीं पाई थी: मिल सकेगी, इसकी कोई सम्भावना भी नहीं थी। परन्तु जल्दबाजी करके भाग जाना उसे किसी भी प्रकार उचित नहीं प्रतीत हुआ। यह अनुचित ही होता। लोग इसे उसकी भीरुता ही समझते। नगरजनों के प्रति यह उसका विश्वासघात ही माना जाता।

इसलिए उसने कौमुदी-महोत्सव तक रुक जाने का निश्चय किया। कौमुदी-महोत्सव में क्या होता है इसे भी देख ही लिया जाये। यदि राज-पितामह का पद दिया जा रहा हो तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। अभीष्ट-सिद्धि के लिए यह पद बुरा न रहेगा। प्रवरसेन और भवनाग की संयुक्त शक्ति से लोहा लेकर तो वह पाटलीपुत्र को कभी जीत नहीं सकता। और कहीं इसी बीच वैशाली ने सिर उठाया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। वैशाली को अनुकूल करने के लिए भी समय चाहिए और इसके लिए भी उसे प्रतीक्षा करनी होगी।

....तो यही तय रहा कि अभी रुका जाये, अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा की जाये और कोई मार्ग निकाला जाये।

इस निर्णय पर पहुँचने के साथ ही उसने छुटकारे की साँस ली और घूमते-घूमते रुककर खड़ा हो गया। तभी कोई ऊपर आता दिखाई दिया।

एक प्रतिहारी वहाँ आया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

चन्द्रगुप्त ने उसे बोलने का आदेश देते हुए अत्यन्त मन्द स्वर में अधीरतापूर्वक पूछा—कौन है ?

एक क्षण के लिए उसे अपनी आशंका सच प्रतीत हुई। अवश्य राजाज्ञा लेकर कोई आया है। बन्दी बनाने का आदेश तो हो नहीं सकता, उसकी सूचना के लिए कोई प्रतिहारी को नहीं भेजता; सेनाध्यक्ष और सैनिक धड़-धड़ाते चले आते हैं और उलटी मुश्कें बाँधकर ले जाते हैं। अवश्य साकेत लौट जाने का आदेश होगा।

तभी प्रतिहारी ने पुनः प्रणाम करके निवेदन किया—महाराज, वैशाली से कोई आया है। अपने को वैशाली का दंडनायक कहता है। तिलभट्टक नाम बताया है। बौद्ध भिक्षु का वेश धारण किये हुए है। काषाय छोड़ कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है। परिचय के लिए उसने यह मुद्रा दी है।

चन्द्रगुप्त ने मुद्रा हाथ में लेकर देखी। वह सिंह की आकृतिवाली वैशाली की राजमुद्रा थी। निश्चय हो गया कि आगन्तुक वैशाली का ही रहनेवाला और वहीं से आया है।

मुद्रा देकर प्रतिहारी ने आगे कहा—आगन्तुक का कहना है कि वह वैशाली से आया है और इसी समय महाराज से मिलना चाहता है। कहता है कि काम बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त आवश्यक है।

चन्द्रगुप्त को बड़ा आश्चर्य हुआ। वैशाली के महादंडनायक तिलभट्टक को वह पहचानता था। लेकिन वह इस समय यहाँ क्यों आया? वैशाली के साथ अपने सम्पर्क की बात वह पाटलीपुत्र में किसी पर भी प्रकट नहीं होने देना चाहता था। अभी तक यह बात उसने सबसे छिपाकर ही रखी थी।

इस बात को छिपाकर रखना आवश्यक भी था।

वैशाली वैसे पाटलीपुत्र का पड़ोसी राज्य था, परन्तु दोनो में मैत्री और एकता कभी नहीं रही; और इस समय तो वैशाली पाटलीपुत्र का प्रतिद्वन्द्वी ही था। दोनो की स्थिति और रीति-नीति में धरती और आकाश जितना अन्तर था।

वैशाली और पाटलीपुत्र का पारस्परिक वैमनस्य और विग्रह पुरातन काल से चला आता था। दोनो में सदैव प्रतिद्वन्द्विता बनी रही। कभी वैशाली स्वतंत्र गणतंत्र था। कालान्तर में वह मगध का एक प्रदेश बन गया; परन्तु उसकी आन्तरिक व्यवस्था गणतंत्रात्मक ही रही। आज भी वहाँ गणतंत्र था। लेकिन वहाँ की गणतंत्रात्मक प्रणाली इतनी दोषपूर्ण हो गई कि लोगों का उस पर से विश्वास ही उठ गया। सबसे अधिक दूषित हुई वहाँ की न्याय-प्रणाली। गणतंत्र के कारण वहाँ व्यक्ति-स्वातंत्र्य इस सीमा तक बढ़ गया कि बड़ा-से-बड़ा अपराध करने पर भी किसी व्यक्ति को दंडित नहीं किया जा सकता था।

अपराधी को पूरा-पूरा न्याय मिले और व्यक्ति-स्वातंत्र्य बना रहे, इसलिए वैशाली के गणतंत्र ने सात-स्तरीय न्यायालयों की स्थापना की थी। किसी भी अपराधी को दंडित करने के लिए यह आवश्यक था कि सातों स्तरों पर न्यायालय उसे अपराधी घोषित करे। यदि एक भी स्तर पर वह निरपराध घोषित

कर दिया जाता तो शेष छहों स्तरों का अपराधी घोषित करना निरर्थक हो जाता और दंड को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता था।

इस व्यवस्था का एक अनिष्टकारी परिणाम यह हुआ कि किसी के मन में दंड-भय रह ही नहीं गया। अपराधों की संख्या और प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई। सभी जानते थे कि दिन-दहाड़े अपराध करके भी किसी को तब तक दंडित नहीं किया जा सकता जब तक सातों न्यायालय अपराधी घोषित न करें। और किसी का भी सातों स्तरों पर अपराधी घोषित किया जाना लगभग असम्भव ही था।

इधर मगधपति की दुर्बलता के कारण स्थिति और भी विषम हो गई थी। लोगों का विश्वास न गणतंत्र में रहा था और न राजतंत्र में। एक प्रकार का द्वैध शासन चल रहा था। मगध का केवल नाम-मात्र का शासन रह गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक युवक उच्छृङ्खल हो गया, अपराधों की संख्या बढ़ती चली गई और किसी भी अपराधी को दंडित करना लगभग असम्भव ही हो गया। अराजकता भी बढ़ती जा रही थी।

सात-स्तरीय न्याय-प्रणाली का निर्धारण करते समय वैशाली के नैयायिकों ने मानव-स्वभाव की दुर्बलता पर तनिक भी विचार नहीं किया था। अब वैशाली उसके दुष्परिणामों को भोग रही थी। वैशाली में कोई सुरक्षित नहीं रहा: किसी को भी दंड का भय नहीं रह गया। सब स्वामी और शासक थे और कोई भी शासक या स्वामी नहीं था। स्थिति यहाँ तक बिगड़ती चली गई कि लोग संत्रस्त हो उठे। सब यह अनुभव करने लगे कि इस तरह काम नहीं चल सकता। स्थिति में सुधार होना चाहिए। लेकिन बिल्ली के गले में घंटी बाँधने के लिए कौन आगे आता? जहाँ तक मगधपति की सत्ता को उखाड़ फेंकने का प्रश्न था वहाँ तक तो सब ठीक था। उसकी सत्ता को कभी भी उखाड़ा जा सकता था। परन्तु मूल प्रश्न यह नहीं था। मूल प्रश्न था गणतंत्र में निहित दोषों और त्रुटियों को दूर करने का। और यह कार्य बहुत ही कठिन था। गणतंत्र प्रणाली शताब्दियों से चली आ रही थी। अपने समस्त गुण-दोषों के साथ वह वैशाली की प्रजा के दिलों में घर कर चुकी थी, उनके मन और मस्तिष्क का अविभाज्य अंग बन चुकी थी। उसमें

सुधार करने के लिए जो भी आगे आता, जो भी प्रयत्न करता वह गणतंत्र का हितु नहीं शत्रु ही समझा जाता। ऐसे प्रजाद्रोही को वैशाली में कोई एक दिन भी जीवित न रहने देता; वह उसी समय उठाकर फेंक दिया जाता।

गणतंत्र प्रणाली जर्जर और दोषपूर्ण हो गई थी, फिर भी वैशाली परिषद् के सात हजार सात सौ और सात सदस्य एक स्वर से जिस बात को कहते वही सत्य समझी जाती थी। 'नवगणस्य' अर्थात् नौ श्रेष्ठतम सदस्यों की समिति में ही सर्वोच्च सत्ता निहित थी। नवगणों का आदेश अब भी सर्वत्र माना जाता था। नवगण-समिति जिस बात का निश्चय कर देती वैशाली में कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता था। सब लोग गणतंत्र प्रणाली को ही पुनर्जीवित करने के पक्ष में थे।

लेकिन वैशाली का प्रधान राजनायक जयदेव इसके पक्ष में नहीं था। उसने गणतंत्र के प्रकट दोषों को देख लिया था। उसने वैशाली के चारों ओर शक्तिशाली राजतंत्रों का अभ्युदय होते भी देखा। उसने यह भी देखा कि वाकाटक और भारशिव राजाओं ने कुशान यवनों को भगाकर अपने प्रदेश स्वतंत्र कर लिये हैं। विदेशी आक्रमणकारियों को भारत भूमि से भगाने में उसने गणतंत्र की व्यर्थता और राजतंत्र की सार्थकता को भी देखा। उसने यह भी समझ लिया कि यह समय गणतंत्रात्मक प्रणाली को पुनर्जीवित करने का नहीं है। वह वैशाली में एक महान राजतंत्र की स्थापना करना चाहता था। वह कोई ऐसा मध्यमार्ग खोज निकालना चाहता था, जिसमें गणतंत्र भी बना रहे और भारत को विदेशियों से मुक्त करके राजतंत्र की स्थापना भी की जा सके।

परन्तु वैशाली में यह किसी भी प्रकार सम्भव नहीं था। कोई भी उसकी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं था। जो वैशाली गणतंत्र अपने स्वाधीनता-प्रेम के लिए भारत-भर में विख्यात था, जहाँ के देवता-जैसे राजकुमार नगर-रक्षण के लिए हँसते-हँसते प्राण न्योछावर कर देते थे, जिस गणतंत्र ने महान मगध-सम्राट् को भी मार भगाया था आज वही गणतंत्र अधोगति को पहुँच चुका था। वैशाली-गणों को वाद-विवाद से ही फ़ुर्सत नहीं थी। दिन-दहाड़े आदमी की हत्या कर दी जाती और वैशाली-गण अपराधी को दंड देने के बदले

दिनों तक बैठे वाद-विवाद करते रहते। यह सब देखकर प्रधान राजनायक जयदेव का दिल इतना खट्टा हो गया कि उसने वैशाली को सदा के लिए छोड़ दिया। वह वहाँ से नैपाल चला गया और वहीं उसने एक नये राजवंश की स्थापना की।

उसके जाने के बाद उसकी इकलौती पुत्री कुमारदेवी ने वैशाली का शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया। वह अपने पिता से अधिक आशावादिनी और चतुर थी। प्रजातंत्र भी रहे और राजतंत्र भी रहे, ऐसा मध्यमार्ग उसे स्वीकार नहीं था। वह जानती थी कि प्रत्येग युग की अपनी शासन-प्रणाली होती है। युगानुरूप शासन-प्रणाली ही देश और राष्ट्र को जीवित रख सकती है, और उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकती है। वह यह भी जानती थी कि जिस प्रकार कालान्तर में राजतंत्र दूषित हो जाता है उसी प्रकार प्रजातंत्र भी दूषित हो उठता है। प्रजातंत्र में व्यक्ति-स्वातंत्र्य इतना निर्बाध और निरंकुश हो जाता है कि प्रजा में अनुशासन नाम को भी नहीं रहता और सर्वत्र उच्छृ-ङ्खलता और अराजकता का बोलबाला होने लगता है। प्रजातंत्र की विशिष्ट प्रणाली ऐसे धूर्त और प्रवंचक प्रजातंत्रवादियों को जन्म देती है जो जनता का भयंकर शोषण करते हैं, चतुर्दिक् लूट मचाते और देश के पतन का कारण बनते हैं।

इसलिए कुमारदेवी चक्रवर्ती शासन के पक्ष में थी। सारी सत्ता एक व्यक्ति में केन्द्रित रहे और प्रजाजन उसके कठोर अनुशासन में रहकर उसकी आज्ञा का पालन करें, उसके आदेशों को कार्यान्वित करें। वह निश्चयपूर्वक जानती थी कि जब तक अयोध्यापति रामचन्द्र-जैसा कोई समर्थ पुरुष वैशाली के रंगमंच पर अवतीर्ण नहीं होता न तो वैशाली अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर सकती है और न वह भारत का केन्द्र स्थल ही बन सकती है। यदि काश्मीर से ताम्रलिप्ति तक का शासन-सूत्र वैशाली को अपने हाथ में लेना है, भारतवर्ष के समस्त व्यापार और वाणिज्य का सफल संचालन वैशाली को करना है तो वैशाली में चक्रवर्ती शासन की प्राण-प्रतिष्ठा करनी ही होगी।

यह था कुमारदेवी का स्वप्न और इस स्वप्न को वह सार्थक करना चाहती थी मगध को पराजित करके, उस पर वैशाली का अधिकार स्थापित करके।

चन्द्रगुप्त कुमारदेवी की इस महत्त्वाकांक्षा से परिचित था और इसी लिए उसके मन में वैशाली की ओर से अहर्निश एक आशंका-सी बनी रहती थी। वह जानता था कि कुमारदेवी की इस महत्त्वाकांक्षा के कारण, मगधपति बनते ही, उसे वैशाली से युद्ध करना होगा। यदि उसने अपनी ओर से वैशाली पर आक्रमण नहीं किया तो कुमारदेवी के व्यक्तित्व से अनुप्राणित लिच्छवी-कुमार स्वयं उस पर टूट पड़ेंगे और तब उसे उनसे युद्ध करना होगा। और वह यह भी जानता था कि वैशाली गणतंत्र के दुर्बल हो जाने पर भी लिच्छवियों में अभी इतनी शक्ति शेष है कि मगध के लिए उनका सामना करना हँसी-खेल न होगा, मागधियों के दाँतों पसीना आ जायेगा, और सम्भवतः तब भी वैशाली-गण को पराजित न किया जा सके। इसलिए जब प्रतिहारी ने वैशाली के दंडनायक के आने की घोषणा करते हुए उसकी मुद्रा चन्द्रगुप्त को दी तो वह मन-ही-मन आशंकित हो उठा। अपनी सब चिन्ताओं को भूल-कर वह यही सोचने लगा कि इस समय तिलभट्टक के आने का कारण क्या हो सकता है? कहीं पाटलीपुत्र की आन्तरिक परिस्थिति का पता तो वैशाली-वालों को नहीं चल गया और उससे लाभ उठाने के ही लिए तो तिलभट्टक यहाँ नहीं आया है?

उसने प्रतिहारी से कहा—उन्हें शीघ्रातिशीघ्र यहाँ ले आओ। क्या उनके साथ और भी कोई है?

'दूसरा तो कोई भी नहीं है।'

'तो उन्हें तत्काल भीतर ले आओ....उन्हें यहाँ आते हुए किसी ने देखा तो नहीं?'

'जी, यहाँ प्रवेश करते समय तो किसी ने भी नहीं देखा।'

'उनका वाहन कहाँ है?'

'वह तो पैदल ही आये हैं।'

'अरे, क्या कहते हो! पैदल ही?'

चन्द्रगुप्त के आश्चर्य की सीमा न रही।

तिलभट्टक पैदल चलकर आया है। आया भी है बौद्ध भिक्षु के वेश में।

ग्रौर ऐसा प्रतीत होता है कि किसी गुप्त मार्ग से ही चलकर यहाँ पहुँचा है। आखिर बात क्या है ?

चन्द्रगुप्त ने उसे तुरत अपने समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश दिया।

आदेश मिलते ही प्रतिहारी अभिवादन कर बाहर चला गया।

२. वैशाली का महादंडनायक

थोड़ी ही देर में चन्द्रगुप्त ने एक बौद्ध भिक्षु को अपने सामने खड़ा पाया। उसकी सज-धज और काषाय वस्त्र-भूषा इतनी स्वाभाविक थी कि यदि उसने स्वयं न कहा होता तो चन्द्रगुप्त को देखकर भी कभी विश्वास न होता कि यही व्यक्ति वैशाली का महादंडनायक तिलभट्टक है। वह उसे बौद्ध भिक्षु समझकर ही उसका सम्मान करता।

तिलभट्टक प्रौढ़ वय का सौम्य और तेजस्वी पुरुष था। उसके नेत्रों में शस्त्र की तीव्रता और वाणी की वेधकता दोनो ही थीं। वह शस्त्र से विजय करने में जितना कुशल था उतना ही वाणी से जीतने में भी। चन्द्रगुप्त ने इस अद्‌भुत पुरुष के बारे में अनेक किंवदन्तियाँ सुनी थीं; थोड़ा-बहुत परिचय भी था। कुमारदेवी के महामंत्री हरिषेण का वह दाहिना हाथ था। हरिषेण, तिलभट्टक और कुमारदेवी की त्रिपुटी असम्भव आदर्शों की उपासक थी। तीनों मिलकर असम्भव कार्यों को सम्भव कर दिखाना चाहते थे। तीनों में चन्द्रगुप्त को सबसे अधिक डर इस महादंडनायक से ही लगता था। यह तिलभट्टक कहीं भी और किसी भी अवसर पर वैशाली के गौरव को क्षति नहीं पहुँचने देता था।

'स्वागतम् भन्ते दंडनायक !' चन्द्रगुप्त ने अपने सामने के हस्तिदन्त-खचित आसन की ओर इंगित करते हुए कहा, 'इस पर बैठिए। और भणे फल्गुदत्त, तू द्वारपाल के पास रहना। कोई भी क्यों न हो, इस समय किसी को भीतर मत आने देना !'

फल्गुदत्त प्रणाम करके बाहर चला गया।

तिलभट्टक उसे जाते हुए देखता रहा। जब वह चला गया तो उसने चारों ओर देखा। कोने में दो स्वर्ण दीपिकाएँ जल रही थीं और उनका मन्द प्रकाश कक्ष को आलोकित कर रहा था। कक्ष में उसे दूसरा कोई भी दिखाई नहीं दिया। परन्तु तिलभट्टक ने एक बार पुनः कक्ष में दृष्टि घुमाकर देखा, मानो इस प्रकार अपने आगमन और कार्य के अति गुप्त होने का संकेत कर रहा हो।

चन्द्रगुप्त ने उसके आशय को समझकर कहा—भन्ते महादंडनायक! अब यहाँ दूसरा कोई नहीं है। केवल हम दोनो ही हैं। लेकिन आप इस प्रकार, इस वेश में अकस्मात् यहाँ आये हैं, इससे मुझे शंका होती है कि वैशाली में कुछ अघटित तो नहीं हुआ!

'वैशाली में? नहीं प्रभु, वैशाली में तो कुछ भी नहीं हुआ, लेकिन यहाँ जो कुछ हुआ है, वह ज्ञात होते ही मैं तत्काल दौड़ा चला आया हूँ।'

'यहाँ कुछ हुआ है? नहीं, भन्ते महादंडनायक, यहाँ तो कुछ भी नहीं हुआ!'

'प्रभु!' तिलभट्टक ने उसके बिलकुल समीप आकर कहा। उसका स्वर एकदम शान्त और वाणी विश्वासोत्पादक थी। 'कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो घटित हो जाती हैं, फिर भी ऐसा नहीं लगता कि घटित हुई हों। उनका परिणाम बहुत देर बाद दृष्टिगोचर होता है और उस परिणाम को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अकस्मात् घटित हो गई हों। परन्तु वास्तव में वे बहुत पहले घटी घटनाओं का दूरगामी परिणाम होती हैं। यह बात भी कुछ ऐसी ही है। वैशाली में हमें इस बात का पता चला। आपको भी यह बात विदित हो जाये इसलिए मैं तत्काल दौड़ा आया हूँ। परन्तु क्या सच ही आपको कुछ भी ज्ञात नहीं?'

तिलभट्टक ने बात कुछ इस ढंग से कही कि चन्द्रगुप्त की समझ में नहीं आया, वह क्या उत्तर दे। सारा प्रश्न उसके समक्ष एक रहस्यमय पहेली के रूप में प्रस्तुत किया गया था। वैसे होने को तो यहाँ एक बात अवश्य हुई थी। एक कुमार का जन्म हुआ था। परन्तु इस घटना के महत्त्व और दूर-

गामी परिणामों पर वैशाली में कोई इस प्रकार सोच भी सकता है, यह बात चन्द्रगुप्त को बड़ी ही विस्मयजनक प्रतीत हुई।

वह सोच ही रहा था कि क्या कहना उचित होगा, तभी तिलभट्टक ने आगे कहा—आपके विरुद्ध एक अत्यन्त घृणित प्रचार किया जा रहा है और वह भी यहीं इसी पाटलीपुत्र नगर में; परन्तु सम्भवतः आपने कुछ भी नहीं सुना है। इससे तो यही प्रतीत होता है कि सारा प्रचार अत्यन्त गुप्त रूप से किया जा रहा है। क्या वास्तव में, महाराज ने कुछ भी नहीं सुना ?

'आप तनिक स्पष्ट रूप से और विस्तारपूर्वक बतलायें कि बात क्या है तो मैं सम्भवतः कुछ कह सकूँ।'

'बात केवल इतनी ही है प्रभु, कि आप भूतकाल के मगधपति नवनन्द की भाँति हीनकुलोत्पन्न हैं, यह तो हुई पहली बात। उतने ही भीरु भी हैं, यह हुई दूसरी बात। वैसे ही निष्ठुर और क्रूर भी हैं, यह हुई तीसरी बात.... और क्या चौथी बात भी सुनना चाहते हैं ? परन्तु महाराज सुनना चाहें तो भी मैं नहीं बताऊँगा। उसके शब्द स्वयं मुझे ही उपालम्भ की भाँति लगेंगे।'

तिलभट्टक की यह बात सुनते ही चन्द्रगुप्त व्यग्र हो गया। वैशाली में जो बात इस प्रकार सामान्य चर्चा का विषय बन गई थी उसके बारे में यहाँ पाटली-पुत्र में उसे कुछ भी ज्ञात नहीं ? यह तो उसके अज्ञान की सीमा हो गई! मारे लज्जा के उसका सिर नीचा झुक गया।

तिलभट्टक से चन्द्रगुप्त की यह स्थिति छिपी न रही। उसने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—निश्चय ही महाराज को कुछ भी पता नहीं। अवश्य ही सारा प्रचार अत्यन्त गुप्त रीति से किया गया है। वहाँ, वैशाली में, स्वयं हमें भी कुछ पता नहीं था। हमारे महामंत्री हरिषेण महोदय को ही सबसे पहले यह बात ज्ञात हुई। हमारे महामंत्री महादंडनायक भी हैं और महाकवि भी! विश्व के सभी विद्वानों की यह परम अभिलाषा रही कि श्री और सरस्वती का एक स्थान पर मिलन हो। परन्तु महामंत्री हरिषेण महोदय ने श्री और सर-स्वती के साथ वीरत्व का योग भी साध्य किया है। उनकी वीरता देखकर शस्त्रास्त्र भी रोमांचित हो उठते हैं। जैसे ही महामंत्री हरिषेण महोदय को आपके सम्बन्ध में प्रचारित की जा रही इस बात का पता चला उन्होंने मुझे

आपके पास भेजा। उन्होंने आपके लिए यह सन्देश दिया है।

यह कहकर तिलभट्टक ने अपने काषाय चीवरों में से काष्ट-पट्टिकाओं में आवेष्टित राजमुद्रिका से अंकित सन्देश-पत्रक निकालकर चन्द्रगुप्त के हाथों में थमा दिया।

३. महामंत्री हरिषेण का सन्देश

उस सन्देश को पढ़ते ही चन्द्रगुत को तो जैसे काठ मार गया! उसी के विरुद्ध इतना भयंकर षड्यंत्र रचा जा है और स्वयं उसी को कुछ पता नहीं! उसके चेहरे का सारा नूर ही उड़ गया! उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मगध का महामंत्री मंत्रगुप्त इतना भयंकर होगा। महामंत्री हरिषेण का सन्देश शुद्ध संस्कृत भाषा में था। लेखक ने सन्देश के शब्द-शब्द में अपना हृदय पिरोकर रख दिया था। पाटलीपुत्र में कौमुदी-महोत्सव होने जा रहा था। इस बात को तो चन्द्रगुप्त भी जानता था। प्रतिदिन कौमुदी-महोत्सव का डिंडिमिका-घोष हो रहा था। इस उत्सव में मगधपति ने निकट-दूर के सभी प्रदेशपतियों को आमंत्रित किया था। विदिशा के सदाचन्द्र के आने की बात थी। मथुरापति कीर्तिसेन को तो उस समय पाटलीपुत्र में होना ही चाहिए। वृद्ध प्रवरसेन के भी आने की सम्भावना थी। भवनाग के भी आने की पूरी-पूरी आशा थी। ये दोनो वृद्ध महीप शिष्टाचार के नाते ही सही, पर आयेंगे अवश्य। सब मिलकर कल्याण वर्मा को मगधपति घोषित करेंगे और उस समय चन्द्रगुप्त या तो बन्दीगृह में होगा या निर्वासन में। ऐसा षड्यंत्र रचा जा रहा था कि चन्द्रगुप्त के लिए उपर्युक्त दो मार्गों के अतिरिक्त कोई तीसरा मार्ग रहने ही नहीं दिया जाये।

इस षड्यंत्र की सफलता के लिए, कौमुदी-महोत्सव में ही, चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में यह प्रचार किया जाने को था कि वह हीनकुलोत्पन्न है और हीन-कुलवाले लिच्छवियों से उसके सम्बन्ध हैं, इसलिए मगध महाराज सुन्दर वर्मा को उसे इस प्रकार निकाल बाहर करना चाहिए जिस प्रकार पूर्व काल में नव-

नन्दों को मगध से निकाला गया। और यदि महाराज नहीं निकालते तो चन्द्रगुप्त को स्वयं ही चला जाना चाहिए, क्योंकि मगध का उत्तराधिकारी जन्म ले चुका था और चन्द्रगुप्त की पाटलीपुत्र में उपस्थिति उस उत्तराधिकारी के हितों को हानि पहुँचानेवाली हो सकती थी।

षड्यंत्रकारियों की यह योजना भी थी कि वृद्ध प्रवरसेन को नवजात मगधपति का अभिभावक और रक्षक नियुक्त कर दिया जाये। इस नियुक्ति के सम्बन्ध में उनका तर्क यह था कि ऐसा करके ही मगध की रक्षा की जा सकती थी और विदेशी आक्रमणकारियों को भारत से भगाया जा सकता था। मगध के निवासी मगध के वास्तविक उत्तराधिकारी को ही स्वीकार कर सकते थे और उसी के नाम पर एकताबद्ध होकर देश-रक्षा के महत् अनुष्ठान में अपना योग दे सकते थे। सुन्दर वर्मा ने चन्द्रगुप्त को जो महत्त्व दिया वह गलत था और अब मगधपति को अपनी यह भूल सुधार लेनी चाहिए।

ऐसी थी उस षड्यंत्र की रूपरेखा। कौमुदी-महोत्सव के समय ही चन्द्रगुप्त के ऊपर यह वार करने की योजना बनाई गई थी। उसे अपने विरुद्ध किये जानेवाले प्रचार के बारे में पता भी न चलने पाये और सारा भारतवर्ष उसके बारे में जान जाये और वह एक राजा के रूप में कहीं खड़ा ही न हो सके—अपने साकेत में भी नहीं।

सन्देश पढ़ते-पढ़ते चन्द्रगुप्त की आँखों के आगे अँधेरा छा गया और उसके हाथों के तोते उड़ गए। क्या उत्तर दे, यह उसकी समझ में नहीं आया।

सहसा उसे एक नयी बात सूझ गई। वैशाली और मगध के बीच परम्परागत वैर चला आता था। मगध का विनाश और वैशाली का अभ्युदय यह था लिच्छवियों का सदियों पुराना स्वप्न। अब वैशाली में हरिषेण-जैसा महामंत्री था। तिलभट्टक-जैसा महादंडनायक था, जो किसी को भी अपनी अँगुलियों पर नचा सकता था। और थी कुमारदेवी, जो वैशाली को अखिल भारत का केन्द्र बनाना चाहती थी। क्या ये तीनों इस सुअवसर को यों ही चला जाने देंगे ? क्या वे इससे लाभ नहीं उठायेंगे ? कहीं उन्होंने यह सन्देश इसी प्रयोजन से तो नहीं भेजा है ?

लेकिन यह भी तो हो सकता है कि उन्होंने यह सन्देश उसे पाटलीपुत्र

से हटाने के ही लिए भेजा हो ? हो सकता है कि वैशालीवाले भी उसके रिपुओं से मिल गए हों। वह मगध छोड़कर भाग जाये, सम्भवतः इसी लिए यह बात खड़ी की गई है।

कौमुदी-महोत्सव में क्या होगा और क्या नहीं इसे वह स्वयं नहीं जानता, सम्भवतः कोई भी नहीं जानता, जानने का कोई उपाय भी नहीं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि उसके पहले ही यह बात वैशाली कैसे पहुँच गई ! किसी तरह पता लगाना चाहिए कि वैशालीवालों को मालूम हुआ तो कैसे हुआ ?

वह सतर्क हो गया और उसने तिलभट्टक से पूछा—महादंडनायक, आपको इस बात का पता कैसे और कहाँ से चला ? अभी तो कौमुदी-महोत्सव हुआ नहीं है। डिंडिमिका-घोष ही हो रहा है। उत्सव में अभी देर है। मैं तो केवल इतना जान पाया हूँ कि उसमें एक मनोरम नृत्य-नाटिका अभिनीत होगी। फिर कैसे विश्वास कर लिया जाये कि जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा ?

तिलभट्टक ने उत्तर नहीं दिया। वह उठकर खड़ा हो गया। उसने अपनी कमर के चारों ओर लपेटे हुए भोजपत्रों को खोलकर चन्द्रगुप्त के सामने ढेर लगा दिया और तब बोला :

'महाराज, किसने कहाँ क्या लिखा है, इसे जानना हमारे महामंत्री हरिषेण अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उन्हें इसमें आनन्द भी आता है; क्योंकि वह स्वयं भी कवि हैं। यह उस नृत्य-नाटिका की प्रतिलिपि है जो कौमुदी महोत्सव में अभिनीत होगी। महाराज स्वयं इसे पढ़ सकते हैं। इसकी रचना की है आपकी यहीं की कवयित्री विज्जका ने !'

'किसने ? कवयित्री विजका ने ?'

'हाँ महाराज! शस्त्रास्त्रों का सामना तो आप कर सकते हैं, परन्तु साहित्य के इस आयुध का प्रतिरोध आप तो क्या किसी के भी बस की बात नहीं। यह आपको सदा के लिए पददलित कर देगा और आप कभी भी उठ नहीं पायेंगे।'

चन्द्रगुप्त कवयित्री विज्जका को जानता था। वह बड़ी ही गर्विष्ठ नारी थी। अपने आगे किसी को कुछ गिनती ही नहीं थी। कवि तो वह अपने अति-

रिक्त किसी को मानने के लिए तैयार ही नहीं होती थी। उसकी उक्तियाँ तीर से भी तीक्ष्ण होती थीं। वे सीधे श्रोताओं के हृदय को वेधती हुई आर-पार निकल जाती और उनकी जबान पर चढ़ जाती थीं। चन्द्रगुप्त से वह अत्यन्त घृणा करती थी और महारानी का तो वह दाहिना हाथ ही थी।

चन्द्रगुप्त समझ गया कि यह सारा षड्यंत्र मगध के महामंत्री, मगध की रानी और विज्जका ने मिलकर रचा है। अब उसे तिलभट्टक की बात पर विश्वास हो गया।

उसने अपने सामने पड़े हुए भोजपत्रों पर एक सरसरी निगाह डाली। उनमें लिखा था :

मगधजन एक उत्तराधिकारी के लिए स्थान-स्थान पर प्रार्थना कर रहे हैं। कोई उत्तराधिकारी नहीं। उन्हें कोई उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं होता। महाराज सुन्दर वर्मा से उत्तराधिकारी-विहीन पृथ्वी का करुण क्रदन सुना नहीं जाता, प्रजा का दुःख देखा नहीं जाता। वह साकेत से चन्द्रगुप्त को बुलाते हैं। चन्द्रगुप्त आता है। उसी रात महारानी को स्वप्न आता है। स्वप्न में पृथ्वी महारानी को उपालम्भ देती है। वह कहती है—रानी, क्या इस हीनकुलोत्पन्न, निष्ठुर और नवनन्द-जैसे क्षुद्र को मुझे पुनः आत्मसमर्पण करना होगा? इससे तो अच्छा है कि यवन, यूनानी और शक ही मेरा उपभोग करें।

महारानी क्षमा माँगती हैं। पृथ्वी उन्हें आशीर्वाद देती है। कल्याण वर्मा का जन्म होता है। राज्य-भर में उत्सव मनाया जाता है। उत्सव में ही पता चलता है कि चन्द्रगुप्त का लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध है।

सारा पाटलीपुत्र नगर उसका बहिष्कार करता है। सुन्दर वर्मा उसका तिरस्कार करता है। महारानी स्वयं उसके निर्वासन की आज्ञा देती हैं।

चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र से निर्वासित कर दिया जाता है। नाटक समाप्त होता है।

'इस नाटक में केवल एक ही बात का उल्लेख करना शेष रह गया।' चन्द्रगुप्त ने कहा।

'वह क्या?'

'यह भी लिखना चाहिए था कि मैं दानव हूँ, मानव नहीं।'

'बहुत शीघ्र इस बात का समावेश भी हो जायेगा। कवयित्री तो आपका भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ बतला सकती है। कवि के लिए असम्भव क्या है? यह कहनेवाला भी निकल आयेगा कि चन्द्रगुप्त के हृदय में किसी अधोगति-प्राप्त अतृप्त आत्मा का निवास है। सम्भवतः यही कहा जाये कि नापितनन्द ने ही चन्द्रगुप्त के रूप में पुनर्जन्म धारण किया है।

'और जिसका महाराज अवलोकन कर रहे हैं वह तो नाटक का केवल एक अंक है। अभीष्ट वातावरण का निर्माण करने और लोगों का मन परिवर्तित करने के लिए इसका अभिनय किया जायेगा। उद्देश्य केवल यह दिखलाना है कि मगध का राज्य हीनकुल में जाने से बच गया। इस उद्देश्य की पूर्ति इतने छोटे अंश से ही हो जाती है। भविष्य में, आवश्यकता होने पर, इसमें वृद्धि भी की जा सकती है।'

इस प्रकार तिलभट्टक ने चन्द्रगुप्त को विचारों के वर्तुल में फँसा दिया। यही वह चाहता भी था।

और चन्द्रगुप्त सोचने लगा कि अब मैं क्या करूँ? मेरा स्थान कहाँ है? जिस कौमुदी-महोत्सव तक यहाँ रुकना चाहता था वह तो मेरे लिए गड्ढा खोदनेवाला होगा। उसमें जो नाटक अभिनीत किया जा रहा है उसे देखते ही शत-सहस्र प्रजाजन मुझे बन्दीगृह में डालने के लिए दौड़ पड़ेंगे।

नाटक की ध्वनि ही ऐसी थी कि जो कल तक 'युवराजपदीय कुमारामात्य' था वह आज कुछ भी नहीं था। नगण्य से भी नगण्य और एकदम हीन था। शस्त्र का सहारा भी वह नहीं ले सकता था। सेना उसके नियन्त्रण में नहीं। सेनापति वह नहीं, कुंजरक था। वह तो केवल दर्शनी हुण्डी की भाँति 'युवराजपदीय' था। विज्जका ने उससे जाने किस जन्म का वैर निकाला है! उसके पतन के ही लिए उस दुष्टा ने यह नाटक लिखा है। कौमुदी-महोत्सव के लिए रुकता है तो पतन होता है, यदि नहीं रुकता है तो पाटलीपुत्र से सदा के लिए निर्वासित हो जाना पड़ता है। महामंत्री, महारानी और विज्जका ने मिलकर ऐसा जाल रचा है कि वह किसी भी प्रकार निस्तार नहीं पा सकता।

हो सकता है कि वह सुरक्षित रूप से साकेत पहुँच जाये, लेकिन वहाँ पहुँच-

कर भी उसे जन्म-भर मगधपति के आश्रित मांडलिक अथवा क्षत्रप के ही रूप में जीना होगा !

और हो सकता है कि उसे साकेत से भी हाथ धोना पड़ें।

साकेत के साथ ही उसे अपने पितामह श्रीगुप्त का स्मरण हो आया। उनके मुँह से उसने बचपन में रघुवंश के महान नृपतियों की अनेक प्रेरणात्मक कथाएँ सुनी थीं।

साकेत में रघुवंशी नृपतियों की महान परम्परा और यशोगाथा को पुनः जीवित करने की उसके पितामह श्रीगुप्त की बड़ी अभिलाषा थी। उन्होंने उस दिशा में कतिपय प्रयत्न भी किये थे। छोटे-से साकेत को उन्होंने बड़ा और महान बनाया। कीर्ति प्राप्त की। मांडलिक होते हुए भी स्वतंत्र, सार्वभौम राजा की भाँति आचरण किया। मगध का आश्रय उन्होंने छोड़ ही दिया। समयानुसार कभी झुके और कभी तने। जब तक जिये अपनी सामर्थ्य के अनुसार रघुवंशियों की परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करते रहे।

उनकी बड़ी इच्छा थी कि उनके कुल में कोई रघुपति जन्म लेता; ऐसा रघुपति जो अपने विक्रम और पौरुष से समस्त भारतवर्ष को आच्छादित कर दे। ऐसे भारतवर्ष का निर्माण करे जिसका नाम सुनते ही रोम के सीज़र और पार्शव देश के शासानुशास भी काँप उठें और जिसका साम्राज्य भारत के पार गान्धार तक फैला हुआ हो। लेकिन पितामह का यह स्वप्न स्वप्न ही रहा। अपने स्वप्न को हृदय में लिये हुए ही वह परलोकगामी हुए। रह गये पिता घटोत्कच। वृद्ध होकर भी वह साकेत की मान-मर्यादा को बनाये हुए थे। साकेत के स्वतंत्र अस्तित्व को उन्होंने अब तक अक्षुण्ण रखा था। वह किसी के सामने झुकते नहीं और न किसी से संघर्ष ही मोल लेते हैं। मगधपति सुन्दर वर्मा का निमंत्रण पाकर जब वह साकेत को छोड़कर मगध के शासन-सूत्रों का संचालन करने के लिए पाटलीपुत्र आ रहा था तो उसके बूढ़े पिता ने कहा था—वत्स, मैं तो तेरे इस कृत्य से सहमत नहीं। तू पाटलीपुत्र को अपने पुरुषार्थ से जीतने के लिए नहीं जा रहा है; तू जा रहा है उसका दान लेने के लिए। और दान लेना क्षत्रियों का नहीं, ब्राह्मणों का काम है। हमारी इस साकेत नगरी की, जहाँ रघुपति राघव राजा राम-जैसे नृपति हो गए, कभी यह पर-

म्परा नहीं रही। तेरा यह कृत्य हमारे लिए शोभा की बात नहीं। देख लेना, यह निभेगा भी नहीं।

और हुआ भी वही, जैसा पिता ने कहा था।

चन्द्रगुप्त बड़ी आशाओं और उमंगों से पाटलीपुत्र आया था। उसे विश्वास था कि वह मगध की अराजकता को दूरकर यहाँ व्यवस्था स्थापित कर सकेगा, सुन्दर वर्मा को प्रेम से जीत सकेगा, स्वयं महाबलाधिकृत बन सकेगा और आगे चलकर मगध के सिंहासन पर आसीन होकर महान मगध का महान नृपति बन सकेगा। इन्हीं विश्वासों से प्रेरित पिता को प्रणाम करके वह पाटलीपुत्र के लिम चल पड़ा था।

परन्तु उसका कोई विश्वास फलीभूत नहीं हुआ। उसने पितामह के स्वप्नों और आदर्शों को खोया, साकेतपति के गौरव को गँवाया, अपने पिता की परम्परा और उत्तराधिकार को भी वह सुरक्षित न रख सका। आज वह न मगधपति था, न साकेतपति और न प्रदेशपति। आज उसके लिए कोई उज्ज्वल भविष्य, कोई उत्कृष्ट परम्परा और किसी प्रकार का उत्तराधिकार भी नहीं था।

वह था केवल, निरा चन्द्रगुप्त! और अब कौमुदी-महोत्सव में अभिनीत होनेवाले नाटक के अनुसार तो वह था हीनकुलोत्पन्न नापित नन्दराज के समान क्षुद्र, क्षुल्लक और निर्वासित किये जाने के योग्य!

लेकिन विज्जका ने झूठ ही क्या लिखा है? क्षुद्र तो मैं हूँ ही! क्षुल्लक न होता तो श्रीगुप्त और घटोत्कच-जैसे स्वाभिमानियों का उत्तराधिकारी मैं यहाँ भिखारी बनकर क्यों आता? इससे अधिक हीनता और क्या होगी? कवयित्री ने ठीक ही लिखा है!

उसका हृदय पश्चात्ताप की आग में जलने लगा। उस का मन गहन निराशा से भर गया।

बूढ़े पिता की सेवा करने के बदले मैं यहाँ, मगध में क्यों पड़ा हूँ? मुझे लौट जाना चाहिए, अभी ही, तत्काल!

इस विचार के आते ही वह उठकर खड़ा हो गया। परन्तु तभी उसे खयाल आया कि तिलभट्टक सामने बैठा मेरी प्रत्येक गति-विधि को देख रहा है; और यह विचार आते ही वह पुनः आसन पर बैठ गया।

'तिलभट्टक !' थोड़ी देर मौन रहने के बाद उसने कहा, 'मैं आपका अत्यधिक कृतज्ञ हूँ। आपने मुझे पतन की गहरी खाई में गिरने से बचा लिया। मेरी अयोध्या नगरी मुझे बुला रही है। वहाँ रघुवंश की परम्परा है। रामचन्द्र-जैसे राजा के प्रजारंजन का आदर्श वहाँ पर है। भारतवर्ष के गौरव की अमर गाथा का निर्माण वहीं पर हुआ है। यहाँ क्या है ? कुछ भी नहीं। मेरा स्थान यहाँ नहीं वहीं पर है। मैं रह सकता हूँ तो वहीं, या फिर कहीं नहीं। मेरा साकेत ही मेरे लिए बहुत है। मैं मगधपति बनना नहीं चाहता, मगध का रक्षक बनना भी नहीं चाहता, भारतपति बनने की अभिलाषा भी नहीं। बस यही चाहता हूँ कि मुझे मेरा साकेत मिल जाये और वृद्ध पिता की सेवा करने का अवसर प्राप्त हो। जो कुछ जानने को मिला है उसके बाद अब मैं पाटलीपुत्र में एक क्षण भी रहना नहीं चाहता। शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से चला जाऊँगा। आप महामंत्री हरिषेण महोदय को मेरा नमस्कार कहें और यह भी निवेदन करें कि कभी समय निकालकर वह साकेत आयें। रघुवंश की यशःगाथा का गान करते हुए कुछ समय हम वहाँ काव्य-चर्चा और काव्यानन्द में व्यतीत करेंगे। यहाँ तो मेरा सारा समय व्यर्थ ही गया, किसी प्रकार की कोई भी उपलब्धि नहीं हुई। यहाँ आकर सारे आदर्श चूर हो गए, सब स्वप्न भंग हो गए, स्वप्नों की राख भी हाथ न लगी। यहाँ था ही क्या जो कुछ मिलता। नन्द की इस राक्षसी भूमि में परम्पराएँ और संस्कृति है ही कहाँ ? यहाँ तो कार्षापण की खनक है, स्वर्ण की चकाचौंध है; और यहाँ का सोना लोहे से भी हलका है। मुझे मगध का अब तनिक भी मोह नहीं। मैं तो यही सोचकर दुःखित हूँ कि यहाँ आकर मैंने कितना कुछ गँवाया ! राजवंश का गौरव खोया, काव्य का आनन्द खोया, अरे, जीवन की महत्ता से ही वंचित हो गया ! यह पाटलीपुत्र नगरी मुझे काटे खा रही है। यदि पंख होते तो मैं अभी उड़कर यहाँ से चला जाता। वैशाली और मगध को जो करना हो करते रहें। मैं तो अब साकेत लौट जाना चाहता हूँ। वहीं बैठकर नये आदर्शों का निर्माण करूँगा। मैं भला और मेरा साकेत भला।'

लेकिन तिलभट्टक ने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। वह भी हरिषेण-जैसे महामंत्री के साथ रहा था। और हरिषेण की यह विशेषता थी कि वह

अपनी भव्य और उदात्त कल्पना के साथ अपने श्रोताओं को बहा ले जाने की क्षमता रखता था। जब उसका कवि जाग्रत होता और वह भारत में पुनः किसी महाविक्रमशाली रघुवंशी राजा को प्रतिष्ठित करने की बात करता तो सुननेवाले चकित ही नहीं होते, अनुप्राणित और रोमांचित भी हो जाते थे। कभी उन्हें लगता कि यह कवि नितान्त पागल है और असम्भव कल्पनाओं में लीन हो गया है। कभी उन्हें लगता कि इसकी कल्पनाएँ नितान्त असम्भव तो नहीं ही हैं, जो कहता है उसे सम्भव भी किया जा सकता है। इस समय तिलभट्टक को चन्द्रगुप्त के विचार सुनकर लगा कि हरिषेण और चन्द्रगुप्त की आदर्श कल्पनाओं में चमत्कारिक साम्य है। हरिषेण की भाँति चन्द्रगुप्त के मन में भी महान सपने सोये पड़े हैं। हरिषेण की ही भाँति चन्द्रगुप्त के सोये स्वप्न भी कभी-कभी अँगड़ाई लेकर उठ बैठते हैं। महाकवि हरिषेण की ही भाँति चन्द्रगुप्त की भी भारत भूमि में अपार श्रद्धा है। यदि दोनो के स्वप्न प्रबुद्ध हो गए तो दोनो मिलकर क्या नहीं कर सकते? और तब वह कितनी बड़ी सार्थकता होगी?

तिलभट्टक ने यह भी लक्ष्य किया कि इस समय चन्द्रगुप्त के मन में तुमुल संघर्ष हो रहा है—एक ऐसा संघर्ष, ऐसा सर्वव्यापी मनोमन्थन जो महामानव का स्रष्टा होता है। वास्तविक पश्चात्ताप के बिना ऐसा संघर्ष कभी भी सम्भव नहीं। अपने गौरव से च्युत होने की तीव्रतम अनुभूति ही ऐसे पश्चात्ताप की जननी होती है।

जब तिलभट्टक वैशाली से चलने लगा तो हरिषेण महामंत्री ने चन्द्रगुप्त के लिए एक मौखिक सन्देश भी दिया था; और कहा था कि जब चन्द्रगुप्त के मन में पश्चात्ताप की अग्नि दहक उठे और तुमुल संघर्ष छिड़ जाये तभी यह सन्देश उसे देना। तिलभट्टक ने देखा कि उस सन्देश को प्रदान करने का उपयुक्त अवसर आ गया है; इसलिए उसने कहा :

'महाराज, यह सत्य है कि प्रेम-विहीन हृदय प्रस्तर-खंड होता है; परन्तु आदर्श कल्पना और स्वप्न-विरहित मन तो निरा मरुस्थल ही है। मैं आपको महाकवि का सन्देश प्रदान करने के लिए आया था। महाराज सावधान होकर सुनें। मैं कह रहा हूँ कि मैं महाकवि का सन्देश देने आया था; महामंत्री

का सन्देश नहीं, महाकवि का सन्देश। महाकवि हरिषेण का सन्देश लेकर मैं आया हूँ। वह सन्देश महाकवि ने मुँहजबानी भेजा है।'

'महाकवि का सन्देश ?'

'हाँ महाराज; महाकवि का सन्देश।'

'बताओ तिलभट्टक, क्या है वह सन्देश ?'

'महाकवि ने कहलवाया है कि देश महान वह है जहाँ की प्रजा महान होती है। प्रजा महान वह है जहाँ महामानव होते हैं। महामानवों के स्रष्टा और सर्जक हैं प्रेम और प्रज्ञा। महाराज, इस समय हमारे समक्ष सबसे महान प्रश्न इस या उस नगर का नहीं, इस या उस प्रदेश का नहीं, इस या उस प्रणाली और तंत्र का भी नहीं; हमारे समक्ष सबसे महान प्रश्न है भारतवर्ष की संस्कृति को, उसके सांस्कृतिक जीवन को पुनः प्रतिष्ठित करने का, नूतन भारत के निर्माण का, रघुवंश की परम्परा को पुनर्जीवित करने का, महाकल्याणकारी चक्रवर्ती शासन के द्वारा भारत की एकता को स्थापित करने का। यदि भारत एक हो गया तो अनेक शत्रु मिलकर भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते; यदि भारत खंडित और विभाज्य रहा तो अकेला एक शत्रु भी इसे रौंद सकता है, पदमर्दित कर सकता है। प्रश्न यह है कि भारत जीयेगा अथवा मरेगा, भारत भारत रहेगा या नहीं रहेगा? मुख्य प्रश्न यही है महाराज, और सारे प्रश्न गौण हैं।'

चन्द्रगुप्त गहन विचारों में लीन हो गया। उसने हरिषेण, कुमारदेवी, तिलभट्टक और लिच्छवियों के बारे में सुना था; उनके बारे में वह थोड़ा-बहुत जानता भी था। तिलभट्टक की बात सुनकर उसे विश्वास हो गया कि लिच्छवियों के पास आदर्श कल्पनाएँ हैं और उन आदर्शों के लिए जीने और मरने की सामर्थ्य भी उनमें है।

और इधर तिलभट्टक कहे जा रहा था :

'महाराज, जब हमने वहाँ वैशाली में यह सुना कि कल्याण वर्मा के जन्म के उपलक्ष्य में कौमुदी-महोत्सव आयोजित किया जा रहा है तभी समझ गए थे कि यहाँ मगध में कोई अघटित कांड अवश्य होगा। मगध में जो भी हो, दुःख इस बात का नहीं; परन्तु दुःख इस बात का है कि अपने कृत्य के द्वारा

मगध भारत के पतन का कारण होगा। कुशान, यवन, शक और यूनानियों के आक्रमण भारत पर पुनः आरम्भ हो जायेंगे। यह स्थिति हमारे लिए असह्य है और युद्ध करने की स्थति में भी हम नहीं हैं। बड़ी विषम समस्या हमारे सामने है। अभी तीन दशाब्दियों पहले ही भारत पर विदेशियों के प्रबल आक्रमण हुए थे और यहाँ की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी थी—मगध रौंदा गया, आपका साकेत भी रौंदा गया, कई प्रदेश और नगर लूटे गए और अनेक लोग तलवार के घाट उतारे गए! घर-घर में शोक छा गया, गाँव-गाँव और नगर-नगर में अराजकता और अव्यवस्था व्याप्त हो गई। हृदय को कम्पित करनेवाले अत्याचार और नृशंसताएँ की गईं। क्या इस भारत भूमि को पुनः यह सब भुगतना होगा? मुख्य प्रश्न यही है महाराज। अन्य सब प्रश्न इस महान प्रश्न के सम्मुख गौण हैं। महाकवि हरिषेण ने यही कहलवाया है।'

'लेकिन मार्ग क्या है? उपाय क्या है?' चन्द्रगुप्त ने विह्वल स्वर में पूछा।

'उपाय एक ही है प्रभु।'

'कौन-सा?'

'यहीं रहकर अपने आदर्शों और स्वप्नों को सफल बनाया जाये, उन्हें चरितार्थ कर दिखाया जाये! प्रवरसेन यही करना चाहता था लेकिन यह उसके बूते की बात नहीं। दक्षिणापथ का कोई भी, फिर वह कितना ही वीर क्यों न हो, मगध पर आक्रमण करनेवाले विदेशियों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध नहीं कर सकता। इतिहास इसका साक्षी है। शातवाहन ने प्रयत्न किया, परन्तु असफलता ही हाथ लगी। विदेशी आक्रान्ताओं की लहरों-पर-लहरें आती गईं, मगध लूटा गया, पाटलीपुत्र रौंदा गया, असहनीय अत्याचार हुए और प्रजा नष्ट-भ्रष्ट हो गई! आन्ध्रों ने प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें भी मुँह की खानी पड़ी। कलिंगों ने प्रयत्न किया, परन्तु परिणाम वही हुआ। विन्ध्य-वैशाली के प्रवीर प्रवरसेन का प्रयत्न भी इसी दिशा में था। वह अधिक सक्षम और सुचारु ढंग से प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु उनके प्रयत्नों का परिणाम भी असंदिग्ध रूप से वही होता। उनकी महत्त्वाकांक्षा पूरी नहीं होने पाई है। मगध की सारी उछल-कूद उन्हीं के बल-बूते पर है। मगधपति का सारा जोर

उन्हीं के बल-भरोसे पर है। आपको पदच्युत करने का निर्णय भी उन्हीं की शक्ति और सामर्थ्य पर किया गया है। मगध के राजपुरुषों और मगधपति को विश्वास है कि उनकी सहायता से आपको उखाड़ा जा सकता है, और इसी धारणा के आधार पर यह निर्णय किया गया है। परन्तु वैशाली की तो यह निश्चित मान्यता है कि भारत की रक्षा और मगध का उद्धार या तो पाटलीपुत्र कर सकता है या वैशाली, तीसरे किसी में यह सामर्थ्य नहीं।

'वैशाली के सम्बन्ध में आपकी नीति और मगधपति की नीति में पर्याप्त भिन्नता है। देर-अबेर यह भिन्नता दोनो के पारस्परिक संघर्ष का कारण होकर रहेगी। उस समय यदि आप पाटलीपुत्र में रहे तो दो में से एक परिणाम अनिवार्य है—या तो कारागार या निर्वासन! कौमुदी-महोत्सव का प्रसंग तो केवल निमित्त है। उसका उद्देश्य इतना ही है कि प्रजा के मन को बदला जा सके। ऐसी स्थिति में आपको तत्काल किसी निर्णय पर पहुँचना होगा। कल पर इसे टाला नहीं जा सकता। आज भले ही न हो और भले ही कुछ समय तक रुकना पड़े, परन्तु भारतवर्ष को बचाने के लिए वैशाली और पाटलीपुत्र को आगे चलकर एक होना ही पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कोई गत्यन्तर नहीं है। मगध तो इस बात को मानता नहीं है; महाराज मानते हैं या नहीं, इसकी हमें जानकारी नहीं। परन्तु हम इतना अवश्य जानते हैं कि महाराज वैशाली के प्रति सद्भाव रखते हैं और आपका यही सद्भाव मुझे यहाँ खींच लाया है। हमें केवल इतना ही निवेदन करना है कि आपको जो भी निर्णय करना हो तत्काल कीजिए। विलम्ब से किया हुआ निर्णय निर्णय नहीं रह जायेगा। मगध के आज के वातावरण को देखकर हमें वहाँ वैशाली में बैठे हुए भी यह बात इतने स्पष्ट रूप में दिखाई दे रही है। अब महाराज स्वयं विचार करें।'

चन्द्रगुप्त यह सब सुनता हुआ भी विचार ही तो कर रहा था। वह पाटलीपुत्र को छोड़कर चला जाना चाहता था। यही उसका निर्णय था। परन्तु अब पाटलीपुत्र तो क्या, इस सुगंगप्रासाद से भी बाहर निकलना उसके लिए सम्भव नहीं प्रतीत होता था। उसे लग रहा था कि अत्यधिक विलम्ब हो गया है। उसे अपने चारों ओर तथा राजमहल के प्रत्येक द्वार पर सत्री (गुप्तचर)

मँडराते दिखाई दिये। उसे विश्वास हो गया कि महल से बाहर निकलने के प्रत्येक मार्ग पर महामंत्री मंत्रगुप्त अथवा महाबलाधिकृत कुंजरक के सैनिक खड़े हो गए हैं। अब वह बाहर निकलकर जाये भी तो किस मार्ग से ? पाटलीपुत्र छोड़कर जाना भी चाहे तो कैसे जाये ?

तिलभट्टक भी इन्हीं विचारों में पड़ा हुआ था।

दोनो यही सोच रहे थे कि अब यहाँ के सारे सूत्र महारानी और महामंत्री के हाथ में हैं। उन दोनो को कल्याण वर्मा के लिए चन्द्रगुप्त की उपस्थिति, फिर वह यहाँ रहे या कहीं बाहर चला जाये, संकटप्रद ही प्रतीत होगी। रानी तो चन्द्रगुप्त को अपने बेटे के लिए नंगी कृपाण ही मानती रहेगी। वह यही चाहेगी कि जैसे भी बने चन्द्रगुप्त का अन्त कर दिया जाये। अभी तक उन्होंने उसे मरवा भी डाला होता, परन्तु सम्भवतः परिणाम-भय के कारण ही ऐसा नहीं किया। चन्द्रगुप्त को मरवाने की प्रतिक्रिया उनके हित के विरुद्ध भी हो सकती थी। अभी तो प्रवरसेन शिशु कल्याण वर्मा का अभिभावक बनकर आ रहा था; परन्तु जैसे ही उसे पता चलेगा कि चन्द्रगुप्त नहीं रहा, क्या वह अपना विचार बदल नहीं देगा ? सम्भवतः उस समय वह चन्द्रगुप्त का पक्ष लेकर पाटलीपुत्र को ही घेर ले। और पता नहीं, उस समय वैशाली किस प्रकार का आचरण करे ? इन सब बातों को सोच-विचारकर महामंत्री ने सारे सूत्र अपने हाथ में ले लिये थे। कौमुदी-महोत्सव की घोषणा उसी के नाम से की जाती थी, सेनाओं का निरीक्षण भी वही करता था, प्रदेशपतियों को निमंत्रण भी उसी ने भेजे थे। यह सारा षड्यंत्र उसी का रचा हुआ था और उसने चन्द्रगुप्त के भागने के समस्त मार्ग बन्द कर दिये थे। काश उसने एक भी द्वार खुला रहने दिया होता !

यह सारी परिस्थिति तिलभट्टक के ध्यान में भी थी और वह चन्द्रगुप्त की मनोदशा को अच्छी तरह जान भी गया था। जहाँ तक स्वयं उसका अपना प्रश्न था, वह बौद्ध भिक्षु होने के कारण महल के अन्दर आ सका था और निकलकर बाहर जा भी सकता था। परन्तु चन्द्रगुप्त को ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं थी। चन्द्रगुप्त को साधु के वेश में बाहर निकाल ले जाना भी सम्भव नहीं था। क्योंकि जैसे-जैसे समय बीतता जाता था तिलभट्टक के

लिए भी संकट बढ़ता जा रहा था। इस वेश में आखिर वह कितनी देर तक छिपा रह सकता था? और यदि पहचान लिया गया तो क्या होगा? दोनो ने मिलकर बहुत सिर मारा, परन्तु चन्द्रगुप्त को सही-सलामत सुगंगप्रासाद और पाटलीपुत्र से बाहर ले जाने का कोई मार्ग उनकी समझ में नहीं आया।

दोनो चुपचाप बैठे सोच रहे थे। और दोनो एक-दूसरे को मौन दृष्टियों से देखते जाते थे। एक ही उपाय समझ में आता था। साकेत, वैशाली, विदेह, कोशल, मल्ल, वज्जि आदि प्रदेश किसी समय में गणतंत्र थे। अब भी उनमें पारस्परिक मैत्री और सहानुभूति का अभाव नहीं था। वैशाली उन सब को एकताबद्ध करके अनुप्राणित कर सकती थी। परन्तु इसके लिए भी चन्द्रगुप्त का होना आवश्यक था। उसी के नाम पर उन्हें प्रेरित किया जा सकता था। उसके बिना उन सब का नेतृत्व और संचालन कौन करता? कुमारदेवी थी अवश्य, परन्तु उसे आगे करने से यही समझा जाता कि सारा प्रश्न मगध और वैशाली की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का है। चन्द्रगुप्त को लेकर हो इस प्रश्न को अखिल भारतीय रूप दिया जा सकता था।

वे बैठे अभी सोच ही रहे थे कि चन्द्रगुप्त ने फल्गुदत्त को सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आते देखा। दोनो चिन्तित हो उठे; पता नहीं, आगन्तुक कौन है?

इतने में फल्गुदत्त वहाँ आ पहुँचा और प्रणाम करके बोला—महाराज, महामंत्री मंत्रगुप्त स्वयं पधारे हैं। परमभट्टारक महाराज मगधपति का कोई सन्देश लेकर आये हैं। कहते हैं कि सन्देश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और तत्काल प्रवेश की अनुमति चाहते हैं।

चन्द्रगुप्त ने तिलभट्टक की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। उसके ठीक पीछे ही एक प्रकोष्ठ था। चन्द्रगुप्त के नेत्र उस प्रकोष्ठ की ओर उठे। शब्दोच्चारण का भी समय नहीं था।

तिलभट्टक चन्द्रगुप्त के संकेत को तत्काल समझ गया। वह अपने आसन से उठा और शीघ्रतापूर्वक उस प्रकोष्ठ में जा छिपा। यदि एक भी क्षण की देर हो जाती या शब्दों का आदान-प्रदान किया जाता तो महा अनर्थ हो जाता। परिणाम के विचार-मात्र से चन्द्रगुप्त के रोंगटे खड़े हो गए। क्योंकि

फल्गुदत्त के पीछे-पीछे महामंत्री वहाँ आ पहुँचा था और अभिवादन करके खड़ा था।

'महाराज मेरा अविनय क्षमा करें।' उसने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मधुर स्वर में कहा। उसके स्वर की मधुरता ऐसी थी मानो वह साधु होता-होता महामंत्री बन गया हो।

'...लेकिन मेरे आकस्मिक आगमन के प्रयोजन से अवगत होने पर महाराज निश्चय ही मेरी धृष्टता को अनिवार्य समझेंगे। मैं उपस्थित हुआ हूँ परमभट्टारक परमेश्वरस्वरूप अतुलवीर्य महाराज मगधपति का महत्त्वपूर्ण सन्देश लेकर।'

'मैं सावधान हूँ; महामंत्री सन्देश का कथन करें।' चन्द्रगुप्त ने रीत्यानुसार कहा; परन्तु मन-ही-मन वह मना रहा था कि सुन्दर वर्मा उसे साकेत जाने का ही सन्देश दे तो शुभ हो।

'महाराज को आज से एक गौरवपूर्ण अधिकार की प्राप्ति होती है। इस पद की मुद्रा मैं स्वयं ही अभी लेकर आया हूँ; कल प्रत्यूष वेला में इसका डिंडिमिका-घोष होगा। उसके पहले ही महाराज को अवगत कर देना आवश्यक समझा गया। आज से महाराज को मगधपति ने 'परमभट्टारक कुमारामात्य' का पद और अधिकार प्रदान किये हैं। यह है उसकी राजमुद्रा। महाराज ग्रहण करें।'

चन्द्रगुप्त को इस पद, अधिकार और राजमुद्रा में भयंकर कारागार के ही दर्शन हुए; परन्तु फिर भी उसने शान्तिपूर्वक कहा—महामात्य, यहाँ इस आसन पर बैठिए। मुझे आप से कुछ देर विश्रम्भगोष्ठि करनी है। परमभट्टारक महाराज मुझे स्नेहपूर्वक रखते हैं। मैं महाराज का उपकृत हूँ। परन्तु मंत्रिवर, क्या मुझे अब अपने-आपको महाराज की दूसरी उपयोगी सेवाओं में नहीं लगाना चाहिए?

महामंत्री मंत्रगुप्त ने आगे बढ़कर आसन ग्रहण किया।

४ महामंत्री मंत्रगुप्त

मगध के महामंत्री मंत्रगुप्त की टक्कर का दूसरा राजनीतिज्ञ उस समय सारे भारतवर्ष में नहीं था। वह दूसरा चाणक्य ही था। उसकी कूटचाल का पता लगाना नभोचारी वायु के प्रवाह की गति मालूम करने की तरह असम्भव था।

उसकी वाणी में अद्भुत शक्ति थी। वह किसी भी व्यक्ति के मन में विश्वासी प्रेरित कर सकता था। जितनी सरलता से वह विश्वास जगाता था उतन ही सरलता से अविश्वास भी उत्पन्न कर सकता था। जिस प्रकार बिल्ली चूहे को नचाती है उसी प्रकार वह सामनेवाले आदमी को विश्वास और अविश्वास के बीच नचा मारता था।

चेहरा उसका सौम्य, शान्त, और कुछ-कुछ स्त्रैण-जैसा था। अपने इसी चेहरे की ओट लेकर वह कूटनीति और विनम्रता का खेल खेलता था। विनम्रता की नकाब तो वह इतनी सफाई से चढ़ा सकता था कि उसके नकली होने में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता था। सभी उस विनम्रता को स्वाभाविक और नैसर्गिक ही समझते थे। आज तक एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला था जो उसकी विनम्रता की भूलभुलैया में न पड़ा हो। उसकी वह विनम्रता साँप के झुकने की भाँति भयंकर होकर भी सुन्दर और लुभावनी थी।

जैसे ही कल्याण वर्मा का जन्म हुआ उसने निश्चय कर लिया कि अब चन्द्रगुप्त मगध में नहीं रह सकता। उसकी यह बात महारानी को बहुत अच्छी लगी। महाराज सुन्दर वर्मा को भी उसी ने इस बात की प्रेरणा की।

चन्द्रगुप्त लौटकर साकेत जा सकता था और वहाँ का प्रदेशपति बन सकता था। परन्तु महामंत्री को यह भी स्वीकार नहीं था। कल्याण वर्मा को लेकर महामंत्री ने जो योजना बनाई थी उसके लिए चन्द्रगुप्त का कहीं भी रहना खतरे से खाली नहीं था। साकेत लौटकर तो वह नंगी तलवार ही बन जाता। इसलिए मंत्रगुप्त ने एक गहरी चाल चली। सुन्दर वर्मा के हृदय में चन्द्रगुप्त के लिए स्नेह-भाव था। मंत्रगुप्त ने उसी से लाभ उठाने की ठानी। उसने चन्द्रगुप्त को 'परमभट्टारकपदीय कुमारामात्य' का पद

और अधिकार प्रदान करने का परामर्श राजा को दिया। यह सम्मान देकर ही वह उसे अपनी आँखों के आगे रख सकता था। उसे कारागार में डालने अथवा निर्वासित करने की अपनी गुप्त योजना की उसने किसी को भनक तक नहीं पड़ने दी। उलटे उसने तो महाराज से यहाँ तक कहा कि चन्द्रगुप्त को कल्याण वर्मा का शैशवकालीन रक्षक नियुक्त कर देना चाहिए।

महामंत्री मंत्रगुप्त इतना तो बहुत अच्छी तरह जानता था कि देर-अबेर या तो चन्द्रगुप्त मगधपति बन जायेगा या वैशाली पाटलीपुत्र को हड़प लेगा और चन्द्रगुप्त वैशाली का हो रहेगा। वैशाली के प्रति चन्द्रगुप्त के पक्षपात की गन्ध उसे मिल चुकी थी। वह इस बात को भी जानता था कि पाटली-पुत्र में किसी को बुरा न लगे इसलिए चन्द्रगुप्त वैशाली के प्रति अपने पक्षपात को प्रकट नहीं होने देता, परन्तु मन की गहराइयों में तो वह वैशाली-गण और लिच्छवियों का प्रशंसक और प्रेमी ही था। वह विश्वासपूर्वक इस बात को मानता था कि भारत की परम्परा के रक्षक और उद्धारकर्ता यदि कोई हो सकते हैं तो वे लिच्छवी ही हैं। वह लिच्छवियों के सव्वरतिकर महोत्सव (उत्साह मेलों), उनके नृत्यों, रंगशालाओं, रीति-रिवाजों, उनकी संस्कृति, शक्ति और व्यवस्था, उनके रथों और आयुधों का घोर प्रशंसक और पक्षपाती था। लिच्छ-वियों का ऐसा प्रेमी और प्रशंसक मगध में तो क्या सारे वैशाली-गण में भी दूसरा कोई न था। और जब से उसने यह सुना कि वैशाली का महामात्य हरिषेण महाकवि भी है तब से तो वह उससे मिलने के लिए लालायित हो उठा था। कुछ ऐसे प्रसंग निकालकर वह दो-एक बार वैशाली हो भी आया था। वैशाली में वह प्रमुख लिच्छवियों से मिला था, उनके मन की बातें उसने जानी थीं और अपने मन की बातें उन्हें बता आया था। इसी लिए मंत्रगुप्त अब उसे एक क्षण भी मुक्त रहने नहीं देना चाहता था।

उसका साकेत जाना भयंकर होता। वैशाली जाना और भी भयंकर होता। यह कहना कि मगध में उसके लिए स्थान नहीं है, उतना ही भयंकर था; और यह कहना कि मगध में उसका स्थान है और भी भयंकर था। कुशल इसी में थी कि वह ऊँघता रहे, उसे किसी बात का पता न लगने दिया जाये; मधुर स्वप्नों के भुलावों में उसे भरमाकर रखा जाये। ऐसा प्रयत्न किया

जाये कि कौमुदी-महोत्सव तक वह कहीं जाने न पाये, जाने की चेष्टा तक न करे, जाने का नाम भी न ले। और इसी प्रकार भुलावे में डाले रखकर उसे अकस्मात् वन्दीगृह में मूँद दिया जाये, तभी मगध और पाटलीपुत्र, कल्याण वर्मा और सुन्दर वर्मा सुरक्षित रह सकेंगे; नहीं तो किसी भी क्षण वह अपने-आपको मगधपति घोषित कर देगा और उसके इस दावे का समर्थन करनेवाले अनेक लोग निकल आयेंगे। वैशाली तो यह चाहती ही है। साकेत, कोशल, काशी, विदेह आदि भी वैशाली का ही समर्थन करेंगे। हो सकता है कि ऐसी स्थिति में प्रवरसेन स्वयं भी उसका समर्थक बन जाये। और क्षण-भर के लिए यही मान लिया जाये कि प्रवरसेन समर्थन नहीं करेगा, पाटलीपुत्र की सहायता ही करेगा, तो भी मगध का पतन तो निश्चित ही है, क्योंकि प्रवरसेन के आने के पहले ही ये सब मगध को ले डूबेंगे।

वैसे कीर्तिसेन की सहायता का भरोसा था; परन्तु मथुरा बहुत दूर था और कीर्तिसेन अभी तक पाटलीपुत्र पहुँचा नहीं था। इसलिए महामंत्री ने चन्द्रगुप्त नामक रक्तपिपासु विकराल व्याघ्र को पिंजरे में बन्द रखना ही उचित समझा; और इसी उद्देश्य से वह उसके लिए एक नया प्रलोभन लेकर स्वयं आया था।

वह प्रलोभन था 'परमभट्टारकपदीय कुमारामात्य' का पद, अधिकार और राजमुद्रा। अभी तक वह केवल युवराज था। अब उसका पद युवराज के पद से ऊँचा हो गया था। एक प्रकार से वह मगधपति के समकक्ष बन गया था। कल ही प्रत्यूष वेला में इस आशय की डिंडिमिका-घोषणा की जाने को थी। महामंत्री प्रजा को विश्वास दिला देना चाहता था कि महाराज के इतने स्नेह, इतनी प्रीति और इतनी प्रतीति के पश्चात् भी वह प्रवंचक सिद्ध हुआ, उसने विश्वासघात ही किया।

*

चन्द्रगुप्त का आदेश पाकर महामंत्री मंत्रसेन आगे बढ़ा और प्रणाम करके आसन पर बैठ गया। फिर उसने कहना आरम्भ किया :

'महाराज, आपको यह पद और अधिकार प्रदान करके आज से मगध-पति ने एक प्रकार से क्षेत्र-संन्यास ले लिया है। आर्यों की परम्परा के अनुसार

राजाओं के लिए शोभास्पद वानप्रस्थाश्रम में महाराज मगधेश्वर प्रवेश करते हैं। वैसे भी अब यह भार युवकों के कन्धों पर ही शोभा दे सकता है। आज हमारा मगध और पाटलीपुत्र चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ है। अब से महाराज स्वयं को मगधपति मानकर ही आदेश दें और आचरण करें। सबसे पहले तो मैं ही परमभट्टारक परमेश्वरस्वरूप, परममाहेश्वर, अतुलवीर्य मगधपति महाराज चन्द्रगुप्तदेव की वन्दना करता हूँ।'

और अपने आसन पर से उठकर उसने परम सम्मान तथा अतिशय विनम्रता के साथ चन्द्रगुप्त की अभ्यर्थना करते हुए कहा—महाराज की जय हो! महाराज मगध को उसका प्रचीन गौरव प्रदान करें! महाराज अपनी प्रजा का रंजन और कल्याण करें। महाराज अपने कर्मचारियों को अनुप्राणित और इस दास को महामंत्री का कठिन कार्य करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करें! देव की जय हो!

चन्द्रगुप्त चुपचाप उसके शब्दों को सुनता रहा। मंत्रगुप्त ने विनय और शिष्टाचार के आवरण में लपेटकर जो कुछ कहा उस सबका आशय यही था कि तुम्हारा बन्धन दृढ़ था और उसे अब और भी अधिक दृढ़ किया जा रहा है; इस बन्धन से बचने और भागने का सारा प्रयत्न व्यर्थ और निष्फल होगा। केवल यह अर्थ ही सत्य था, शेष सब निरा शब्दाडम्बर था।

चन्द्रगुप्त से यह आशय छिपा न रहा। लेकिन उसे तो अब अपने अभिनय को निभाना था, इसलिए उसने इस भ्रान्ति और भ्रमजाल को बनाये रखा।

वह बोला—महामंत्री, मैं तो केवल एक सामान्य प्रदेशपति हूँ। यह नगर भारतवर्ष का केन्द्र है। यह तो आप भी जानते ही हैं कि इसकी कामना करनेवाले अनेक हैं। पार्शव शासानुशास को इसके सपने आते हैं। प्रवरसेन इसका नाम जपता रहता है। मथुरा का अधिपति भी इसे चाहता है। वैशाली की तो वर्षों पुरानी यह अभिलाषा चली आती है। कौन है जो इस नगर को नहीं चाहता! पता नहीं इस नगर में ऐसा क्या है! और विचित्र बात तो यह है कि सभी इस नगर का विनाश चाहते हैं। इस नगर के भस्मावशेष पर वे अपने-अपने नगरों का निर्माण और सम्पन्नता चाहते हैं।

'परन्तु मेरी यह मान्यता है महामंत्री, कि यदि यह नगर मगधपति के अतिरिक्त किसी अन्य के हाथों में चला गया तो भारतवर्ष का नाश ही हो जायेगा। दक्षिणापथ से जो भी यहाँ आयेगा वह इस नगर को धूल में मिला देगा। विन्ध्य-प्रदेश में बैठा हुआ प्रवरसेन इसके स्वप्न अवश्य देखता है, परन्तु उसका स्थान यहाँ नही, वहीं है। और अब समय आ गया है कि उसे यह बात कह दी जाये।'

'परन्तु कहे कौन? मगधेश्वर वृद्ध हैं। शिशुकुमार की रक्षा का भार अब देव पर है। परमभट्टारिका राजमहिषी राजमाता की भी यही इच्छा है। देव भी यही चाहते हैं। और प्रभु....एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विश्रम्भकथा है।'

मंत्रगुप्त ने कुछ देर रुककर चारों ओर दृष्टि घुमाकर इस प्रकार देखा मानो कोई बहुत ही गुप्त वार्ता कहने जा रहा हो और फिर सतर्कतापूर्वक बोला, 'यहाँ कोई है तो नहीं? आजकल तो दीवालों के भी कान हो गए हैं। किसी को भनक भी पड़ गई तो अनर्थ हो जायेगा।'

उसके मुँह से यह चेतावनी सुनकर चन्द्रगुप्त एक बार तो घबरा उठा। परन्तु दूसरे ही क्षण वह सावधान हो गया। उसने अपने सामने बैठे हुए मंत्री के सौम्य, शान्त, स्त्रैण और भयंकर चेहरे की ओर ध्यान से देखा। जिस श्मश्रुविहीन 'वनस्पर' के बारे में उसने सुना था यह चेहरा भी वैसा ही श्मश्रुविहीन था। उसके किंचित् पीतवर्ण नील नेत्रों में विश्वास की दीप्ति थी; परन्तु उस दीप्ति की एक-एक किरण में शत-सहस्र तीक्ष्ण शरों का पैनापन भी था। चन्द्रगुप्त और भी अधिक सावधान हो गया।

मंत्रगुप्त उसके बिलकुल समीप खिसक आया और फुसफुसाकर बोला—महाराज, मेरी यह बात अकेले आपके ही लिए है। महाराज ही सुनें और सदा के लिए मन में रख लें, कभी प्रकट न होने दें।

मंत्रगुप्त काँप उठा और उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसने अनुभव किया कि द्वन्द्व-युद्ध करना कहीं सरल है, परन्तु ऐसे व्यक्ति के शब्दों की चोट को सहना बहुत मुश्किल है। इतनी बात तो उसकी भी समझ में आ गई कि महामंत्री कोई भयंकर खेल खेल रहा है।

और महामंत्री मंत्रगुप्त ने आगे कहा—महाराज, आपके प्रति परमभट्टारक

मगधेश्वर महाराज की अपार श्रद्धा है। कई लोगों को यह बात फूटी आँखों नहीं सुहाती। शिशुकुमार को आपके-जैसा उच्चाशयोंवाला संरक्षक मिले, यह भी बहुतों को अच्छा नहीं लगता। इसलिए देव के विरुद्ध इस नगर में भयंकर आन्दोलन और प्रचार किया जा रहा है। इस सारे षड्यंत्र का उद्देश्य यही है कि देव स्वयं अपनी इच्छा से पाटलीपुत्र का रित्याग कर दें।

चन्द्रगुप्त चौंका। महामंत्री के मुख से उसने किसी भयंकर बात को ही सुनने की अपेक्षा की थी, परन्तु वह बात इतनी भयंकर होगी यह तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। कहीं मंत्रगुप्त को तिलभट्टक के यहाँ होने की भनक तो नहीं पड़ गई? यदि ऐसा है तब तो तिलभट्टक को भी संकट में ही पड़ा हुआ समझना चाहिए।

लेकिन महामंत्री का अभिप्राय जो भी हो, चन्द्रगुप्त को तो अब और भी सतर्क रहना होगा। जरा-सी भी असावधानी घोर संकट का कारण बन जायेगी। वह इस प्रकार महामंत्री के निकट खिसक आया मानो ध्यानपूर्वक उसकी बात के एक-एक शब्द को सुनना चाहता हो। लेकिन मंत्रगुप्त इतनी-सी बात कहकर चुप हो गया था।

अब चन्द्रगुप्त बोला—महामात्य, आप कहते हैं कि मेरे विरुद्ध घनघोर प्रचार किया जा रहा है और शीघ्र ही एक तूफान उठ खड़ा होगा। लेकिन मैं तो अपने-आपको महाराज का आज्ञानुवर्ती दास ही समझता हूँ। यदि महाराज मगधेश्वर की आज्ञा हो तो मैं इसी समय सब-कुछ छोड़-छाड़कर साकेत चला जा सकता हूँ। इतना तो मैं भी समझता हूँ कि अब कल्याण वर्मा ही मगधपति बन सकते हैं। राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी वही हैं। मैं लुटेरा नहीं हूँ कि उन्हें उनके न्याय्य उत्तराधिकार से वंचितकर स्वयं राजा बन बैठूँ।

'महाराज मगधेश्वर आपके इन विचारों से पूर्णतः अवगत हैं। फिर आपके अतिरिक्त, वर्तमान संयोगों में, शिशुकुमार की रक्षा दूसरा कौन कर सकता है? राजमहिषी भी इस बात को जानती हैं। हम सब भी जानते हैं। परन्तु आपके विरुद्ध आन्दोलन और प्रचार करनेवाले दूसरे ही लोग हैं। वे ऐसे ओछे लोग हैं, जिनको पाटलीपुत्र में आपकी उपस्थिति बिलकुल ही

स्वीकार नहीं। वास्तव में वे शिशुकुमार के रक्षक और अभिभावक बनना चाहते हैं। उनकी यह आकांक्षा तभी पूर्ण हो सकती है जब आप यहाँ न रहें। मूलरूप में यह सारा आन्दोलन शासन-सूत्रों को अपने हाथ में लेने का आन्दोलन है।'

'परन्तु ये लोग हैं कौन ?

'एक तो है यहीं की, परन्तु यहीं की कहना ठीक न होगा, वास्तव में तो वह विन्ध्य-प्रदेश के ओर की है, कवयित्री विज्जका।'

'विज्जका ? यह तो वही है न जो महोत्सवों में नृत्य-नाट्य का प्रदर्शन और संचालन करती है ?'

'जी हाँ, वही ! तब तो महाराज उसे जानते हैं। यह भी एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। क्या महाराज ने यह भी सुना है कि उसने एक नाटक लिखा है ?'

'नाटक ? पर नाटक लिखने में ऐसी क्या बात है ? वैसे मुझे पता नहीं कि उसने कोई नाटक भी लिखा है।'

'तो मैं महाराज को बताता हूँ। यों तो महाराज भी जाग्रत हैं। समय ही ऐसा है कि सबको जाग्रत और सतर्क रहना चाहिए। कहा भी है कि जो सोता है सो खोता है, खोता ही नहीं मारा भी जाता है ! मगधेश्वर महाराज सुन्दर वर्मा वृद्ध हैं, फिर भी किसी का साहस पाटलीपुत्र की ओर आँख उठाने का नहीं होता। क्यों नहीं होता ? मात्र इसलिए कि आप सतत जागरूक हैं। नहीं तो भला प्रवरसेन एक दिन के लिए भी रुकता ? वह तो पाटलीपुत्र पर अधिकार करने के लिए एक पाँव पर खड़ा है। भवनाग भी यही चाहता है। इन दोनो की अभिलाषाएँ तभी पूर्ण हो सकती हैं जब आप यहाँ न रहें। आपकी मगध में उपस्थिति उन दोनो के हृदय में शल्य की भाँति खटकती रहती है। विज्जका भी यही चाहती है । इस प्रकार चाहनेवाले और भी अनेक लोग हैं। वैशाली का तिलभट्टक भी ऐसे ही लोगों में है। वह भी चाहता है कि आप यहाँ न रहें।'

चन्द्रगुप्त तिलभट्टक का नाम सुनकर भी शान्त, स्वस्थ और स्थिर बना रहा। वह समझ गया कि तिलभट्टक के यहाँ आने और अभी यहीं होने के

सन्देह के ही कारण महामंत्री इस समय उसके पास दौड़ा आया है। परन्तु वह इस प्रसंग को बढ़ाना नहीं चाहता था, इसलिए उसने बात को बदलते हुए कहा—हाँ, तो विज्जका और उसके नाटक के बारे में आप क्या कह रहे थे ?

'मैं कह रहा था कि उसने एक नृत्य-नाटिका लिखी है। क्या महाराज जानते हैं कि वह नृत्य-नाटिका किसने लिखवाई है ?'

'नहीं, मैं नहीं जानता। आप बतायें।'

'उसे लिखवाया है विन्ध्य के प्रवरसेन और भवनाग गणपतिनाग ने। ये सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। सब यही चाहते हैं कि आप पाटलीपुत्र का परित्याग कर दें। तभी वे शिशुकुमार के रक्षक बन सकते हैं और भविष्य में पाटलीपुत्र और मगध पर आधिपत्य जमाने की अपनी योजना को सफल कर सकते हैं। प्रवरसेन भारत का चक्रवर्ती सम्राट् बनना चाहता है। अभी गौतमीपुत्र की मृत्यु के कारण वह रुक गया है। परन्तु योजना उसकी यही है। इसी लिए उसने महाराज के विरुद्ध इस प्रकार धुआँधार आन्दोलन और प्रचार प्रारम्भ कर रखा है।'

चन्द्रगुप्त ने इस चर्चा को अबाध गति से चलाये रखने में ही अपना कल्याण देखा। उसने कहा—अच्छा, अब समझ में आया। इसी लिए उस दिन कवयित्री विज्जका साकेत से आये हुए व्यक्तियों से घुल-घुलकर बातें कर रही थी। लेकिन पता तो चले कि उसने अपने नाटक में आखिर लिखा क्या है ?

'क्या महाराज को पता नहीं ? साकेतवालों से जो पूछा होगा वही अपने नाटक में तोड़-मरोड़कर लिख दिया होगा।'

'नहीं, मुझे तो कुछ भी पता नहीं। आप बताइए।'

'बताना क्या है ? लिखा है खाक और धूल ! यों ही मनगढ़न्त बेसिर-पैर की हास्यास्पद बातें लिख मारी हैं।' मंत्रगुप्त उसे सही बात बताना नहीं चाहता था। वह नहीं चाहता था कि जो चन्द्रगुप्त को मालूम नहीं है उसे वह स्वयं ही बता दे। इसलिए उसने गोलमाल-सा उत्तर दे दिया।

'हाँ-हाँ, मनगढ़न्त और बेसिर-पैर की बातों के अतिरिक्त वह लिख भी

क्या सकती है ! अच्छी बात है, लिखने दीजिए उसे जो उसका मन चाहे। मैं मगधेश्वर महाराज कल्याण वर्मा का रक्षक हूँ और बना रहूँगा। मैं न तो पाटलीपुत्र नगरी का परित्याग करूँगा और न मगध को छोड़कर कहीं जाऊँगा। परमभट्टारक महाराज सुन्दर वर्मा का जब तक मुझ पर विश्वास बना रहेगा मैं यहीं रहूँगा। यदि महाराज का आदेश हुआ तो उनका प्रदेशपति बनने के लिए भी मैं तत्पर हूँ। बस, यही मुझे कहना है। छद्मवेश और गोपनीयता में मेरा किंचित् भी विश्वास नहीं; दूसरे ऐसा करें, यह मुझे बिलकुल स्वीकार नहीं। ऐसी बातों को मैं कभी सह नहीं सकता। मैं तो महाराज मगधेश्वर के शिशुकुमार के रक्षक-पद को सुशोभित करना चाहता हूँ। यह है मेरी बात; और लोग अपनी जानें....'

'बस-बस, मुझे भी महाराज से यही कहना था। तूफान आयेगा तो स्वयं ही शान्त हो जायेगा। महाराज कभी स्वप्न में भी पाटलीपुत्र का परित्याग करने की बात न सोचें।'

'मैं तो महाराज मगधेश्वर के आदेशानुसार ही आचरण करूँगा। उन्होंने मुझे जो सम्मान प्रदान किया है मैं उसके योग्य बन सकूँ, यही मेरी बड़ी-से-बड़ी अभिलाषा है। अच्छा, महादंडनायक कुंजरक कहाँ हैं ?'

'क्या महाराज की उनके लिए कोई आज्ञा है ?'

'हाँ, इस सारे आन्दोलन और प्रचार के समक्ष हमें सतत जाग्रत रहना चाहिए।'

'महाराज बतायें कि क्या करना होगा ?'

'उस कवयित्री विज्जका को मेरे समक्ष उपस्थित किया जाये। मैं जानना चाहता हूँ कि मेरे विरुद्ध वह क्या कहना चाहती है और उसके आक्षेप क्या हैं ?'

'महाराज, वह तो नितान्त भ्रान्त और मूर्ख है। आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। राजमहिषी स्वयं ही उसे समझा देंगी।'

मंत्रगुप्त को विश्वास हो गया कि कौमुदी-महोत्सव में जो कुछ होनेवाला है, उसका इसे ज़रा भी ज्ञान नहीं है; इसलिए अब यहाँ अधिक समय गँवाना उसने व्यर्थ समझा। वह उठ खड़ा हुआ।

'तो महाराज अब मुझे आज्ञा प्रदान करें ! आपके नये पद के सम्बन्ध

में कल सवेरे ही डिंडिमिका-घोषणा होगी। उसके पहले आपको स्थिति से अवगत करना आवश्यक जानकर मुझे सहसा सेवा में उपस्थित होना पड़ा। महाराज को हमें जो भी आदेश देना हो प्रदान करें। कौमुदी-महोत्सव के दिवस के सम्बन्ध में भी अब महाराज को ही निर्णय करना होगा।'

चन्द्रगुप्त भी खड़ा हो गया।

महामंत्री मंत्रगुप्त अभिवादन करके चला गया। जाते-जाते उसने यह निश्चय किया कि चन्द्रगुप्त को अब किसी भी शर्त पर पाटलीपुत्र से बाहर न जाने दिया जायेगा। चन्द्रगुप्त बाहर जाना चाहता था, परन्तु पाटलीपुत्र में बने रहकर ही वह बन्धन में रह सकता था। पाटलीपुत्र में रहकर वह कुछ कर नहीं सकता था। परन्तु पाटलीपुत्र से बाहर जाकर वह क्या नहीं कर सकता था। तो यही पक्का रहा कि चन्द्रगुप्त यहाँ से हिलने न पायेगा।

मन-ही-मन इस प्रकार से निश्चय करके जैसे ही मंत्रगुप्त कक्ष से बाहर निकला तिलभट्टक प्रकोष्ठ में अपने छिपने के स्थान से निकल आया। वह हँस रहा था और बड़ी देर तक हँसता रहा।

५. तिलभट्टक की योजना

परन्तु अपनी इस हँसी के लिए तिलभट्टक को दूसरे दिन पछताना पड़ा। वह मित्रगुप्त पर हँस रहा था जब कि मित्रगुप्त उस पर हँस गया था।

दूसरे दिन सवेरा होते ही डिंडिमिका-घोषणा सुनी गई। चन्द्रगुप्त को 'युवराजपदीय कुमारामात्य' के स्थान पर मगधपति के समकक्ष 'परमभट्टारकपदीय कुमारामात्या' के अधिकार प्राप्त हो रहे थे। यह सब महामंत्री मंत्रगुप्त की कृपा का फल था। प्रकट रूप में यह महामंत्री की कृपा ही थी; परन्तु वास्तव में सब-कुछ शब्दों और नामों का भ्रमजाल था। महामंत्री थोड़े समय के लिए सब को इस सुखद भ्रान्ति में रखना चाहता था। इसके बाद वास्तविकता तो प्रकट होने को ही थी।

यदि तिलभट्टक को कारागार से बचना हो तो उसे तत्काल सुगंगप्रासाद

छोड़कर चले जाना चाहिए। चन्द्रगुप्त को भी यही करना चाहिए। महामंत्री चन्द्रगुप्त से मिलकर गया था। उसने अवश्य चौकी-पहरे का प्रबन्ध कर दिया होगा। न कर सका होगा तो अब कर देगा। जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा उनका सुगंगप्रासाद से निकलना दूभर होता जायेगा। यह घोषणा इसी बात की द्योतक थी कि चन्द्रगुप्त कारागार में डाल दिया गया है और उसके बन्धन कसे जा रहे हैं।

तिलभट्टक चिन्तित हो उठा। चन्द्रगुप्त को भी चिन्ता होने लगी। दोनों ही सुगंगप्रासाद में थे और एक तरह से देखा जाये तो दोनो ही कारागार में भी थे।

दोनो बैठे परिस्थिति पर विचार कर रहे थे कि फल्गुदत्त ने वहाँ आकर निवेदन किया—महाराज, सन्देशवाहक भीतर आने की अनुमति चाहता है।

'सन्देशवाहक ? कौन है ? कहाँ से आया है ?'

'महामात्य ने भेजा है।'

महामात्य का नाम सुनते ही दोनो चौंक पड़े। तिलभट्टक का तो किसी के भी द्वारा देखा जाना निरापद नहीं था, इसलिए वह तत्काल अन्दर के प्रकोष्ठ में जा छिपा।

इतने में महामात्य का सन्देशवाहक वहाँ आया और अभिवादन करके बोला—महाराज, महामात्य ने कहलवाया है....

यह कहकर उसने दृष्टि घुमाकर कक्ष में चारों ओर देखा।

चन्द्रगुप्त ने अधीरतापूर्वक पूछा—क्या कहलवाया है ?

'अब से सुगंगप्रासाद के द्वार-द्वार पर सशस्त्र यवनियाँ और सत्री खड़े रहेंगे। महाराज का पद और अधिकार मगधेश्वर के समकक्ष हो गया है; इसलिए महाराज के पद और सम्मान के गौरव की रक्षा के हेतु यह नयी व्यवस्था आवश्यक हुई है। महाराज की शरीर-रक्षा का भार अब से अमात्य-परिषद् पर रहेगा। अमात्य-परिषद् ने यह दायित्व महामंत्री को सौंपा है। महाराज इस व्यवस्था पर अपनी अनुमति प्रदान करें। महाराज की मुद्रांकित आज्ञा के बिना अब कोई भी न तो सुगंगप्रासाद में प्रवेश कर सकेगा और न बाहर

हो जाने पायेगा। महाराज को इस व्यवस्था की विज्ञापना करने के ही लिए महामंत्री ने मुझे प्रेषित किया है।'

'यह नयी व्यवस्था कब से कार्यान्वित हो रही है?'

'कार्यान्वित तो कभी से हो गई है देव!' सन्देशवाहक ने प्रणाम करके उत्तर दिया, 'प्रत्येक द्वार पर सशस्त्र यवनियाँ खड़ी हैं। द्वारपाल भी खड़े हैं। महाद्वारपाल व्यवस्था कर रहे हैं। सैनिक और सत्री अपने स्थानों पर नियुक्त किये जा चुके हैं। सम्पूर्ण व्यवस्था हो चुकी है महाराज! और महामंत्री ने मुझे यह विज्ञापना करने के लिए भी भेजा है कि मगधपति का पद और अधिकार जितना गौरवास्पद है उतना ही संकट-भरा और कंटकाकीर्ण भी है, इसी लिए यह व्यवस्था आवश्यक हुई है। महाराज इसकी स्वीकृति की अविलम्ब अनुमति प्रदान करें।'

चन्द्रगुप्त समझ गया कि उसके बन्धन कस गए हैं; परन्तु इस समय उसे सबसे अधिक चिन्ता अपनी नहीं, तिलभट्टक की थी। उसका क्या होगा? सुगंगप्रासाद से उसका बाहर निकलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया था। चन्द्रगुप्त की मुद्रांकित अनुमति से वह जा सकता था, लेकिन कहीं पकड़ गया तो महामंत्री की बन आयेगी। महामंत्री यही तो चाहता है कि वैशाली के साथ चन्द्रगुप्त के सम्बन्धों की बात प्रकट हो जाये और प्रजा उसके विरुद्ध उठ खड़ी हो।

उसने सन्देशवाहक को तो रवाना किया और सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए, किस प्रकार यहाँ से निकला जा सकता है?

दोनो व्यक्ति बड़ी देर तक चुप बैठे सोचते रहे। अन्त में तिलभट्टक ने कहा—महाराज, एक उपाय समझ में आता है।

'क्या?' चन्द्रगुप्त ने तिलभट्टक की ओर देखकर उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'महाराज, महामात्य यही चाहते हैं कि हम बाहर न निकलने पायें। अच्छी बात है। हमें यहीं, पाटलीपुत्र में ही, बने रहकर मार्ग निकालना होगा। तो मार्ग यह है कि महाराज वैशाली को आह्वान दें। वहाँ अब भी गणतन्त्र है। वाकाटकराज प्रवरसेन की दृष्टि पाटलीपुत्र पर लगी हुई है। मथुरापति भी पाटलीपुत्र पर चढ़ाई करना चाहता है। ऐसी स्थिति में, अपने सभी प्रदेश-

पतियों को संगठित और एकताबद्ध करना मगध का कर्तव्य हो जाता है। देश के नवनिर्माण में योगदान करने के लिए हमें मगध के सभी प्रदेशपतियों को निमंत्रित करना चाहिए। ऐसा ही एक निमंत्रण वैशाली को भी भेजा जाना चाहिए। महाराज वहाँ अपना एक प्रदेशपति ही भेजें। वैशाली इस प्रकार के निमंत्रण को अपना घोर अपमान समझकर युद्ध के लिए उद्यत होगा। फिर तो हमें जो कुछ करना होगा, उस प्रदेशपति के ही द्वारा किया जायेगा।'

'लेकिन प्रदेशपति के द्वारा किया क्या जायेगा?'

'देश के नवनिर्माण के लिए जो आवश्यक और अपरिहार्य है वही किया जायेगा।'

'लेकिन कुछ पता तो चले।'

'हम वैशाली को युद्ध के लिए ललकारेंगे। यहाँ से प्रदेशपति भेजने का अर्थ ही है युद्ध की चुनौती। लिच्छवी इस चुनौती का उत्तर चुनौती से देंगे। आज नहीं तो कल युद्ध तो वे करना चाहते ही हैं। वे किसी के आगे झुकते नहीं और झुकने में उनका विश्वास भी नहीं। पाटलीपुत्र भी किसी के आगे नहीं झुकेगा। हम भी नहीं झुकेंगे। हमारा यहाँ रहना झुकना नहीं है। हम यहाँ रहते हैं लिच्छवियों को उत्तेजित करने के लिए; वही हम करेंगे। महामंत्री मनमोदक का स्वाद लेना चाहें तो भले ही लेते रहें। वह सोचते रहें कि हम कारागार में हैं; परन्तु वास्तव में हम यहाँ बैठे उन्हीं के लिए कारागार का निर्माण कर रहे होंगे। अन्त में भागना उन्हें होगा, हमें नहीं। यह बात ही ऐसी है जिसका कोई विरोध नहीं कर सकता—न तो अमात्य-परिषद्, न मगध के प्रजाजन और न महाराज सुन्दर वर्मा; इसलिए आप पाटलीपुत्र की सुरक्षा और मगध-साम्राज्य के निर्माण की घोषणा कर ही दीजिए। और आप देखेंगे कि मगधपति सुन्दर वर्मा आपका समर्थन करेंगे, आपको प्रोत्साहित करेंगे, मगध के महामंत्री मित्रगुप्त को आपकी इस नीति को स्वीकार करना होगा। मुझे तो एक यही मार्ग सुझाई पड़ता है। बाकी सुगंगप्रासाद से बाहर निकलना, भिक्खु का वेश धारण करके भी यहाँ से जाना, असम्भव ही है। निकलने के प्रयत्न में बन्दी बनाकर कारागार में ठूँस दिये जायेंगे। हाथ-पर-हाथ धरे यहाँ बैठे भी नहीं रह सकते। इस तरह बैठ रहने का स्पष्ट अर्थ है अपने बन्धन

को स्वीकार कर लेना। और यह हम कभी स्वीकार नहीं कर सकते। हमें तो यहीं बने रहकर ऐसी योजना बनानी चाहिए जिसमें हमें भगानेवालों को आप ही भागना पड़े। इस कार्य में केवल वैशाली से ही हमें सहायता प्राप्त हो सकती है। मैंने अपना सुझाव प्रस्तुत कर दिया; अब महाराज स्वयं इस पर विचार करें....'

चन्द्रगुप्त ने विचार करके देखा तो उसे तिलभट्टक की योजना सारपूर्ण प्रतीत हुई। इस योजना के द्वारा मंत्रगुप्त को भ्रम और अँधेरे में रखकर अपना अभीष्ट लाभ किया जा सकता था। परन्तु तिलभट्टक कहीं स्वयं उसी को तो अँधेरे में नहीं रख रहा है? लिच्छवी यहाँ आकर, विजय प्राप्त करके पाटलीपुत्र के स्वामी बन बैठे तो वह क्या कर लेगा? देश का नवनिर्माण और चक्रवर्तीत्व की स्थापना आदि के उसके स्वप्न क्या अधर में ही लटके नहीं रह जायेंगे?

उसने कुछ देर सोचते रहने के बाद कहा—लेकिन यह सब हमें इस प्रकार करना चाहिए कि किसी को कानोंकान पता न लगने पाये, और किसी के मन में किंचिन्मात्र शंका उत्पन्न न हो। मंत्रगुप्त अँधेरे में पड़ा यही सोचता रहे कि इस कार्रवाई से चन्द्रगुप्त और वैशाली में द्वेष बढ़ रहा है। परन्तु क्या आपने कोई ऐसा उपाय भी सोचा है, जिससे लोगों के मन में उत्पन्न होनेवाले सन्देहों का निवारण हो सके?

'जी हाँ, मैंने ऐसा उपाय भी सोच लिया है।'

'बताइए वह कौन-सा उपाय है?'

तिलभट्टक ने चन्द्रगुप्त के कान के पास मुँह लगाकर कहा—महाराज, आपको सदैव यह ध्यान में रखना चाहिए कि वैशाली और मगध का पारस्परिक वैर हमारी पूँजी है और इसी पूँजी पर हमें अपना कारोबार करना है। अमात्य-परिषद् में स्वयं आपको इस आशय का प्रस्ताव रखना चाहिए। यदि प्रस्ताव आपकी ओर से प्रस्तुत किया गया तो उसका विरोध करने का कोई साहस नहीं कर सकेगा और किसी को सन्देह भी न होगा।

'लेकिन प्रस्ताव क्या होगा?'

'शिशु कल्याण वर्मा मगधपति बनें; वैशाली के प्रदेशपति भी वही हों।'

'आप भी कैसी बातें करते हैं? इतने छोटे बालक का मगधपति और वैशाली का प्रदेशपति बनाया जाना कौन स्वीकार करेगा?'

'महाराज, यह तो मगध की परम्परागत प्रथा चली आती है। मगध के नगरजन और अमात्य-परिषद् इस प्रणाली से परिचित हैं। प्रथा यह है कि जो युवराज हो, जो उत्तराधिकारी हो वह मगध राज्यान्तर्गत दूसरे बड़े-से-बड़े और महान-से-महान नगर का प्रदेशपति नियुक्त किया जाये। मौर्यों की यह प्रथा थी। शुंग राजाओं ने भी इस प्रणाली को अपनाया था। उनके पश्चात् बहुत दिनों तक इस प्रथा का पालन होता रहा। तक्षशिला वर्षों तक मगध का दूसरा महान और श्रेष्ठ नगर माना जाता रहा। युवराज वहीं रहते रहे; सेनाएँ भी वहाँ रहीं। परन्तु आज तक्षशिला कहाँ है? वह है तो सही, परन्तु मगध के अन्तर्गत कहाँ है! अब मगध का दूसरा बड़ा नगर वैशाली ही हो सकता है। महाराज इस प्रथा को पुनर्जीवित करें। इस प्रकार लोगों की शंका और सन्देहों का निवारण होगा। वैशाली और पाटलीपुत्र के पारस्परिक सम्बन्धों का प्रश्न उठाये जाते ही लोग दूसरी सब बातें भूल जायेंगे। छोटे-से शिशु प्रदेशपति की रक्षा के लिए सब एक हो जायेंगे। महाबलाधिकृत कुंजरक को प्रदेशपति के रक्षणार्थ सेना-सहित वहाँ रहना होगा। सामान्य सेना से काम नहीं चलेगा, शक्तिशाली सेना भेजनी होगी, क्योंकि वैशाली दाल-भात का कौर नहीं है। इस प्रकार बिना युद्ध के, अथवा नाम-मात्र के युद्ध के बाद हम पाटलीपुत्र की अधिकांश शक्तिशाली सेना को बाहर भेज सकेंगे। सेना न रहने की स्थिति में सुन्दर वर्मा को पराजित करना बायें हाथ का खेल होगा। रहा वैशाली, सो वह अपनी निपट लेगा।'

चन्द्रगुप्त ने तिलभट्टक की इस योजना का मन-ही-मन अभिनन्दन किया। कितना चतुर और दूरद्रष्टा है यह महादंडनायक! परन्तु अभी तक चन्द्रगुप्त के मन से सन्देहों का निवारण नहीं हुआ था। कहीं मैं निमित्त ही नहीं बना रह जाऊँ। मुझे साधन बनाकर लिच्छवियों ने सुन्दर वर्मा को पराजित किया और स्वयं पाटलीपुत्र के अधिपति बन बैठे तो मैं क्या कर लूँगा?

परन्तु वह इस बात को भी जानता था कि लिच्छवी-गण स्वयं उसी की भाँति एक महान आदर्श से अनुप्राणित हैं और उनसे सहयोग किया जा

सकता था, यद्यपि इस प्रकार के सहयोग में अनेक संकट अन्तर्निहित थे। और फिर इस समय तिलभट्टक की योजना को अपनाये बगैर कोई चारा भी तो उसके सामने नहीं था। या तो इस योजना को अपनाकर मंत्रगुप्त को अँधेरे में रख अपना अभीष्ट लाभ करे या बन्धन में पड़ा सड़ता रहे! योजना निश्चय ही ऐसी थी जो सुन्दर वर्मा को भी पसन्द आती, महारानी जिसका समर्थन करती, अमात्य-परिषद् जिसको स्वीकार करती और महामंत्री मंत्रगुप्त को जिसे मानना पड़ता। वह महारानी से तो यह भी कह सकता था कि इस प्रकार शिशु राजा के अधिकारों की अभी से स्थापना हो जायेगी और उसका परिणाम भविष्य के लिए शुभ होगा।

चन्द्रगुप्त कुछ देर तक इसी प्रकार सोचता रहा और तब बोला—तिलभट्टक, लिच्छवी बहुत शक्तिशाली हैं, सुसंगठित और व्यवस्थित हैं: कल्पना के धनी और राग-रंग तथा कला के प्रेमी भी हैं। त्याग करने की अपार क्षमता उनमें है, परन्तु क्या युग की माँग के अनुरूप वे आचरण कर सकेंगे? नव-निर्माण और अभिनव सृजन का अर्थ है सभी पुरातन रूढ़ियों को तिलांजली देना। क्या वे ऐसा कर सकेंगे? कई बार प्रजा में शक्ति होती है, लेकिन त्याग करने की क्षमता नहीं होती; त्याग कर सकते हैं तो कल्पना से वंचित होते हैं। इस समय युग की माँग क्या है? युग माँगता है एक शक्तिशाली समर्थ शासन। एक केन्द्रीभूत दृढ़ शासन के बिना न तो पार्श्व शासानुशास को पराजित किया जा सकता है और न यवनों, यूनानियों और शक-कुशानों का पराभव ही। यह है युग की माँग। यदि ऐसा नहीं किया गया तो भारत पददलित होता रहेगा। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि सारे सूत्रों का संचालन एक ही व्यक्ति के हाथ में हो। मैं साकेत का हूँ और साकेतवासी महान राघवों का प्रजानुरंजन मेरा आदर्श और मेरी प्रेरणा का स्रोत है। आज की परि-स्थिति और भारत पर मँडराते हुए भयों को जब देखता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि किसी महान रणकुशल विभूति के बिना, मैं विभूति शब्द का प्रयोग समझ-बूझकर ही कर रहा हूँ, जिसमें महानतम त्याग करने की सामर्थ्य हो ऐसी विभूति के बिना भारतवर्ष का उद्धार असम्भव ही है....

'ओहो, यह मैं क्या सुन रहा हूँ?' तिलभट्टक ने सहसा चन्द्रगुप्त की बात

काटकर कहा, 'पतन के कगार पर खड़े मगध में ऐसे शब्दों को सुनने की आशा तो मैंने स्वप्न में भी नहीं की थी। महाराज तो हमारी महादेवी परम शक्तिशालिनी कुमारदेवी के ही शब्दों और विचारों को प्रतिध्वनित कर रहे हैं। देवी अहर्निश इन्हीं शब्दों का उच्चारण करती रहती हैं। उन्हें हवा में भी ये ही शब्द गूँजते सुनाई देते हैं। आकाश में ये विचार मानो उन्हें मूर्तित होते दिखाई पड़ते हैं। वह भी चाहती हैं एक समर्थ नरपुंगव को। वह कहती हैं कि आज की स्थिति में एक महापुरुष ही भारत का सूत्र-संचालन कर सकता है, वही भारत का भाग्य-नियन्ता बन सकता है, वही देश का नव निर्माण करके नूतन संस्कृति का सृजन कर सकता है। वही प्रजा को शक्ति-सम्पन्न कर सकता है। वैसे तो प्रजा आज भी शक्तिशालिनी है, परन्तु दुर्भाग्य से किसी को किसी पर विश्वास नहीं। सब अहम्मन्यता में डूबे हुए अपनी-अपनी हाँकते हैं। भारत को शक्तिशाली बनाने और एक केन्द्रीयभूत सत्ता की स्थापना की बातें तो सभी करते हैं। परन्तु मथुरापति समझते हैं कि वही भारतवर्ष हैं। मद्र का खयाल है कि वह भारतवर्ष हैं। इधर मगधपति का यह दावा है कि मेरे अतिरिक्त और कोई भारतवर्ष है ही नहीं। उधर प्रवरसेन को विन्ध्य की उपत्यका में भारतवर्ष दिखाई देता है। सिन्धु, सौवीर और सौराष्ट्र के क्षत्रप अपने छोटे-छोटे प्रदेशों को ही भारतवर्ष माने बैठे हैं। जब कि वास्तविकता यह है कि इनमें से कोई भी भारतवर्ष को नहीं जानता। अकेली महाशक्तिशालिनी कुमारदेवी ही भारतवर्ष को सही रूप में जानती हैं। अपने महान आदर्शों को कल्पनाओं में विभोर होकर आकाश की ओर देखती हुई वह कहती हैं—भारतवर्ष मेरी गोद में है; इसका लालन-पालन करने का महान सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा।'

'अच्छा, ऐसी बात कहती हैं?' चन्द्रगुप्त ने विस्मित होकर पूछा।

'जी हाँ! ऐसी ही बातें कहती हैं। हम समझते हैं कि महाकवि हरिषेण की महान कल्पनाओं से अभिभूत होकर ऐसा कहती होंगी; परन्तु यह निरी कल्पनाप्रवणता नहीं है। महाराज स्वयं ही देखेंगे कि यहाँ से प्रदेशपति नियुक्त करने का सन्देश भेजे जाने पर वह उसका किस प्रकार दो टूक उत्तर देती हैं। इसलिए महाराज, इस समय पाटलीपुत्र पर अपना अधिकार स्थापित

करने का मुझे तो केवल एक यही मार्ग समझ में आता है।'

'अपना अधिकार ?'

'हाँ, महाराज, अपना अधिकार ! यदि वैशाली और पाटलीपुत्र एक नहीं हुए तो दोनो में से कोई भी बच नहीं सकेगा। हमारे महामंत्री हरिषेण महोदय का यही कहना है। और यदि आपको हम अपना न समझते तो मैं इस प्रकार कभी यहाँ दौड़ा न आता।'

इतना विश्वास दिलाये जाने के बाद भी अविश्वास करते रहना चन्द्रगुप्त को उचित नहीं प्रतीत हुआ। उसने सोचा, अब अविश्वास करना कायरता ही होगी। यदि लिच्छवियों ने विश्वासघात किया तो उस समय देख लिया जायेगा। अमरपट्टा तो कोई लिखाकर लाया नहीं है। वैशाली से भी लड़ा जा सकता है। साकेत तो मेरे हाथ में है ही। यही न होगा कि कुछ वर्षों तक लड़ना पड़ेगा, सो लड़ लिया जायेगा।

यह सोचकर उसने उत्तर दिया 'हाँ, महामंत्री हरिषेण सत्य ही कहते हैं। परन्तु मैं उनके कथन में अपनी ओर से इतना और भी जोड़ना चाहता हूँ कि केवल वैशाली और पाटलीपुत्र के एक हो जाने से ही काम नहीं बनेगा; हमें अयोध्यापति के गौरव को भी पुनर्जीवित करना होगा। ऐसा किये बिना नूतन भारत का अभ्युदय और देश का नवनिर्माण नहीं हो सकता। और उसके लिए यही समय सबसे उपयुक्त है। यह युग की माँग भी है। कल युग की जो माँग होगी उसे कलवाले देखेंगे; आज की माँग को देखना और तदनुरूप आचरण करना हमारा काम है। आपका कथन यथार्थ ही है। पाटलीपुत्र को लेकर अधिक ऊहापोह की गई तो उसके अनेक दावेदार यहाँ दौड़े चले आयेंगे। वैशाली और पाटलीपुत्र के दीर्घकालीन युद्ध का भी यही परिणाम होगा। मैं कल ही मगध की अमात्य-परिषद् के अधिवेशन की डिंडिमिका-घोषणा करवाता हूँ। मुझे मगध में अनायास जो पद प्राप्त हुआ है उसका यह उपयोग ही समीचीन है।'

यह कहकर चन्द्रगुप्त ने ताली बजाई। फल्गुदत्त ने भीतर आकर प्रणाम किया।

चन्द्रगुप्त ने कहा—भणे फल्गुदत्त, क्या तू एक बात जानता है ?

फल्गुदत्त ने हाथ जोड़कर पूछा—कौन-सी बात स्वामी ?

'यदि दिवालों के कान हो सकते हैं तो तेरे भी कान हैं !'

'महाराज,' फल्गुदत्त ने प्रणाम करके कहा, 'कान तो मेरे कभी थे ह नहीं और अब आँखें भी नहीं हैं। महाराज सेवक को अपना ही जानें।'

'साधु फल्गुदत्त, साधु !' चन्द्रगुप्त ने हर्षित होकर कहा, 'ले यह मेरी मुद्रा और दौड़ा चला जा महाबलाधिकृत कुंजरक के पास। उनसे कहना कि अमात्य-परिपद् के अधिवेशन की डिंडिमिका-घोषणा करवायें। उस परिषद् में सभी नगरश्रेष्ठियों, प्रथम कुलकों, महाजनों, सार्थवाहों, राजमंत्रियों को निमंत्रित किया जाये और वे सब अनिवार्य रूप से सम्मिलित हों। पाटलीपुत्र के भविष्य के सम्बन्ध में वहाँ निर्णय लिया जायेगा। महाराज सुन्दर वर्मा वहीं राज्य के भावी उत्तराधिकारी की घोषणा करेंगे।'

फल्गुदत्त ने सावधानी से सन्देश ग्रहण किया और मुद्रा लेकर बाहर चला गया।

उसके जाने के बाद चन्द्रगुप्त भी सुन्दर वर्मा से मिलने से लिए चल दिया।

वह निर्भयतापूर्वक अपनी योजना को कार्यान्वित करने में प्रवृत्त हो गया। सफलता उसे अपने अभीष्ट की ओर ले जायेगी; और असफलता ? परन्तु बन्धन में तो वह था ही, उससे डरना क्या ?

६. मंत्रगुप्त स्तब्ध रह जाता है !

पाटलीपुत्र में, पुनः एक दिन सवेरे, डिंडिमिका-घोषणा हो रही थी। सुनते ही, सोये हुए नगरजन जागकर उठ बैठे। इस प्रकार, प्रातःकाल के प्रथम प्रहर में, डिंडिमिका-घोषणाएँ इधर सामान्य बात हो गई थीं। लेकिन न जाने क्यों, इन घोषणाओं को सुनकर नागरिक मन-ही-मन काँप उठते थे। सब-कुछ अनिश्चय की-सी अवस्था में था। नगर और राज्य के भविष्य के बारे में कोई भी निश्चयपूर्वक कुछ कह नहीं सकता था। कब, कौन, कहाँ से
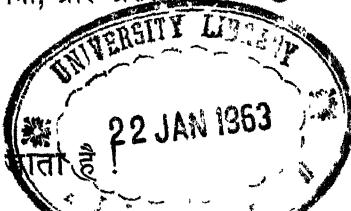
आ धमकेगा, इसे कोई नहीं जानता था। भय का स्पष्ट कोई कारण नहीं था, लेकिन एक अदृश्य, अस्पष्ट भय सब के मन में समाया हुआ था। लोगों को अपने मन में से, हवा में से, आकाश और पृथ्वी तक में से भय खड़ा होता दिखाई देता था। यह अव्यक्त और अस्पष्ट भय मनुष्य पर इस कदर हावी हो गया था कि मनुष्य मनुष्य ही नहीं रहने पाया था। सब-से-सब निराशा के गहन गह्वर की ओर धकेले चले जा रहे थे। इसलिए सबेरे जब लोगों ने पाटलीपुत्र नगर और मगध राज्य के भविष्य के सम्बन्ध में चन्द्रगुप्त की डिंडिमिका-घोषणा सुनी तो सबने सन्तोष की साँस ली और सारा नगर आश्वस्त हो गया।

लोग कहने लगे—चलो, महाराज ने अच्छा ही किया। उन्होंने चन्द्रगुप्त को अधिकार प्रदान किये और चन्द्रगुप्त ने तत्काल कदम उठाये। नगर का नियंत्रण एक योद्धा के हाथ में सौंपा जाना अच्छा ही हुआ।

उधर चन्द्रगुप्त की घोषणा का मंत्रगुप्त पर बड़ा विपरीत प्रभाव पड़ा। सुनते ही एक क्षण के लिए वह स्तब्ध रह गया। उसने तो सोचा था कि विज्जका के कौमुदी-महोत्सव की चोट खाकर चन्द्रगुप्त की कमर टूट जायेगी और वह कभी उठ न सकेगा। उसकी योजना चन्द्रगुप्त को कौमुदी-महोत्सव तक भ्रम में डाले रखने की थी। परन्तु चन्द्रगुप्त ने इसी बीच बदले की नई योजना बनाकर और उसकी सार्वजनिक घोषणा करके मंत्रगुप्त के सारे इरादों पर पानी फेर दिया। उसके क्षोभ का पार न रहा।

लेकिन मंत्रगुप्त को यह विश्वास नहीं होता था कि चन्द्रगुप्त इतनी दूर की बात सोच सकता है। अवश्य इस योजना के पीछे किसी चतुर व्यक्ति की बुद्धि काम कर रही है। चन्द्रगुप्त को वह जानता था, उसकी बुद्धि की थाह भी वह पा चुका था। वह जानता था कि चन्द्रगुप्त अधिक-से-अधिक साकेत से सेना बुलाता या मगध की सेना पर भरोसा करता और थोड़ी-बहुत उछल-कूद मचाकर बन्दी बन जाता। इस प्रकार बात समाप्त हो जाती।

परन्तु इस योजना के तो बहुत ही दूरगामी परिणाम होंगे।

मगधपति कौन हो—यह प्रश्न मंत्रगुप्त की शतरंज का मुख्य मोहरा था। चन्द्रगुप्त ने इस प्रश्न को हल करके पहली ही चाल में मंत्रगुप्त की पूरी

बाजी को मात कर दिया। चन्द्रगुप्त का हीनकुलोत्पन्न होना और इसलिए अधिकार से वंचित किया जाना आदि प्रश्न इसी मुख्य प्रश्न के आनुषंगिक प्रश्न थे। एक बार मुख्य प्रश्न का निपटारा हो जाने पर वह इन आनुषंगिक प्रश्नों को उठा ही नहीं सकता था। मगधपति के प्रश्न का निराकरण हो जाने पर चन्द्रगुप्त के कुल के सम्बन्ध में किसे दिलचस्पी रह जाती?

महाराज सुन्दर वर्मा ने अवश्य इस प्रश्न का समर्थन किया होगा और अब अमात्य-परिषद् में वह इस प्रस्ताव को निस्सन्देह स्वीकार कर लेंगे। महारानी के तो यह मन की ही बात हुई। राजा-रानी की मुख्य चिन्ता अपने शिशु कुमार के भविष्य के ही सम्बन्ध में थी। जब दोनों की चिन्ता इस प्रकार समाप्त हो गई तो चन्द्रगुप्त उन्हें अप्रिय और शत्रु क्यों लगने लगा?

यह दुष्ट चन्द्रगुप्त, पता नहीं, किसकी कूटबुद्धि से प्रेरित इतनी दूर की कौड़ी लाया है! अब यदि मंत्रगुप्त इस प्रस्ताव का विरोध करता है तो सब उसी को राजद्रोही कहेंगे। चन्द्रगुप्त अमात्य-परिषद् में निश्चय ही और भी कई प्रश्न उठायेगा। मंत्रगुप्त के जरा-से भी विरोध का यही अर्थ लगाया जायेगा कि वह नगर और देश की अनिश्चितावस्था से लाभ उठाना चाहता है। अपनी दुरभिसन्धि की सफलता के लिए उसने महाबलाध्यक्ष कुंजरक को मिलाया था। लेकिन अब कुंजरक भी उसकी क्या सहायता कर पायेगा।

एक क्षण तो मंत्रगुप्त की यही समझ में नहीं आया कि उसे अमात्य-परिषद् में किस प्रकार का आचरण करना चाहिए। उसे अपने चारों ओर अन्धकार घिरता दिखाई दिया।

फिर उसने सोचा, क्यों न चन्द्रगुप्त को ही वैशाली का प्रदेशपति....

पर नहीं, यह तो और भी अनुचित होगा। इस प्रकार तो चन्द्रगुप्त हाथ से ही निकल जायेगा। फिर तो वह वैशाली की सहायता से पाटलीपुत्र को घेर लेगा। और महाराज सुन्दर वर्मा इस प्रस्ताव को स्वीकार ही क्यों करने लगे?....तो क्या करना चाहिए? बड़ी भूल की कि चन्द्रगुप्त को मगधपति के समकक्ष पद दे डाला। उस दुष्ट ने मगधपति का पद शिशु कल्याण वर्मा के लिए निश्चित कर दिया। अब इस बात को सार्वजनिक रूप से स्वीकार भी कर लिया जायेगा। इस प्रकार तो चन्द्रगुप्त अपने भविष्य को ही लोगों से

स्वीकार कराये ले रहा है। अब तो यही देखना चाहिए कि वह पाटलीपुत्र से बाहर न जाने पाये। बस, यही ठीक है। शत्रु को आँख से कभी ओझल नहीं होने देना चाहिए।

मंत्रगुप्त ने यही निश्चय किया और इस आशय की सूचना कुंजरक को भी भिजवा दी।

दूसरे दिन सवेरे, मगध राज्य की अमात्य-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ।

अब तो केवल नाम की ही परिषद् रह गई थी। न वह भव्यता बची थी, न वह गौरव। परिषद् काहे को थी, उसकी परछाईं-भर बची रह गई थी, जिससे लोगों को यह भ्रम होता रहे कि शासन उनके सहयोग और उनकी सलाह से किया जाता है। हमेशा ऐसा ही होता है। जब मूल नष्ट हो जाता है तो लोग इसी प्रकार शाखों और पत्तों से चिपटे रहकर मन को समझाया करते हैं। मगध में भी लोग छाया-परिषद् से मन बहला रहे थे कि चलो, महाराज हमें पूछते तो हैं!

परिषद् के आज के अधिवेशन में सभी अमात्य और मंत्री आये थे; श्रेष्ठी और सार्थवाह आये थे। प्रथम कुलिक और श्रेष्ठ नगरजन आये थे। सेनाध्यक्ष कुंजरक था, महामंत्री मंत्रगुप्त था और भी अनेक राजकर्मचारी थे।

सभी चिन्तित थे और एक प्रकार की नई आशा से परिपूर्ण थे।

थोड़ी देर बाद चन्द्रगुप्त का हाथी आता दिखाई दिया। उसे आते देख सारी परिषद् खड़ी हो गई। उसने दोनो हाथ जोड़कर सबको प्रणाम किया। फिर सबको स्नेहपूर्वक अभिवादन करता आगे बढ़ा और अपने लिए निश्चित पीठिका पर बैठ गया।

अभी वह बैठा ही था कि महाराज की शिविका आती दिखाई दी। उसमें महाराज सुन्दर वर्मा स्वयं चले आ रहे थे।

और मंत्रगुप्त ने साश्चर्य देखा कि महाराज की शिविका के पीछे, छोटे कुमार को गोद में लिये, महारानी भी चली आ रही थीं। यह देख मंत्रगुप्त की भाँति सारी सभा विस्मित हो उठी।

मंत्रगुप्त के लिए महारानी और उनके शिशु का आगमन निरे विस्मय

का नहीं, घोर चिन्ता का कारण भी था। उन दोनों की उपस्थिति परिषद् के सदस्यों और दर्शक जनता को जिधर चाहे घुमा और झुका सकती थी। वह समझ गया कि चन्द्रगुप्त ने अपनी योजना में कहीं भी खामी नहीं रहने दी है।

मंत्रगुप्त के क्षोभ का सबसे बड़ा कारण तो यह था कि जो महारानी चन्द्र-गुप्त को अपना सबसे बड़ा शत्रु और हत्यारा समझती थी वही अब चन्द्रगुप्त के इशारों पर यहाँ दौड़ी चली आई थी। कल तक जो चन्द्रगुप्त कुछ नहीं था वह आज सब-कुछ हो गया था; और जो मंत्रगुप्त सब-कुछ था वह कुछ भी नहीं रहा था।

लेकिन मंत्रगुप्त इतनी सरलता से हार माननेवाला नहीं था। उसने निश्चय किया कि वह चन्द्रगुप्त के लिए पद-पद पर बाधाएँ खड़ी करेगा; सारे पाटलीपुत्र को उसका बन्दीगृह बना डालेगा। सब-कुछ बदल जाये, लेकिन यह एक बात कभी बदलने नहीं पायेगी।

महाराज सुन्दर वर्मा ने राजसी गौरव के साथ सभागृह में प्रवेश किया। वह वृद्ध हो गए थे, परन्तु उनके बल और वीरता में कोई कमी नहीं होने पाई थी। वह योद्धा अब भी उतना ही कड़ियल और करारा था। देखते ही आभास होता था कि यह वीर टूट जायेगा, परन्तु झुकेगा नहीं। उनके नेत्रों की ज्योति इस बात की साक्षी थी कि पाटलीपुत्र रहे या जाये, शत्रु उसे रौंद दे या वह गर्व से अपना सिर उठाये खड़ा रहे, परन्तु यह वीर-केसरी कभी उसका परित्याग कर वहाँ से जायेगा नहीं। वह जीयेगा तो नगर में और मरेगा तो भी नगर में।

उनके मंच पर आते ही लोगों ने प्रचण्ड जयघोष किया: 'परमभट्टारक, परमेश्वरस्वरूप, परममाहेश्वर, राजराजेश्वर, महाराजाधिराज मगधपतिदेव की जय हो! पाटलीपुत्र नगर अमर रहे!'

'जय हो! अमर रहे!' की प्रतिध्वनि चारों ओर गूँज उठी और बाहर खड़ा दर्शक-समुदाय उन्मत्त होकर बार-बार इन घोषणाओं को दुहराने लगा।

महाराज आसन पर बैठ गए। महारानी और शिशुकुमार उनके बगल में बैठे। एक दासी भी उनके पीछे चुपचाप बैठ गई।

सहसा चन्द्रगुप्त के नेत्र उस दासी की ओर उठ गए। उसने उस दासी को पहले भी कई बार देखा था; परन्तु आज जिस रूप में और जिस प्रकार देखा वैसा पहले कभी नहीं देखा था। यह समय और प्रसंग ही ऐसा था कि वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके चेहरे-मोहरे की अपेक्षा उसके नेत्रों से प्रतिबिम्बित हो रहा था। महाराज सुन्दर वर्मा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके नेत्रों में आ बैठा था। महारानी के नेत्र उनके विशिष्ट व्यक्तित्व को उद्भासित कर रहे थे। मंत्रगुप्त भी नेत्रों के ही द्वारा अपने मन की वाणी को उच्चारित कर रहा था। महाबलाधिकृत कुंजरक के सारे शस्त्र उसके नेत्रों में समाये हुए थे। परन्तु उन सब में विशिष्ट थे उस दासी के नेत्र। चन्द्रगुप्त उन नेत्रों की ओर टक लगाये देखता ही रह गया। उन नेत्रों में जो था, वह कहीं भी नहीं था, किसी में भी नहीं था। वे नेत्र ही कुछ और थे, उनकी-ज्योति भी कुछ और ही थी। उन नेत्रों से प्रेम और श्रद्धा का मंगल आलोक विकीर्ण हो रहा था। लगता था, जैसे अनेक वर्षों तक वह अपने उन नयनों में श्रद्धा और भक्ति को इसी प्रकार सँजोये रहेगी। लगता था, जैसे वह स्वयं है ही नहीं, जो है केवल उसके नेत्र हैं।

उन नेत्रों की ओर देखकर चन्द्रगुप्त को न जाने क्यों ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वह जीता भी है और हारा भी। उस सामान्य दासी की तुलना में उसे कुंजरक, महामात्य, महाराज, महारानी सब कोई तुच्छातितुच्छ प्रतीत हुए। इसका कारण उसकी समझ में नहीं आया। उसने उस दासी के बारे में विशेष पूछ-ताछ भी नहीं की। परन्तु इतना वह अवश्य समझ गया कि इस नगर में अकेली यही एक नारी ऐसी है जिसकी तुलना में कोई शस्त्रास्त्र नहीं ठहर सकते, जिसके आगे भयंकर कूटनीतियाँ, जबर्दस्त षड्यंत्रों, संहारक युद्धों और क्रान्तियों की भी कोई बिसात नहीं। उन नेत्रों में इतना अगाध विश्वास और इतनी अविचल श्रद्धा थी कि शेष सब उसके आगे पानी भरने लगते।

दासी के इस रूप को चन्द्रगुप्त आज पहली ही बार देख रहा था; और उसके उत्तुंग व्यक्तित्व के आगे उसे शेष सब हीन और लघु दिखाई दिये।

वह दासी नहीं थी, नारी नहीं थी, माता भी नहीं थी। वह तो थी सृजन-हार की शक्ति, ऐसी शक्ति जो जब चाहे और जिसे भी चाहे उसका सृजन

करने की सामर्थ्य रखती हो। वह उस कल्याण वर्मा नाम के शिशु को कुछ भी बना सकती थी। क्या बना देगी, इसकी कल्पना तो अभी अवश्य नहीं की जा सकती। परन्तु चन्द्रगुप्त इतना समझ ही गया कि जब तक कल्याण वर्मा इस दासी के हाथों में है तब तक राजा वही रहेगा; हजारों परिवर्तन हो जायें परन्तु उसके राज-पद को इस दासी के रहते कोई छीन नहीं सकता। उस दासी के शान्त और स्निग्ध व्यक्तित्व में इतनी सामर्थ्य चन्द्रगुप्त को दिखाई दी। यह देखकर वह अत्यधिक चिन्तित हो उठा।

उसकी चिन्ता प्रतिक्षण गहन होती जा रही थी कि उसने महामात्य को खड़े होते देखा। महाराज सुन्दर वर्मा के आदेशानुसार वह परिषद् के समक्ष मुख्य प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए आगे आ रहा था।

मंत्रगुप्त वक्ता के स्थान पर आकर खड़ा हो गया। कुछ देर चुपचाप खड़े रहने के बाद उसने धीर गम्भीर वाणी में आरम्भ किया :

'सभासद सुनें। परमभट्टारक परमेश्वरस्वरूप परममाहेश्वर महाराजाधिराज राजराजेश्वर मगधपति महाराज सुन्दर वर्मा की मनोभिलाषा को सब जन मेरे वक्तव्य के द्वारा सुनें। सब सावधान होकर सुनें। महाराज शिशुकुमार कल्याण वर्मा को भावी मगधपति का पद प्रदान करना चाहते हैं—आज नहीं, भविष्य में शिशुकुमार कल्याण वर्मा ही मगधपति होंगे।

'परन्तु महाराज की यह अभिलाषा है कि परिषद् इस प्रस्ताव को आज और अभी ही स्वीकार कर ले। महाराज का यही वक्तव्य है, यही विज्ञप्ति है। मौन रहकर परिषद् इसको स्वीकार करे, इसकी अनुमति प्रदान करे....'

इतना कहकर मंत्रगुप्त चुप हो गया।

परिषद् भी चुप रही। कोई कुछ न बोला।

'परिषद् मौन है। इसका यह अर्थ हुआ कि परिषद् भावी मगधपति के रूप में कल्याण वर्मा को स्वीकार करती है। यदि मेरा कथन सही है, युक्तियुक्त है तो परिषद् मौन रहकर इसका समर्थन करे....'

परिषद् ने मौन रहकर इसका भी समर्थन किया।

'अब तीसरी बार मैं पुनः सारी बात को दुहराता हूँ : महाराज कल्याण वर्मा को भावी मगधपति का पद प्रदान करना चाहते हैं। परिषद् अपने मौन

के द्वारा कल्याण वर्मा को भावी मगधपति स्वीकार करती है। मैंने तीसरी बार अपने वक्तव्य को कहा। किसी को कुछ कहना हो तो वह अँगुली-निर्देश कर सकता है।'

तीसरी बार भी कोई कुछ न बोला।

'तो मैं यह समझता हूँ कि सभी नगरजन, समस्त श्रेष्ठी-समुदाय, सार्थवाह-निगम, प्रथम कुलिक, अमात्य, राज-परिवार के सदस्य, राजकर्मचारी—सभी इससे सहमत हैं। मैं ऐसा ही समझता हूँ। भन्ते परिषद्‌जन, मैंने ठीक ही समझा है न?'

सब मौन धारण किये रहे।

महामंत्री अपने स्थान पर लौट गया।

दूसरा प्रस्ताव चन्द्रगुप्त द्वारा उपस्थित किया जाने को था। महामात्य मंत्रगुप्त ने लक्ष्य किया कि चन्द्रगुप्त ने वातावरण और स्थिति को बहुत हद तक अपने अनुकूल कर लिया है, क्योंकि उसके खड़े होते ही परिषद् में उत्साह की लहर दौड़ गई और किसी-किसी ने तो हर्ष-ध्वनि भी की—'राजरक्षक चन्द्रगुप्त की जय हो!'

वक्ता के लिए निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर चन्द्रगुप्त ने दोनों हाथ जोड़ सारी परिषद् को प्रणाम किया और फिर कहने लगा :

'नगरजनो, अमात्यो और श्रेष्ठियो! मगध में पहले से एक प्रथा चली आती है। वृद्ध जनों ने उसे प्रत्यक्ष देखा भी होगा। आपमें से कइयों ने उस महान परम्परा के बारे में सुना होगा।

'यह प्रथा इसलिए आरम्भ की गई थी कि मगध में कोई ऐसा उत्तराधिकारी, जो मगध के गौरव और प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचानेवाला हो, सिंहासन पर आसीन न हो सके। मध्यवर्ती काल में यवनों, यूनानियों, शकों और कुशानों के आक्रमण हुए। मगध रौंदा गया। पाटलीपुत्र लूटा गया। साकेत का तो अस्तित्व ही संकट में पड़ गया। गंगा-यमुना का मध्यवर्ती सम्पन्न भू-भाग मरुस्थल बना दिया गया। यह सब हुआ। दुर्दिन आये और चले गए। आज हम मगध के गौरव और महत्त्व को पुनर्जीवित करने के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं। आज मगध अपने गौरव को पुनः स्थापित करने का दृढ़ निश्चय करता

है। इस शुभ कार्य का प्रारम्भ किया जाता है मगध की प्राचीन परम्परा और प्रणाली को पुनर्जीवित करके। प्रथा यह रही है कि भावी मगधपति सदा-सर्वदा मगध के दूसरे श्रेष्ठ नगर में निवास करते आये हैं। वहाँ उनके साथ विशाल सेना रहती थी। उनकी रक्षा के लिए परम शक्तिशाली सेनापति रहते थे। इस प्रकार युवराज को वहाँ शासन-कार्यों और युद्ध की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त हो जाती थी। आरम्भ से ही अपने राज्य की सीमा के रक्षक बन-कर वे रहते थे।

'आज हम कुछ विचित्र परिस्थिति में होते हुए भी पुनः मगध के महान साम्राज्य की नीव रखकर यह सिद्ध कर देना चाहते हैं कि पाटलीपुत्र ही सारे भारतवर्ष का केन्द्र है और हो सकता है।

'इसलिए मैं आप लोगों के समक्ष एक प्रस्ताव उपस्थित करता हूँ। प्रस्ताव यह है कि वैशाली, पाटलीपुत्र के बाद, मगध का दूसरा महान नगर है। जो भी भावी मगधपति होगा वह अब से वैशाली के प्रदेशपति के रूप में वहाँ जाकर रहेगा। इस प्रथा को आज महाराज सुन्दर वर्मा पुनर्जीवित करते हैं। हमारे भावी मगधपति युवराजपदीय कुमारामात्य कल्याण वर्मा वैशाली जाते हैं। नन्हें शिशुकुमार को वैशाली भेजकर पाटलीपुत्र अपनी अडिग राज-नीति की घोषणा करता है। वह राजनीति यह है कि मगध अब भी अखंड और अविच्छिन्न भारतवर्ष का नेतृत्व करने की सामर्थ्य रखता है; मगध ही सारे देश को एकताबद्ध कर सकता है। ऐसा करके ही हम मगध-साम्राज्य के महत्त्व और गौरव को पुनः स्थापित कर सकते हैं।

'मेरे इस प्रस्ताव को यह परिषद् स्वीकार करे, अनुमति प्रदान करे। महा-राज की यही अभिलाषा है। मगध के भविष्य के लिए, शिशु मगधपति के साथ महारानी भी वैशाली जायेंगी। महाबलाधिकृत कुंजरक सेना-सहित वहाँ जा-कर रहेंगे।

'वैशाली वर्षों से पाटलीपुत्र को चुनौती देती आई है। उसने कभी मगध-पति की परवाह नहीं की है। वह सदा अपने गणतंत्र पर गर्व करती और उसी पर दृढ़ रही है। इस प्रस्ताव के द्वारा हम वैशाली को भी अपने इस दृढ़ निश्चय से सूचित करते हैं कि वैशाली मगध की थी और आगे भी रहेगी।'

'परिषद् मौन रहकर इस प्रस्ताव का अनुमोदन करे, ऐसी महाराज की विज्ञप्ति है।

'भावी मगधपति कल्याण वर्मा के महान पद की मैं अभिवन्दना करता हूँ।'

अपना वक्तव्य समाप्त कर चन्द्रगुप्त ने म्यान से तलवार खींच निकाली और शिशु कल्याण वर्मा की ओर जरा-सा नतमस्तक हो उसने तलवार को अपने कपाल से लगा लिया। इस प्रकार उसने कल्याण वर्मा, मगध और पाटलीपुत्र के प्रति अपनी दृढ़ राजभक्ति का प्रदर्शन किया।

लोग हर्ष-विभोर हो उठे। उनके उत्साह ने सारी सीमाएँ तोड़ डालीं। वे यह भी भूल गए कि मौन रहकर अनुमोदन किया जाता है। उन्होंने उच्चातिउच्च स्वर में जयनाद करके चन्द्रगुप्त के प्रस्ताव को स्वीकार किया :

'भावी मगधपति महाराज कल्याण वर्मा की जय हो! राजरक्षक चन्द्रगुप्त विजयी हों।'

उत्साह इतना जबर्दस्त था कि यदि कोई विरोध करना चाहता तो भी उसकी हिम्मत न होती। साहस करके यदि कोई खड़ा हो भी जाता तो उसे मुँह की खानी पड़ती। इसी लिए महामंत्री मंत्रगुप्त अपने स्थान पर चुप बैठा देखता रहा। उसने विरोध न करने में ही अभी अपनी कुशल देखी।

'नगरजन, श्रेष्ठी, परिषद् के समस्त जन, मेरे वक्तव्य को सुनें।' हर्ष-ध्वनि और जय-घोषणा थम जाने पर चन्द्रगुप्त ने आगे कहा, 'आपने जिस उत्साह से मेरे प्रस्ताव को स्वीकार किया है इसे मैं आपके दृढ़ निश्चय का प्रतीक मानता हूँ। हमें जानना चाहिए कि वैशाली-जैसा नगर, यदि आज के संयोगों में, पाटलीपुत्र के प्रति अपने परम्परागत वैर को बनाये रखता है तो मगध के लिए नया कुछ भी करना असम्भव और आत्महत्या के ही समान होगा; तब भावी महान साम्राज्य के निर्माण की बातें केवल बातें ही रह जायेंगी; उसकी नीव तो जाने कब रखी जा सकेगी परन्तु पाटलीपुत्र के माथे पर विरोध की नंगी तलवार हमेशा लटकी रहेगी। ऐसी स्थिति में यहाँ से सेना लेकर बाहर जानेवाला मूर्ख ही समझा जायेगा। इसलिए हमने जो निर्णय किया है उसका सभी संयोगों में पालन करना होगा।

'हमें सबसे पहले वैशाली को अपने निर्णय की स्पष्ट शब्दों में सूचना देनी चाहिए। वैशाली महान नगर है। शक्तिशाली है। महाराज मगधपति उसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इसी लिए भावी मगधपति को वहाँ प्रदेश-पति बना कर भेजा जा रहा है। वैशाली इसे स्वीकार करे; अपने प्रदेशपति का दिल खोलकर स्वागत करे।

'मैं ऐसा समझता हूँ कि यह रचनात्मक कदम ही हमारे महान भविष्य का स्रष्टा और निर्माता बन सकता है। लेकिन एक बात और भी है। इस प्रस्ताव के बाद वैशाली को समय देना अपने हाथों पाँव पर कुल्हाड़ा मारना होगा। सब का श्रेय इसी में है कि वैशाली इस प्रस्ताव के पारित होने की घड़ी से ही अपना भाग्य पाटलीपुत्र के साथ जुड़ा हुआ समझ ले।

'इसलिए मैं मगध के राजज्योतिषी को भी यह विज्ञापित करता हूँ कि वह भावी मगधपति महाराज कल्याण वर्मा के प्रस्थान का शुभ मुहूर्त छानकर तत्काल उसकी सूचना हमें दें। महाबलाधिकृत कुंजरक को भी अपने प्रस्थान की तैया-रियाँ अविलम्ब आरम्भ कर देनी चाहिए।'

चन्द्रगुप्त को एक के बाद एक इस प्रकार के प्रस्ताव परिषद् के समक्ष रखते देख मंत्रगुप्त समझ गया कि वह निश्चय ही किसी सुनियोजित योजना का अनुसरण कर रहा है। लेकिन उसे विफल करने के लिए वह अभी कुछ कर नहीं सकता था। केवल एक ही मार्ग उसके सामने खुला था। चुपचाप देखता चले और चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र से बाहर न जाने दे। बस, वह स्वयं अपनी इसी योजना का अक्षरशः पालन करेगा।

थोड़ी ही देर में उसने राजज्योतिषी दैवज्ञदेव को भी खड़े होते देखा।

दैवज्ञदेव वक्ता के लिए निर्दिष्ट स्थान पर आकर खड़ा हो गया। उस ने आकाश की ओर दृष्टि डाली। अपनी अँगुलियों पर कुछ गिना। फिर धीर, गम्भीर और विश्वास-प्रेरित करनेवाली वाणी में आरम्भ किया :

'भन्ते परिषद् जन! महाराज कल्याण वर्मा के प्रस्थान का शुभ मुहूर्त आज से कुछ दिनों के पश्चात् कृष्ण पक्ष में निकलता है। निश्चित दिन और उस का घड़ी-पल तो मैं बाद में गणना करके बताऊँगा; परन्तु इस बीच सब तैया-रियाँ हो जानी चाहिए, इसी लिए अभी अनुमान से कृष्ण पक्ष बताया है।

विधिवत विचार और गणित के बिना निश्चित घड़ी-पल बताना दुष्कर ही है। उसके लिए समय अपेक्षित है। समय लेकर मैं उसका निर्धारण भी अति शीघ्र करूँगा। महाराज की जय हो!'

ज्योतिषी बैठ गया।

जन-समुदाय ने इस निर्णय का समर्थन भी, मौन रहकर नहीं, हर्ष-ध्वनि से ही किया।

७. साकेत के समाचार

दैवज्ञदेव के वक्तव्य के बाद लोगों की हर्ष-ध्वनि अभी रुकने भी नहीं पाई थी कि वहाँ एक सन्देशवाहक ने प्रवेश किया। लोगों के नेत्र सहसा उसकी ओर उठ गए। उसकी ओर देखते ही वहाँ उपस्थित सभी के हृदय एक गहरी आशंका और भय से अभिभूत हो उठे। सब सोचने लगे, कौन है यह ? क्यों आया है ? ऐसे किशोर-वय के, बालक-जैसे सन्देशवाहक को भेजने का प्रयोजन क्या है ? कोई विपत्तिजनक समाचार तो यह नहीं लाया है ?

वह किशोर सन्देशवाहक क्षिप्र गति से दौड़ता हुआ वहाँ आया था। उसके अश्व की साँस भर आई थी और वह अब भी परिषद् भवन के बाहर खड़ा जोर-जोर से साँस ले रहा था। किशोर ने तेजी से चलते हुए परिषद् भवन में प्रवेश किया। उसे मार्ग देने के लिए लोग इधर-उधर दुबक गए और वहाँ एक पगडण्डी-सी बन गई। परिषद् की कार्यवाही क्षण-भर के लिए रुक-सी गई। किशोर जल्दी से चलता हुआ सीधा मंच की ओर बढ़ा।

उसे देखते ही महाराज सुन्दर वर्मा के अंगरक्षकों ने अपने आयुध सँभाल लिये। पता नहीं आगन्तुक कौन है और किस उद्देश्य से आया है ? उसे पहचाननेवाला वहाँ कोई नहीं था। शक्ल-सूरत से वह राजवंशी प्रतीत होता था। लोग तरह-तरह के विचारों में लीन उसे देखते रहे।

वह मंच के सामने आकर खड़ा हो गया। वय से किशोर होते हुए भी उसका चेहरा प्रतापशाली और शरीर गठीला तथा मजबूत था। महाराज को

प्रणाम करके उसने शीघ्रतापूर्वक कहा—महाराज, मैं साकेत से आया हूँ.... जो काम मुझे सौंपा गया है वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। दादाजी ने मुझे भेजा है। यह है उनकी मुद्रा।

उसने मुद्रा निकालकर महाराज सुन्दर वर्मा की ओर बढ़ाई।

'दादाजी ?' महाराज सुन्दर वर्मा ने विस्मय से भरे स्वर में पूछा, 'तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम साकेत से आ रहे हो न ?'

चन्द्रगुप्त उस किशोर को देखते ही अधीर हो उठा। लेकिन किशोर का ध्यान चन्द्रगुप्त की ओर नहीं था। वह बड़ी हड़बड़ी में मालूम पड़ता था। महाराज सुन्दर वर्मा के प्रश्न का उत्तर देने के लिए आगे बढ़ते हुए उसने कहा—हाँ महाराज, मैं साकेत से ही आया हूँ। मुझे साकेतपति घटोत्कचदेव ने भेजा है। वह इस समय मरणासन्न अवस्था में हैं। और वह मेरे दादाजी होते हैं।

'मरणासन्न अवस्था में ? कौन ? घटोत्कचदेव ?' अब मंत्रगुप्त ने आगे आकर पूछा। उसे सन्देह हुआ कि कहीं यह भी चन्द्रगुप्त का कोई षड्यंत्र तो नहीं ? पाटलीपुत्र से निकल भागने के लिए उसने अवश्य यह चाल चली है। इस तरह वह चाहे तो साकेत जा सकता है।

आगन्तुक किशोर को वह पहचान भी गया। वह चन्द्रगुप्त का बेटा था, जिसे वह अपने पीछे साकेत छोड़ आया था। मंत्रगुप्त ने निश्चय किया कि वह इस सारे प्रसंग को यहीं-का-यहीं दाब देगा, जरा भी आगे न बढ़ने देगा।

किशोर अब भी हड़बड़ी में था। उसकी आन्तरिक वेदना उसके चेहरे पर स्पष्ट रूप से अंकित थी।

उधर चन्द्रगुप्त के बुरे हाल थे। अपने पुत्र को पहचानकर भी वह उसे छाती से लगाने के लिए लपक नहीं सकता था। उसे आश्वासन के दो बोल भी वह कह नहीं सकता था। कितना पराधीन हो गया था वह ! न वह किसी का पिता रहा था, न पुत्र। यदि पुत्र था भी तो केवल सुन्दर वर्मा का। सिवा टुकुर-टुकुर देखने के वह और कुछ कर ही नहीं सकता था।

तभी मंत्रगुप्त ने पुछा—क्या तुम साकेत से आ रहे हो ?

'हाँ प्रभु ! मेरे दादा घटोत्कचदेव ने मुझे भेजा है। मुझे शीघ्र ही यहाँ

से लौट भी जाना होगा। मैं पिताजी को लेने के लिए आया हूँ। उन्हें साथ लेकर अभी तत्काल लौटना होगा। मेरे लिए एक-एक पल कीमती है। वहाँ दादाजी प्रतिक्षण मृत्यु की ओर ढकेले जा रहे हैं। सबने घुटने टेक दिये हैं। भिषग्वर सिर पर हाथ दिये बैठे हैं। ज्योतिषी आकाश की ओर टक लगाये देख रहे हैं। पिताजी को लेने के ही लिए मैं यहाँ भागा आया हूँ। महाराज सम्भवतः मुझे नहीं पहचानते, परन्तु मैं आपके प्रदेशपति का, जो यहाँ बैठे हुए हैं, पुत्र हूँ। मेरा नाम काच है।'

यह सुनकर मंत्रगुप्त को पूरा विश्वास हो गया कि इस प्रकार चन्द्रगुप्त को यहाँ से ले जाने की युक्ति रची गई है। उसने कहा—'काचदेव, वत्स, तुम साकेत से दौड़े चले आये, यह अच्छा ही किया। भिषग्वर वहाँ भी होंगे, परन्तु यहाँ के भिषगाचार्यों की तुलना में वे ठहर नहीं सकते। यहाँ तो ऐसे-ऐसे आयुर्वेदाचार्य हैं जो एक बार साक्षात् यम के भी हाथ थाम लेते हैं। मेरे इस कथन की सत्यता को स्वयं महाराज चन्द्रगुप्त भी स्वीकार करेंगे। सम्भवतः तुम्हें इस बात की जानकारी नहीं है। यदि होती तो तुम साकेतपति को चिकित्सा के लिए यहीं ले आते। लेकिन अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम एक शिविका लेकर अभी तत्काल लौट जाओ और उसमें लिटाकर साकेतपति को यहीं ले आओ। यहाँ के शिविकावाहकों की गति का तुम अनुमान भी नहीं लगा सकते। क्षिप्रगामी अश्व भी उनकी चाल का मुकाबला नहीं कर सकते। महाराज चन्द्रगुप्त तो यहाँ से अभी नहीं जा सकते। उन्होंने देश के नवनिर्माण का एक महान आयोजन अभी-अभी आरम्भ किया है। उसे अधबीच छोड़कर वह कहीं जा ही कैसे सकते हैं! इसलिए वत्स, तुम लौट जाओ और साकेतपति को यहीं ले आओ!

'लेकिन मंत्रगुप्त, यह तो जीवन-मरण का प्रश्न है।' चन्द्रगुप्त ने कहा, 'यदि महाराज की अनुज्ञा हो तो मैं तत्काल जाना चाहूँगा।'

'वैशाली के सम्बन्ध में मगध ने जो निर्णय किया है उसे देखते हुए अभी साकेत जाने का अर्थ आत्महत्या होगा।' मंत्रगुप्त ने कहा।

'क्या? आत्महत्या!' चन्द्रगुप्त व्यग्र हो उठा। उसका स्वर काँप रहा था।

'मैं तो केवल महाराज मगधपति के मत को अभिव्यक्त कर रहा हूँ। देव समझें कि अब उनका यहाँ से कहीं भी जाना आत्महत्या के समान घातक होगा। हमारे प्रस्ताव के प्रत्युत्तर में वैशाली युद्ध की ही घोषणा करेगी। इस सम्बन्ध में किसी को भी सन्देह नहीं होना चाहिए, न किसी को भ्रम में ही रहना चाहिए। हमें यही मानकर चलना होगा कि हमारे निर्णय की सूचना वैशालीवालों को मिल चुकी है।'

सुन्दर वर्मा ने सब सुना, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया। घटोत्कच-देव को इस समय यहाँ लाना उसे सर्वथा निरर्थक ही प्रतीत हुआ। तब मंत्र-गुप्त का अभिप्राय क्या हो सकता है? कहीं वह ऐसा तो नहीं चाहता कि चन्द्र-गुप्त यहाँ से बाहर न जाने पाये। उसने मंत्रगुप्त की ओर देखा। उसके हाव-भाव महाराज सुन्दर वर्मा को अपनी धारणा की पुष्टि करनेवाले प्रतीत हुए।

'परन्तु देव! प्रभु!' काच का हृदय फटा जा रहा था। उसके पिता यहाँ थे, परन्तु फिर भी जैसे वह नितान्त अकेला ही था।

लेकिन वह अपनी बात आगे नहीं कहने पाया। मंत्रगुप्त ने उसकी बात काटते हुए उच्च स्वर में कहा—लाओ, शिविका लाओ! अति शीघ्र शिविका लाओ!

'प्रभु, यदि आदेश दें तो मैं ही शिविका में चला जाऊँ और उन्हें यहाँ लिवा लाऊँ। यहाँ के भिषगाचार्य निश्चय ही उन्हें प्राणदान दे सकेंगे। लेकिन कदाचित् दैवदुर्विपाक से मृत्यु-शय्या पर ही हुए तो मैं साकेतपति से अन्तिम बार मिल भी सकूँगा।' चन्द्रगुप्त ने कहा।

इतना तो वह भी ताड़ गया था कि मंत्रगुप्त उसे पाटलीपुत्र से बाहर जाने नहीं देना चाहता। इसलिए उसने अधिक अनुनय-विनय करना व्यर्थ समझा। ऐसा करने से उसके प्रति सन्देह भी उत्पन्न हो सकता था। अब वह मगधपति का 'कृतक-तनय' था। अधिक बोलने अथवा अपनी इच्छानुसार आचरण करने का उसे अधिकार भी नहीं था। पराधीनता के इस ज्ञान से उसे मर्मान्तक दुःख हुआ। लेकिन वह कर भी क्या सकता था? अधिक बोलता तो निरर्थक सन्देहों की सृष्टि होती। वह कृतघ्न समझा जाता। उसके गौरव को क्षति

पहुँचती। अब तो कुशल इसी में थी कि महाराज के 'कृतक-तनय' के अभिनय को निभाता रहे।

उसने दृष्टि चुराकर अपने किशोर पुत्र की ओर देखा। उसकी व्यथा और विह्वलता देखकर चन्द्रगुप्त का कलेजा मुँह को आ गया। उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। यदि उसका वश चलता तो वह वहीं से कूदकर साकेत की ओर भाग खड़ा होता। अपने मातृहीन पुत्र को साकेत में पिता के पास छोड़कर वह पाटलीपुत्र चला आया था। किस सुख की खोज में उसने ऐसा किया? जिस राज्य के आकर्षण से उसने पुत्र को छोड़ा वह राज्य तो मिला नहीं, उलटा वह अपने पुत्र से भी बिछुड़ गया। अभी वह पुत्र सामने खड़ा था। उसे आश्वासन चाहिए, अपनत्व के दो बोल सुनने को वह खड़ा तरस रहा था, परन्तु उसका पिता कुछ कर नहीं सकता था। न वह बेटे को आश्वासन दे सकता था और न मरते हुए बाप को देखने साकेत ही जा सकता था।

फिर भी उसने हाथ जोड़कर कहा—यदि महाराज की अनुज्ञा हो तो मैं स्वयं जाकर साकेतपति को यहाँ ले आऊँ। वह वृद्ध हैं और उनकी राजभक्ति इसकी अपेक्षा भी रखती है। महाराज आज्ञा प्रदान करें।

परन्तु मंत्रगुप्त टस-से-मस नहीं होना चाहता था। उसे सन्देह हो गया था कि यह चाल केवल पाटलीपुत्र से चन्द्रगुप्त को हटाने के ही लिए चली गई है। उसने दृढ़ निश्चय-भरे स्वर में कहा—महाराज, उचित यह है कि साकेतपति यहाँ आयें। परमभट्टारक-पदीय युवराज महाराज चन्द्रगुप्त का वहाँ जाना हमारे लिए शोभास्पद नहीं। उन्हें इस प्रकार जाने का अधिकार भी नहीं। फिर इस समय परिस्थिति भी प्रतिकूल है। वैशाली के सम्बन्ध में हमने जो प्रस्ताव पारित किया है उसकी सूचना लिच्छवियों को मिल गई होगी। यह समझ लीजिए कि हमने सोये शेर को ही छेड़ दिया है। कल सवेरा होते-होते वैशाली का दूत युद्ध की घोषणा लेकर यहाँ आ पहुँचेगा। परन्तु ये बातें तो फिर भी होती रहेंगी। अभी तो हमें साकेतपति के सम्बन्ध में सोचना और तत्काल कुछ करना चाहिए।

वाद-विवाद में समय गँवाने की अपेक्षा तत्काल कुछ करना उचित समझकर उसने जोर से पुकारा—अरे, कोई है?

एक यवनी दौड़ी आई।

'जाकर महाराज की द्रुतगामिनी शिविका यहाँ लाने के लिए किसी से कह। तत्काल आज्ञा का पालन होना चाहिए। दौड़ी चली जा। इस सेवा के लिए महाराज तेरे अनुकूल हों।'

परिषद् चकित, विस्मित इस नाटक को देखती रही।

थोड़ी ही देर में महाराज की द्रुतगामिनी शिविका को उठाये भारवाहक वहाँ आ पहुँचे। चन्द्रगुप्त बैठा टुकुर-टुकुर देख रहा था। किशोर काच को अपने पिता की यह विवशता बुरी तरह खल गई। परन्तु कर ही क्या सकता था! महाराज सुन्दर वर्मा से कहने पर भी कोई लाभ न होता। वह तो मंत्रगुप्त के आदेशों का ही अनुसरण कर रहे थे।

'महाराज, काच के साथ एक सेनानायक भी जायेगा।' मंत्रगुप्त ने कहा, 'काच तो साकेतपति को लेकर यहाँ लौट आयेगा और सेनानायक वहीं रहकर साकेत की रक्षा करेगा।'

इस प्रकार मंत्रगुप्त अकेले चन्द्रगुप्त के बदले परिवार के तीनों सदस्यों को—दादा, पुत्र और पोते को—बन्दी बना रहा था। परन्तु चन्द्रगुप्त के सामने देखते रहने और चुप लगाये रहने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न था।

थोड़ी ही देर के बाद शिविका में काच और सेनानायक को साकेत के लिए रवाना कर दिया गया।

परिषद् की कार्यवाही भी लगभग समाप्त हो चुकी थी। कोई नया प्रस्ताव विचारार्थ था नहीं, इसलिए महाराज सुन्दर वर्मा भी उठ खड़े हुए। उनके उठते ही परिषद्-जन भी उठ गए।

सब प्रसन्न थे। यहाँ तक कि मंत्रगुप्त भी मुदित हो रहा था। लेकिन दुःखी था अकेला चन्द्रगुप्त। उसकी मनोव्यथा उसके चेहरे पर स्पष्ट रूप से अंकित देखी जा सकती थी। वह अकेले में बैठकर परिस्थिति पर विचार करना और अपने दुर्भाग्य पर रोना चाहता था। अपनी पराधीनता के सम्बन्ध में आज उसे जो ज्ञान हुआ उसने उसकी आँखें खोल दी थीं।

वह आन्तरिक उद्वेग के कारण लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ सुगंगप्रसाद

के अपने आवास में पहुँचा तो तिलभट्टक वहाँ बैठा उसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था।

अपने आवास में प्रवेश करते ही चन्द्रगुप्त दोनों हाथों में मुँह छिपाकर मारे निराशा के आसन पर धब्ब से बैठ गया। बड़ी देर तक वह कुछ न बोला। वास्तव में उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या कहे और क्या न कहे। इस समय उसे अपनी स्थिति भीरु-से-भीरु पुरुष से भी हीन और दयाजनक लग रही थी। वह भीरु नहीं था। कायर भी नहीं था। लेकिन इस समय जाने क्यों वह अपने में साहस और वीरता का नितान्त अभाव पा रहा था।

पिता—उसको जन्म देनेवाला स्वयं उसका पिता इस समय मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। उसका अपना बेटा उसे बुलाने के लिए आया था। परन्तु वह 'कृतक-तनय' बना यहाँ पाटलीपुत्र में बैठा था और मन में अदम्य इच्छा रहते हुए भी अपने पिता की मरण-शय्या के पास पहुँच नहीं सकता था। वह यहाँ आया था पाटलीपुत्र के महान मगध-राज्य पर अधिकार करके उसे पुनः गौरव के उच्च शिखर पर पहुँचाने के लिए। लेकिन आज उसके सारे स्वप्न भंग हो गए। न मिला उसे पाटलीपुत्र और न रह गया वह साकेत का ही। उसकी दशा धोबी के उस गधे-जैसी हो गई जो न घर का होता है न घाट का। त्रिशंकु बना वह अधर में लटका रह गया था। वह अपने पुत्र की संकट में भी कोई सहायता न कर सका, उसे आश्वासन के दो बोल भी न कह पाया। न वह साकेत जा सका, न पाटलीपुत्र का परित्याग कर सका और न पाटलीपुत्र में अपने निश्चित गौरव की ही स्थापना कर सका।

वह कुछ भी नहीं था, फिर भी उसे ऐसा अभिनय करना पड़ रहा था मानो वही सब-कुछ हो; और अभी उसे यह अभिनय करते रहना होगा।

वह पुत्र था। वह पिता था। लेकिन अब इस तरह रहना और जीना होगा मानो वह कुछ नहीं है। इस अभिनय को भी वह निभा रहा था और आगे भी उसे इस अभिनय को निबाहते रहना होगा।

जब मन की अपार व्यथा और उद्वेग किसी तरह सहे न जा सके, असह्य हो गए तो वह उठ खड़ा हुआ और कक्ष में चक्कर लगाने लगा।

तिलभट्टक चुपचाप उसकी प्रत्येक गति-विधि को देखता जा रहा था। वह समझ गया कि परिषद् में अवश्य कुछ ऐसा हुआ है जिसने चन्द्रगुप्त को जड़-मूल से हिला दिया और वहाँ वह कुछ कर नहीं पाया, यह विवशता तीव्र वेदना बनकर उसे पीड़ित कर रही है।

वह चुप खड़ा उसके बोलने की प्रतीक्षा करता रहा।

८. चन्द्रगुप्त की मनोवेदना !

'तिलभट्टक, मैं यहाँ आया ही क्यों?' वह पीड़ित स्वर में बोला, 'मैं यहाँ मगधपति हूँ और नहीं भी हूँ। साकेतपति हूँ और नहीं भी हूँ। मैं ऐसा सेनापति हूँ जिसकी अपनी कोई सेना नहीं। ऐसा पिता हूँ जिसका अपना कोई पुत्र नहीं। अपने पिता का मैं पुत्र हूँ और नहीं भी हूँ। मैं क्या हूँ, इसे मैं स्वयं नहीं जानता! क्या अपनी यही दुर्गति करवाने के लिए मैं यहाँ आया था? बताओ, आज मैं क्या कर सकता हूँ? कुछ भी तो नहीं!'

तिलभट्टक ने आश्वासन-भरे शब्दों में कहा—महाराज स्वस्थ होकर मुझे बतायें कि वहाँ क्या हुआ है। मुझे तो महाराज का महान भविष्य ही दिखाई देता है।

'तिलभट्टक, आज साकेत से एक सन्देश आया है। जानते हो सन्देश लानेवाला कौन था?'

'यह भला मैं कैसे जान सकता हूँ! महाराज बतायें।'

'सन्देशवाहक था स्वयं मेरा किशोर पुत्र काचदेव! वहाँ मेरे पिताजी मरणासन्न अवस्था में पड़े हैं और मैं उन्हें देखने के लिए जा नहीं सकता। यहाँ मैं नाम के लिए सब-कुछ हूँ, परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं हूँ। आह, मैं कैसे भँवर में फँस गया हूँ? मगधपति बनने के मोह में मैंने अपना सारा पुरुषार्थ ही नष्ट कर डाला। मेरा अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं रह गया। मैं हूँ मात्र महाराज सुन्दर वर्मा का कृतक-तनय, जिसका अपना कोई सम्बन्धी नहीं, कोई स्वजन नहीं; कोई ऐसा नहीं जिसे मैं अपना कह सकूँ!'

'महाराज की इन समस्त समस्याओं का समाधान वैशाली के पास है। महाराज बतायें कि परिषद् में प्रस्ताव पारित हुआ या नहीं ? और यह भी बतायें कि वैशाली कौन जा रहा है ?'

'परिषद् में वह प्रस्ताव तो स्वयं मैंने ही उपस्थित किया और पारित भी हो गया। सेनापति कुंजरक स्वयं वहाँ जा रहा है। यह सब तो निर्विघ्न सम्पन्न हो गया। इतने में साकेत से सन्देश आ गया। जानते हो मंत्रगुप्त ने क्या किया ?'

'क्या किया ? महाराज बतायें !'

'उसने एक की जगह तीन व्यक्तियों को पाटलीपुत्र के कारागार में बन्द कर दिया।'

'वह कैसे ?'

'मैं तो ठहरा महाराज का कृतक-तनय ! आह, किसी का कृतक-तनय बनना भी कितना भयंकर और दुःखदाई होता है ! कृतक-तनय किसी का नहीं हो सकता और कोई उसका अपना नहीं होता। उसे तो नाटक के नट की भाँति अभिनय करना होता है। मैं भी नाटक का राजा बना घूम रहा हूँ और घूमते रहना होगा। यदि ऐसी बात न होती तो भला मैं साकेत गये बिना रह सकता था ? क्या उसी समय साकेत के लिए दौड़ न पड़ता ! सच पूछो तो इस समय मेरा मन यहाँ नहीं काच के साथ साकेत के मार्ग पर भागा जा रहा है। परन्तु उस दुष्ट मंत्रगुप्त ने इस प्रसंग को लेकर जो आघात किया है उससे मेरा यह हृदय....'

चन्द्रगुप्त ने अपनी छाती पर हाथ रखते हुए कहा, 'ओह, मेरा यह हृदय ही विदीर्ण हो गया है ! नहीं, मुझसे नहीं सहा जाता, तिलभट्टक, यह सब नहीं सहा जाता। अब जो होना हो, हो ! वैशाली आना चाहे तो खुशी से आये। मेरी अपनी कोई महत्त्वाकांक्षा, कोई स्वप्न नहीं रहा। मेरे मन में कोई आशा नहीं, कोई अभिलाषा नहीं। आज रात ही मैं उस दुष्ट मंत्रगुप्त का वध कर डालूँगा। मेरा यह विदीर्ण हृदय प्रतिशोध चाहता है। मैं राजा सुन्दर बर्मा को भी मार डालूँगा। मैं अकेला ही लड़ता हुआ पाटलीपुत्र-रूपी इस कारागार का परित्याग कर दूँगा। या तो लड़ता हुआ युद्ध में काम आऊँगा या

सैकड़ों-सहस्रों को मौत के घाट उतारकर यहाँ से निकल जाऊँगा ! मैं साकेत जाना चाहता हूँ। मुझे मेरा साकेत चाहिए। मैं दूसरा कुछ भी नहीं चाहता। मैं मगधपति बनना नहीं चाहता। मैं वैशाली और पाटलीपुत्र के पारस्परिक युद्ध का संचालन नहीं करना चाहता। मैं तो केवल साकेत जाना चाहता हूँ। वहाँ मेरा पुत्र है। वहाँ मेरे पिता हैं। वहीं मेरा अपना स्थान है। यहाँ मैं व्यर्थ ही आया। कृतक-तनय ! आह, कितना भयंकर और घातक शब्द है !'

तिलभट्टक को समझते देर न लगी कि सच ही मंत्रगुप्त ने घातक वार किया है। वह यह भी समझ गया कि इसमें मंत्रगुप्त का उद्देश्य चन्द्रगुप्त को उत्तेजित और व्यग्र करके ऐसा कार्य करने के लिए प्रेरित करना है जिसमें वह उलटा-सीधा कुछ कर बैठे। एक बार चन्द्रगुप्त अपना सन्तुलन खो बैठे, अपनी गरिमा और महत्त्व को भूल जाये तो मंत्रगुप्त का काम सरल हो जायेगा।

'महाराज घटोत्कच तो मृत्यु-शय्या पर हैं। उन्हें यहाँ लाया किस प्रकार जा सकेगा ?' तिलभट्टक ने पूछा।

'यही तो खूबी है तिलभट्टक ! महामात्य ने स्वयं महाराज सुन्दर वर्मा की तीव्रगामिनी शिविका उन्हें लाने के लिए भेजी है। पाटलीपुत्र के एक सौ भिषग्वरों को इकट्ठा किया गया है। सारा नाटक ऐसा रचा गया है मानो महाराज घटोत्कच के प्राणों को वह बचा ही लेगा ! लेकिन मुझे तो लगता है तिलभट्टक, कि अकेला वही नाटक नहीं कर रहा है। यहाँ तो सभी नाटक खेल रहे हैं। महारानी का अपना नाटक है, महाराज सुन्दर वर्मा का अपना नाटक है, मैं स्वयं नाटक कर रहा हूँ, तुम भी नाटक कर रहे हो, उस कवयित्री विज्जका का नाटक तो है ही और परिषद् तो सबसे बड़ा नाटक है....'

'देव का कथन यथार्थ है ! लेकिन ये सब नाटक एक महान वस्तु के निर्माण के साथ ही समाप्त भी हो जायेंगे ! हमें केवल इतनी सावधानी रखनी होगी कि उद्विग्नता में ऐसा कोई कार्य न कर बैठें जो हमारे उद्दिष्ट की उपलब्धि में बाधक हो। देश के नवनिर्माण की महान और शुभ घड़ी चली आ रही है। हमें इस तथ्य को समझना और तदनुकूल आचरण करना होगा ? इसलिए महाराज घटोत्कच को भले ही यहाँ लाया जाये....'

'लेकिन कहीं मार्ग में ही उनका देहावसान हो गया ? तब तो मेरे नाम पर सदा के लिए कलंक-कालिमा पुत जायेगी। लोग यही कहेंगे कि एक ऐसा अभागा बेटा भी हुआ जो पिता के अन्त समय में उसकी मृत्यु-शय्या के पास खड़ा न रहा ! नहीं तिलभट्टक, मैं किसी को यह कहने का अवसर न दूँगा। मैं तो आज ही रात में सबको मारकर यहाँ से भाग जाऊँगा। यदि भाग न सका तो यहीं लड़ते-लड़ते मर जाऊँगा। मारना या मरना इन दो को छोड़ कोई तीसरी बात मैं इस समय सोच नहीं सकता !'

चन्द्रगुप्त की मनोवेदना असह्य होती जा रही थी। अपनी उद्विग्नता में वह कुछ भी कर सकता था। उसे सँभालने की अत्यन्त आवश्यकता थी। यहाँ उसका अपना कोई नहीं था। एक भी स्वजन, सम्बन्धी या परिजन नहीं था। ऐसा कोई राजपुरुष अथवा राजकर्मचारी और अधिकारी भी नहीं था, जिस पर वह विश्वास कर सके। यों कहने को तो उसे सेनापति के अधिकार भी प्राप्त थे, परन्तु उसके हाथ के नीचे एक सैनिक भी नहीं था। वह नितान्त अकेला था और अपने अकेलेपन एवं निस्साहयता की अवस्था में क्या कर गुजरेगा, यह बताना मुश्किल ही था।

तिलभट्टक ने उसे आश्वासन देना आवश्यक समझा। वह उसके निकट आया और स्नेहपूर्वक उसके कन्धे पर हाथ रखकर कोमल, और प्रेमपूर्ण वाणी में बोला—महाराज, महाभगवती कुमारदेवी की श्रद्धा की बात मैंने यों ही आपसे नहीं कही थी। अब पुनः कहता हूँ। महाराज ध्यान देकर सुनें। देश के नवनिर्माण की उनकी आकांक्षा भी बड़ी बलवती है। वह प्रायः कहती रहती हैं कि कोई ऐसा महान पुरुष यहाँ आयेगा और इस अधम स्थिति से भारत को उबारेगा; वह सारे देश का नेतृत्व करेगा। वह देश को एकता-बद्धकर उसका नवनिर्माण करेगा। उसके हाथों अभिनव संस्कृति की पताका आरोपित होगी। कुमारदेवी का यह विश्वास और यह श्रद्धा अविचलित है। देश के नवनिर्माण के वह अहर्निश स्वप्न देखती रहती हैं। वैशाली के महामात्य हरिषेण महोदय के स्वप्नों के बारे में तो मैं आपको बता ही चुका हूँ। लेकिन मगध का महामंत्री मंत्रगुप्त यह नहीं चाहता। तो क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि मंत्रगुप्त ने इस महत् उद्देश्य से आपको विचलित

करने के लिए यह चाल चली है ? सम्भवतः वह चाहता हो कि व्यग्र होकर आप ऐसा कुछ कर बैठें जिसमें हमारी योजना पर पानी फिर जाये और उसे अपनी-सी करने का अवसर मिले। इसलिए मैं महाराज से निवेदन करता हूँ कि देव शान्त हों, निराकुल होकर परिस्थिति पर विचार करें। यदि मंत्रगुप्त नहीं चाहता कि हम पाटलीपुत्र छोड़ें तो हम कदापि यहाँ से नहीं जायेंगे। अभी पाटलीपुत्र का परित्याग करना हमारे लिए उचित भी न होगा। वैशाली का उत्तर आ जाने के बाद ही दूसरा कदम उठाना ठीक होगा। यदि उतावले-पन.में कुछ कर बैठे तो देश के नवनिर्माण का महाराज का स्वप्न अधूरा ही रह जायेगा।'

तिलभट्टक की यह बात सुनकर चन्द्रगुप्त के स्वाभिमान को चोट-सी लगी। कुमारदेवी के बारे में वह सुन चुका था और तिलभट्टक ने भी उसे उसके बारे में बताया था। वह बड़ी ही तेजस्विनी महिला थी। तिलभट्टक ने बात कुछ इस ढंग से कही थी मानो वैशाली ही भारत का उद्धार कर सकती है, दूसरे किसी में यह सामर्थ्य नहीं; मानो कुमारदेवी ही देश के नवनिर्माण का ध्वज आरोपित कर सकती है और कोई पुरुष उसकी तुलना में ठहर नहीं सकता। चन्द्रगुप्त का पौरुष इस चुनौती को चुपचाप कैसे सह लेता ? परन्तु इस समय तो वह अपनी ही वेदना से उद्विग्न था। उसके स्वाभिमान को चोट अवश्य लगी, परन्तु उसने सोचा कि जो स्वप्न मेरा है वही वैशाली में कुमार-देवी और महामात्य हरिषेण कवि का भी है। फिर अपने स्वाभिमान पर किये जानेवाले आघात से अधिक चिन्ता उसे इस समय अपने पिता महाराज घटोत्कच के सम्बन्ध में थी।

अपने मनोगत विचारों का स्पष्टीकरण करते हुए उसने कहा—तिलभट्टक, तुम्हारा कथन सच हो सकता है और भारतवर्ष का आगे चलकर जो होना होगा सो होगा; परन्तु इस समय मेरा ध्यान अपनी ही चिन्ताओं में केन्द्रित है। क्या मैं इतना निर्बल और कापुरुष हो गया कि अपने मरते हुए पिता की मृत्यु-शय्या के समीप खड़ा भी नहीं रह सकता ? यहाँ के प्रलोभनों में क्या इतना बह जाऊँ कि पुत्र ही न रहूँ ? एक बार मेरी यह दुर्बलता लोगों को विदित हो गई तो फिर मेरे लिए राज्य का सुख ही क्या रह जायेगा ? तब मेरे

लिए न राज्य का गौरव रहेगा, न मगध रह जायेगा और न भारतवर्ष ही।

'तिलभट्टक, जीवन में कभी-कभी ऐसा अवसर भी आता है जब सोच-विचार नहीं किया जाता, केवल मर-मिटना होता है। उस समय जो मरते नहीं, वे बाद में न मर सकते हैं और न जी सकते हैं। वे बने रह जाते हैं निरे माटी के पुतले। यदि मैं मनुष्य ही न रहा तो सेनापति, साकेतपति, मगध-पति और राजपुरुष कैसे रह सकूँगा। तब तो मेरे लिए देश के पुनरुत्थान की और नवनिर्माण की सारी बातें केवल बातें ही रह जायेंगी। और मेरी उन थोथी बातों पर विश्वास ही किसे होगा? तुम्हीं बताओ, क्या वे बातें मेरे मुँह से शोभा भी देंगी? पहले मुझे मनुष्य की भाँति अपने प्राणों की बाजी तो लगाने दो। यदि जीवित रहा तो बाकी बातें बाद में भी की जा सकेंगी।'

तिलभट्टक समझ गया कि इस समय चन्द्रगुप्त, जैसे भी बने, पाटलीपुत्र छोड़कर साकेत जाना चाहता है। वह अपने पिता की मृत्यु-शय्या के समीप पहुँचने के लिए आतुर हो रहा है। अधिक समझाने का अभी उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। समझाने का परिणाम उलटा भी हो सकता है। लेकिन उसे पाटलीपुत्र से बाहर जाने नहीं दिया जा सकता। यदि वह चला गया तो सारी बाजी ही उलट जायेगी; वह स्वयं तो सब-कुछ खो ही देगा, वैशाली को भी बहुत-कुछ गँवाना होगा। न इसे अकेला छोड़ा जा सकता है, न मन की करने दिया जा सकता है।

उसने अपना दूसरा हाथ भी चन्द्रगुप्त के कन्धे पर रख दिया और उसकी आँखों में आँखें पिरोकर अत्यधिक गम्भीर एवं विश्वासोत्पादक वाणी में समझाने लगा। उसका स्वर किसी भविष्यवक्ता की भाँति धीमा और रहस्यपूर्ण था। उसके शब्दों में श्रद्धा और देश के नवनिर्माण की महत्त्वाकांक्षा तथा आशा की गूँज थी। साथ ही उसमें यह चेतावनी भी थी कि यदि तुमने जल्दबाजी में कुछ कर डाला तो उसका गहरा मूल्य भी चुकाना होगा।

उसने कहा—मैं भविष्यवाणी तो नहीं करता; मुझे भविष्य-कथन का शौक भी नहीं, फिर भी महाराज से इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि आप एक बार महामात्य हरिषेण महोदय से अवश्य मिल लीजिए। उनसे निश्चिन्त होकर मिलने में ही कुछ सार है। माना कि आप पहले भी कई बार मिल

चुके हैं, लेकिन वह मिलना न मिलने के ही समान है। और आप एक बार कुमारदेवी से भी मिलिए। मेरे कथन की प्रतीति आपको तब होगी। उनमें इतनी शक्ति है कि वे आपके स्वप्नों और आपकी महत्त्वाकांक्षाओं को फलीभूत कर सकती हैं। वास्तव में देश के उद्धार का स्वप्न तो एक-दो व्यक्तियों के ही मन में अंकुरित होता है। हजारों-लाखों के हृदयों में तो वह उसके बाद ही पल्लवित हो पाता है। और जब लाखों हृदयों में पल्लवित हो जाता है तभी उसे वास्तविक महत्त्व प्राप्त होता है, तभी देश प्रगति करता और आगे बढ़ता है। आज हमारे सामने ऐसा ही अवसर उपस्थित हुआ है। भारतवर्ष के भविष्य की उदात्त कल्पना आप एक बार कवि हरिषेण के मुँह से सुनेंगे तो निश्चय ही डोल उठेंगे। वह इस प्रकार वर्णन करते हैं मानो उस महान भविष्य को अपने नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष देख रहे हों। उसे सुनने के बाद मुझे आपसे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। तब आप स्वयं ही स्वीकार करेंगे कि वह कल्पना निर्विवाद रूप से भव्य है और उसकी भव्यता की तुलना में विश्व की कोई विभूति ठहर नहीं सकती। बड़ी-से-बड़ी विजय, महान-से-महान आत्मत्याग, मनुष्य का श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ कर्म—कोई भी उसकी उच्चता को पहुँच नहीं सकता।

'आप पाटलीपुत्र से बाहर जाना चाहते हैं। इसके लिए व्यग्र हो रहे हैं। यह कोई कठिन काम नहीं है। जब चाहे हम यहाँ से निकल सकते हैं। परन्तु हमारा यहाँ से निकलना वैशाली की योजना के अनुरूप होना चाहिए। यह आज के संयोगों में आवश्यक भी है। यदि अभी उतावलेपन से काम लिया, बिना सोचे-समझे आप निकल भागे, देश के व्यापक हितों के स्थान पर काच-देव अथवा महाराज घटोत्कच तक ही अपने विचारों को सीमित रखा तो आपका सारा जीवन निष्फल हो जायेगा। यह नियति का कोई महान संकेत ही है कि आपको वैशाली की महान आत्माओं का सम्पर्क अनायास ही उपलब्ध हो रहा है; परन्तु याद रखिए अपने उतावलेपन के कारण आप सदा के लिए उनके सम्पर्क से वंचित हो जायेंगे।

'महाराज मेरे अविनय को क्षमा करें, परन्तु मुझे विवश होकर कटु सत्य कहना ही होगा। इसमें मेरा उद्देश्य महाराज के आदर्शों की अवहेलना करना

नहीं है। मैं तो केवल इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि यदि आपने उद्विग्नता में अपने आदर्शों और स्वप्नों को, जो दूसरों के भी आदर्श और स्वप्न हैं और जिनकी सफलता दूसरों के प्रयत्नों पर ही निर्भर करती है, ठेस पहुँचाई तो यह देश कभी उठने का नहीं। नवनिर्माण का सारा वातावरण ही धूमिल हो जायेगा, और देश रसातल में पड़ा कराहता रहेगा। फिर या तो कुशान यहाँ आ धमकेंगे या प्रवरसेन यहाँ का राजा बन बैठेगा और आप कहीं के नहीं रह जायेंगे। मेरी बात कटु अवश्य है, पर सत्य है और महाराज को उस पर स्थिरचित्त होकर विचार करना चाहिए।

'मंत्रगुप्त तो यही चाहता है कि आप उतावलेपन में कुछ कर गुजरें और सदा के लिए आपका महत् संकल्प भ्रष्ट हो जाये। वह तो चाहता ही है कि आपका भव्य स्वप्न छिन्न-भिन्न हो जाये।

'इसलिए मेरा निवेदन है कि महाराज थोड़ा धीरज धारण करें, कुछ देर प्रतीक्षा करें। काचदेव गया है तो यह देखना चाहिए कि वह क्या समाचार लेकर आता है। उसके लौट आने तक प्रतीक्षा कीजिए। फिर जो करना होगा, किया जायेगा।

'यह कारागार छोड़ना चाहेंगे तो इसे भी छोड़ा जा सकेगा। दुनिया में असम्भव कुछ भी नहीं है। कठिनाई कोई भी हो उसका हल निकल ही आता है।

'लेकिन व्यर्थ के उतावलेपन में यदि कुछ ऊटपटांग किया तो आपका जीवन नष्ट हो जायेगा, फिर आप उबर न सकेंगे। मुझे यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। अब आपको जैसा ठीक लगे कीजिए।'

तिलभट्टक चन्द्रगुप्त का मंत्री नहीं था, मित्र भी नहीं था, न वह उसका सलाहकार ही था। अभी-अभी उससे परिचय हुआ था। परन्तु उसके शब्दों की सचाई और वाणी की विश्वासोत्पादकता चन्द्रगुप्त के मन-प्राणों को छू गई। उसे ऐसा लगा मानो कोई विश्वसनीय मंत्री अपनी सशक्त वाणी और अकाट्य तर्कों से उसका उद्बोधन कर रहा हो।

परिचय होने के बाद चन्द्रगुप्त ने अनजाने ही तिलभट्टक की योजना के

अनुसार कार्य किया था। अब भी उसने उसके परामर्श पर ही चलने का निश्चय किया।

यह निश्चय करने के साथ ही चन्द्रगुप्त की समझ में आ गया कि इस समय पाटलीपुत्र को छोड़कर जाना निरा दुस्साहस ही होगा।

तिलभट्टक से यह छिपा न रहा। उसने अपनी बात का स्पष्ट प्रभाव उस पर पड़ते देखा। उसने सोचा कि जैसे भी हो इस व्यक्ति को कुमारदेवी और महामंत्री हरिषेण के स्वप्नों का दीपधर बनाना चाहिए। यदि चन्द्रगुप्त उनके स्वप्नों का वाहक बन गया तो उसका आधा काम समाप्त हो जायेगा।

उसकी योजना के अनुसार वैशाली को युद्ध का आह्वान भेज दिया गया था। यदि पाटलीपुत्र से युद्ध करना ही पड़ा तो वैशाली की पूरी शक्ति लगाकर मगध पर अधिकार कर लिया जायेगा। यह काम करना ही होगा। पाटलीपुत्र को स्वतंत्र और अकेला रहने देना कदापि उचित न होगा। प्रवरसेन कभी भी आक्रमण कर सकता था। भारत में अभी भी यह मान्यता प्रचलित थी कि मगधपति ही भारतपति हो सकता है। केवल भारतवासी ही नहीं, विदेशी भी ऐसा ही मानते थे। मगध की भौगोलिक और सामरिक स्थिति ही ऐसी थी। यदि पुत्र की मृत्यु का दुःख न होता तो प्रवरसेन अब तक पाटलीपुत्र पहुँच भी गया होता। गणपतिनाग अवश्य उसकी सहायता करेगा, क्योंकि एक तो वह उसका सम्बन्धी था और दूसरे स्वयं उसकी भी यही महत्त्वाकांक्षा थी। उधर मथुरा का भय भी था। इस प्रकार तीन-तीन प्रबल सेनापतियों की दाढ़ में से पाटलीपुत्र को छीनना हँसी-खेल नहीं था। वैशाली को जो भी करना हो शीघ्र करना चाहिए। किसी के पहुँचने के पहले ही पाटलीपुत्र पर अधिकार कर लेना चाहिए।

लेकिन वैशाली पाटलीपुत्र पर अधिकार तभी कर सकती थी जब चन्द्रगुप्त हरिषेण और तिलभट्टक की योजना के अनुसार कार्य करता। यदि वह मंत्रगुप्त का विरोध करके साकेत की ओर दौड़ पड़े और महाराज घटोत्कच की मृत्यु-शय्या के समीप पहुँच जाये तो अभी तक का सारा किया-कराया मिट्टी में मिल जायेगा। चन्द्रगुप्त को ही नहीं कुमारदेवी और हरिषेण को भी उसकी

गहरी क़ीमत चुकानी पड़ेगी। और वह कीमत होगी भारतवर्ष को ही सदा के लिए खो देना।

इसलिए तिलभट्टक ने और भी समझाते हुए कहा—महाराज के साकेत जाने की बात तो है छोटी-सी, परन्तु परिणाम की दृष्टि से वह भयंकर ही होगी। देव को उसका भारी मूल्य चुकाना होगा। महाराज को भारतवर्ष के साम्राज्य से ही हाथ धोने होंगे। मुझे जो कहना था मैंने निवेदन किया, अब देव को जो उचित लगे वैसा करें।

चन्द्रगुप्त उसकी बात पर थोड़ी देर विचार करता रहा और फिर बोला—तिलभट्टकजी, क्या सच ही कोई दूसरा मार्ग नहीं? क़ाचदेव की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त क्या कुछ और किया ही नहीं जा सकता?

'नहीं महाराज, दूसरा कोई मार्ग नहीं। काचदेव की प्रतीक्षा करना ही हमारे लिए इस समय सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। भावी युद्ध कितना बड़ा और महान होगा, इसे हम अभी जान नहीं सकते। अभी तो केवल इतना कह सकते हैं कि युद्ध होगा और अवश्यमेव होगा। यदि प्रवरसेन पाटलीपुत्र में आ बैठा तो न वैशाली के लिए कोई मार्ग रह जायेगा, न स्वयं आपके ही लिए। उस समय वह होगा भारत का चक्रवर्ती और आपको बनना होगा उसका मांडलिक, इसके अतिरिक्त और कोई गति न होगी।....महाराज, हमें पाटलीपुत्र में अभी बहुत कुछ करना है। अपने भावी पथ का स्पष्ट रूपेण निर्धारण किये बिना यदि हमने पाटलीपुत्र का परित्याग कर दिया तो हमारा भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा। अब महाराज स्वयं निर्णय करें।'

चन्द्रगुप्त ने सोचकर देखा; सच ही तिलभट्टक के सुझाये मार्ग के अतिरिक्त और कोई मार्ग न था। वह आसन पर बैठ गया और खिन्न स्वर में बोला—सच ही और कोई मार्ग नहीं। या तो अकेले लड़ते हुए युद्ध में प्राण-विसर्जन किया जाये, या प्रतीक्षा की जाये। और तो कोई मार्ग है नहीं!

'महाराज, इस समय अकेले लड़कर मरना भी उचित नहीं। माना कि यह कृत्य वीरता की चरम कसौटी है। कविगण इसकी यशोगाथा गाते हैं। लोग इस तरह मरनेवाले को देवता की तरह पूजते हैं। लेकिन इस तरह मरनेवालों की कमी नहीं। यदि आप इतिहास उठाकर देखें तो ऐसे अनेक वीर और

वीरांगनाएँ निकल आयेंगी। अकेले वीरतापूर्वक मरना कठिन नहीं। कठिन है मानव-समस्त के कल्याण की व्यापक योजना का निर्माण करना और उस योजना के लिए सारे कष्टों को सहकर जीते रहना। ऐसा वीरतापूर्ण कार्य बिरले ही कर सकते हैं। इस समय आपको व्यक्तिगत वीरता का परित्याग कर इस महान योजना के लिए जीवित रहने की बात सोचनी होगी। यह सामान्य बात नहीं है, न यह छोटा-मोटा त्याग ही है। यह बहुत उच्चकोटि की वीरता है। इस समय देश के नवनिर्माण के लिए किये गए व्यक्तिगत त्याग की वीरता ही हमारा उद्धार कर सकती है। एकाकी, अस्थायी और व्यक्तिगत वीरता इस समय किसी काम की नहीं।'

चन्द्रगुप्त ने शान्त स्वर में कहा—अच्छी बात है, हमें काचदेव के आगमन की प्रतीक्षा करनी ही चाहिए।

६. काचदेव लौट आया

कुछ दिन इसी तरह बीत गए। इस बीच चन्द्रगुप्त की वेदना का पार न था। वह किसी को अपने पास बुलाकर मन भी नहीं बहला सकता था; क्योंकि तिलभट्टक को बिलकुल छिपाकर रखना था। यदि किसी को उसके बारे में पता चल जाता तो अनर्थ ही हो जाता। वैसे सावधानी के लिए चन्द्रगुप्त ने यह आदेश दे दिया था कि एक फल्गुदत्त को छोड़ दूसरा कोई भी बिना अनुमति के सहसा उसके कक्ष में प्रवेश न करे।

चन्द्रगुप्त काचदेव के लौट आने की प्रतीक्षा कर रहा था। वह रोज उसका रास्ता देखता। सवेरा होते ही उत्तर दिशा की ओर दृष्टि कर के खड़ा हो जाता। दिन-भर चन्द्रशाला में खड़ा देखता रहता। लेकिन सारा दिन बीत जाता और न काचदेव आता, न उसके कोई समाचार ही मिलते। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते चन्द्रगुप्त की चिन्ता बढ़ती जाती थी। तिलभट्टक को भी लगने लगा-कि बहुत समय बीत गया है।

ऐसे में एक दिन सवेरे, चन्द्रगुप्त ने उत्तर दिशा में किसी शिविका को

आते देखा। उस शिविका के साथ अश्वारोही थे। आगे-पीछे पदाती चल रहे थे। अच्छी-खासी भीड़ साथ थी। चन्द्रगुप्त ने सोचा कि अवश्य काचदेव होना चाहिए। वह इतना अधीर हो उठा कि चन्द्रशाला से ठेठ नीचे तक दौड़ता चला आया।

मंत्रगुप्त ने राजमहल के सभी प्रवेश-द्वारों पर द्वारपाल, सशस्त्र यवनियाँ और सत्री नियुक्त कर दिये थे। बिना राजमुद्रा के कोई भीतर प्रवेश कर नहीं सकता था। काचदेव के पास स्वयं महाराज सुन्दर वर्मा की दी हुई मुद्रा थी। राजमुद्रा दिखाकर उसने प्रासाद में प्रवेश किया। वह अन्दर आते ही सीधा महाराज चन्द्रगुप्त के राजभवन की ओर लपका।

चन्द्रगुप्त राजभवन के प्रवेश-द्वार पर ही खड़ा था। उसने शिविका को नीचे रखे जाते देखा। महाराज घटोत्कच उसे शिविका के अन्दर दिखाई नहीं दिये। वह धड़कते हृदय से खड़ा रहा, फिर विह्वल होकर वहीं एक आसन पर बैठ गया, अन्त में निराशा से भरा ऊपर चला गया।

काचदेव उससे मिलने के लिए ऊपर आया। वह अकेला ही था। उसके नेत्रों में शून्यता और चेहरे पर घोर निराशा थी। परिणाम की कल्पना करके चन्द्रगुप्त का अन्तर तक काँप गया। वह अन्यमनस्क होकर मंत्रणागार में बैठा रहा।

काचदेव ने मंत्रणागार में प्रवेश किया। गहन शोक और आन्तरिक पीड़ा के कारण उसका चेहरा म्लान हो रहा था। पहले उसने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा, फिर धरती पर अन्यमनस्क बैठे अपने पिता पर उसके नेत्र स्थिर हो गए। एक क्षण तो वह वहीं स्तम्भित-सा खड़ा रहा। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या कहना और क्या करना उचित होगा। फिर वह दोनो हाथ जोड़े आगे बढ़ा। उसने गद्‌गद स्वर में कहा, 'पि....ता....जी!' परन्तु दूसरे ही क्षण उसने सम्बोधन को बदल दिया और बोला, 'महाराज, साकेत की उत्कट प्रीति ने महाराज घटोत्कचदेव को यहाँ आने नहीं दिया....' बड़ी कठिनाई से वह अपने इस वाक्य को पूरा कर सका।

चन्द्रगुप्त ने नेत्र उठाकर उसकी ओर देखा और कहा—आने नहीं दिया? परन्तु महाराज घटोत्कच जीवित तो....

आन्तरिक उद्वेग के कारण वह अपने कथन को पूरा न कर सका।

काचदेव ने देखा कि उसके शब्दों का दूसरा ही आशाजनक अर्थ महाराज द्वारा लगाया जा रहा है तो उसे स्पष्ट शब्दों में भीषण सत्य कहने के लिए विवश होना पड़ा। वह आगे बढ़कर चन्द्रगुप्त के सामने धरती पर बैठ गया और रुआँसे स्वर में बोला—देव, घटोत्कच महाराज को यह क्षुद्र धरती प्रिय न लगी। स्वर्ग में इन्द्रदेव को उनकी आवश्यकता प्रतीत हुई....मैं पहुँचा तब महाराज अन्तिम साँसें गिन रहे थे। बड़े प्रयत्नपूर्वक और अपूर्व मनोबल से उन्होंने प्रयाण के लिए तत्पर अपने प्राणों को टिका रखा था। मुझे देखते ही उन्होंने परम सन्तोष का अनुभव किया। संकेत से मुझे अपने समीप बुलाया और मेरे सिर पर....

कहते-कहते काचदेव सिसक उठा। उधर चन्द्रगुप्त के नेत्रों से आँसू बहने लगे। दोनो हाथों से अपने चेहरे को ढँककर उसने बिलखते हुए कहा—काच, वत्स, तू बड़ा भाग्यशाली है, अभागा तो मैं हूँ....

काचदेव ने किसी तरह संयम करके आगे कहा—देव, मैं आपके लिए घटोत्कच महाराज का अन्तिम सन्देश लाया हूँ। मेरे सिर पर अपना हाथ रखकर उन्होंने आपके लिए जो सन्देश दिया उसी को पहुँचाने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। महाराज उनकी अन्तिम इच्छा को सुनें।

'महानुभाव थे वह! मैं अभागा उनके अन्तिम दर्शन भी नहीं कर पाया। काचदेव, मैं सावधान हुआ। तुम उनकी अन्तिम अभिलाषा मुझे बताओ!'

'महाराज इसे उनके अन्तिम शब्द नहीं, आनेवाली घटनाओं की भविष्यवाणी ही समझें। उन्होंने कहा—काचदेव, तू जाकर कहना चन्द्रगुप्त से कि मुझे उसका महान भविष्य प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। गुप्तों के महान भविष्य के सम्बन्ध में मुझे दैवी संकेत प्राप्त हुए हैं। मैं अत्यधिक श्रद्धा और विश्वास के साथ कहता हूँ कि गुप्तों का भविष्य महान है।'

इतना कहकर काचदेव ने शीघ्रतापूर्वक अपने पीछे की ओर देखा। वहाँ उसे दरवाजे की ओट में एक शस्त्रधारिणी यवनी खड़ी दिखाई दी। काचदेव को ऐसा आभास हुआ मानो वह कान लगाये उनकी बातें सुन रही हो। उसे तत्काल अपनी, अपने पिता की, इस राजप्रासाद और मगध के महामंत्री क

याद हो आई। वह और भी सतर्क हो गया। अब वह अपने पिता के बिलकुल ही समीप खिसक आया और अत्यन्त मन्द स्वर में कहने लगा—पिताजी, दादाजी ने यही कहा है और उन्होंने यह भी कहा है कि मैं तेरे पिता के चरणों में भारत के चक्रवर्ती सम्राट् का मुकुट रखा हुआ देख रहा हूँ। मुझे यह भी दिखाई दे रहा है कि वैशाली उसे महत्त्व प्रदान करेगी। वत्स, मेरी ओर से अपने पिता से जाकर कहना कि पाटलीपुत्र ही उनका कार्यक्षेत्र है। भारतवर्ष का केन्द्र वही है। यहाँ साकेत में कुछ भी नहीं धरा है। इसलिए पाटलीपुत्र को ही तुम अपना कार्यक्षेत्र बनाओ। सारा भारतवर्ष तुम्हारा स्वागत करेगा, तुम्हें आदर और मान देगा। पथ में बाधाएँ अनेक हैं, परन्तु तुम व्यग्र मत होना, घबराने से काम बनेगा नहीं, उलटे बिगड़ जायेगा। धीरज और साहस से काम लेना। जल्दबाजी मत करना। एक महान भविष्य तुम्हारे स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछाये हुए है। महाराज, दादाजी के यही अन्तिम शब्द थे।

साहस काचदेव चौंक पड़ा। कोई उसी को सम्बोधित कर रहा था। उसने घबराकर पीछे की ओर देखा। मगध का महामंत्री मंत्रगुप्त वहाँ खड़ा था।

'ओहो, काचदेव ! वत्स, तुम लौट आये ? महाराज साकेतपति तो हमें छोड़कर चले गए ! हमारी ओर से विलम्ब हुआ और कहना चाहिए कि भावी प्रबल है....' आश्वासन देता हुआ-सा वह आगे बढ़ा और उसने प्रेमपूर्वक काचदेव के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया।

'काचदेव, वत्स ! तुम्हारी वेदना को मैं समझ सकता हूँ। महाराज चन्द्रगुप्त के असीम शोक को भी मैं समझता और अनुभव करता हूँ। परन्तु महाराज, कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर हमारा कोई बस नहीं। ज्ञानवान ऐसी बातों का शोक नहीं करते और अज्ञानियों के शोक का कोई अर्थ नहीं होता।.... साकेतपति घटोत्कच महाराज का कोई विशेष सन्देश तो नहीं ?'

काचदेव वातावरण और परिस्थिति के अनुरूप आचरण करना सीख गया था। पहली ही भेंट में उसने मंत्रगुप्त की मधुर वाणी में छिपे हलाहल विष को पहिचान लिया था। उसने तत्परता से कहा—महाराज साकेतपति ने महाराज चन्द्रगुप्त के नाम एक अन्तिम सन्देश भेजा अवश्य है। उन्होंने

कहलवाया है कि पाटलीपुत्र का भविष्य महान है और आपने महाराज मगध-पति का जो विश्वास अर्जित किया है उसे प्राणपण से निबाहते रहें।

'उन महानुभाव से ऐसी ही आशा थी....' मंत्रगुप्त बोला, 'लेकिन वत्स काचदेव, तुम थक गए होगे। कुछ समय यहीं विश्राम करो। तुम्हारी उपस्थिति से महाराज चन्द्रगुप्त भी आश्वस्त होंगे।' फिर उसने चन्द्रगुप्त की ओर मुड़कर कहा, 'महाराज, दैवज्ञदेव की बताई हुई तिथि निकट आ रही है। उस शुभ मुहूर्त में महाराज को गंगा नदी के तट तक शिशु महाराज कल्याण वर्मा को विदा करने के लिए चलना होगा। पूरे ठाठ-बाट के साथ महाबलाधिकृत कुंजरक मगध की सेना लेकर वैशाली की ओर प्रयाण करें, महाराज इस आशय की अनुमति प्रदान करें, जिसमें तदनुसार व्यवस्था की जा सके।'

आह, किसी का कृतक-तनय बनने के बाद एक पुत्र अपने पिता की मृत्यु का शोक भी नहीं पाल सकता! धिक्कार है इस व्यवस्था को! चन्द्रगुप्त के प्राणों में होलियाँ सुलग उठीं। लेकिन यह समय रोष प्रकट करने का नहीं, कूटनीति से काम लेने का था। तिलभट्टक ने उसे वैशाली के महत्त्व के बारे बतलाया था। पिता के अन्तिम सन्देश का आशय भी यही था। पाटलीपुत्र की अपेक्षा वैशाली कहीं महान है। वह जितनी शीघ्रता से शस्त्र ग्रहण करेगी चन्द्रगुप्त को उतने ही शीघ्र अपने अभीष्ट की उपलब्धि होगी। और मंत्रगुप्त यह नहीं चाहता। वह कुंजरक को सेना-सहित इसलिए वैशाली की ओर भेज रहा है, जिसमें लिच्छवी पाटलीपुत्र की ओर बढ़ने न पायें; इस बीच वह प्रवरसेन को यहाँ बुला लेगा और पाटलीपुत्र की रक्षा का भार उसे सौंप दिया जायेगा। उसने वचन दिया है कि वह महाराज सुन्दर वर्मा के पद, प्रतिष्ठा और महत्त्व को अक्षुण्ण रखेगा। प्रवीर प्रवरसेन के यहाँ आ जाने पर वैशाली की कुछ करने की हिम्मत न होगी। चन्द्रगुप्त तो यहाँ रहेगा ही और उसे कारागार में बन्द करना सरल हो जायेगा।

यह थी मंत्रगुप्त की योजना। चन्द्रगुप्त के लिए आवश्यक था कि वह मंत्रगुप्त को भुलावे में रखे और अभी उसके कथनानुसार कार्य करता रहे। इस अभिनय को निबाहते रहने के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त ने कहा—हाँ मंत्रिवर! हमें शीघ्रता करनी चाहिए। वैशाली में इस समय एकता नहीं है। एक पक्ष

राज-प्रथा का समर्थक है। दूसरा पक्ष गणतंत्र को शक्तिशाली बनाना चाहता है। इस अन्तर्विरोध के रहते ही हमें आक्रमण कर देना चाहिए। लेकिन पहले किसी सन्देशवाहक को भेजा जाये।

मंत्रगुप्त विचारमग्न हो गया; फिर बोला—हाँ, सन्देशवाहक तो अवश्य भेजना चाहिए। लेकिन भेजा किसे जाये ?

'किसी चतुर व्यक्ति को ही भेजना ठीक रहेगा। एक तो काम महत्त्वपूर्ण है और दूसरे वैशाली सामान्य प्रदेश नहीं। वहाँ का सन्थागार ही ऐसा है कि साधारण सन्देशवाहक को कोई उत्तर नहीं मिल सकता। वे यही समझेंगे कि साधारण सन्देशवाहक है, साधारण बात होगी, उत्तर देने की आवश्यकता ही क्या !'

'जी हाँ, महाराज का यह कथन तो यथार्थ ही है। परन्तु विशिष्ट सन्देशवाहक को भेजने का अर्थ होगा उन्हें आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना। यह भी उचित नहीं।'

'विशिष्ट सन्देशवाहक के भेजे जाने से उनका महत्त्व तो अवश्य बढ़ेगा, परन्तु वही सन्थागार को अपने वश में करके मगधपति के दृढ़ निश्चय से उन्हें सूचित भी कर सकता है। उसका प्रत्येक शब्द विनम्र परन्तु साथ ही तेजस्वी और दृढ़ भी होना चाहिए। तो आप ही बताइए महामंत्री, वहाँ किसे भेजा जाये ? कुंजरक को तो भेज नहीं सकते, न आप जा सकते हैं और न मैं। अच्छा, कवयित्री विज्जका को भेजना कैसा रहेगा ?'

'अ-हा-हा, यह तो बहुत ही उत्तम विचार है ! विज्जका सभी दृष्टियों से उपयुक्त रहेगी !' मंत्रगुप्त मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा, विज्जका वहाँ चन्द्रगुप्त की निन्दा कर उसे नीचा दिखाने का पूरा प्रयत्न करेगी। हो सकता है कि वह वैशाली के साथ उसके सम्बन्धों का भी विच्छेद कर सके। उसने उल्लसित होकर कहा, 'हाँ प्रभु, यही ठीक है। वहाँ की कर्ता-धर्ता कुमारदेवी हैं, इसलिए भी विज्जका का जाना उचित होगा। वहाँ का महामात्य हरिषेण कवि है और विज्जका भी कवयित्री है। और

देवगिरा संस्कृत पर विज्जका का अधिकार तो सर्वविदित है ही। तो उसी को भेजा जाये।'

थोड़ी देर के बाद मंत्रगुप्त आज्ञा लेकर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। परन्तु जाते-जाते वह ठिठक गया और मुड़कर बोला—महाराज, काचदेव को भी एक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा जाना चाहिए।

'कौन-सा ?'

'महाराज मगधपति प्रवीर प्रवरसेन को एक सन्देश भेजना चाहते हैं।'

'क्या ?'

'जिस प्रकार महाबलाधिकृत कुंजरक को वैशाली भेजकर हम लिच्छवियों से स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि पाटलीपुत्र के बाद वैशाली ही मगध का दूसरा महान नगर है, और इसलिए युवराजपदीय कुमारामात्य कल्याण वर्मा वहाँ जा रहे हैं, उसी प्रकार अब हमें प्रवरसेन से भी यह कह देना चाहिए कि अभी तक आप इस ओर सेनाएँ भेजते रहे, कुशान यवनों को यहाँ से निष्कासित करने में आपने अत्यधिक सहायता प्रदान की, परन्तु अब आप कृपा करके अपनी ही दिशाओं को सँभालिए; आपके लिए विन्ध्याचल की छाया और उसका सहारा ही ठीक है। इस ओर के स्वामी—गान्धार से नर्मदा-तट तक के प्रदेश के अधिपति—महाराज मगधेश्वर ही हैं और वही बने रहेंगे।'

चन्द्रगुप्त महामात्य के वक्तव्य को सुनता रहा, परन्तु वह उससे सहमत नहीं हो सका। वह समझ गया कि इस प्रकार मंत्रगुप्त प्रवरसेन को वैशाली के यहाँ पहुँचने से पहले ही बुला लेना चाहता है।

उसने कहा—महामंत्री, यह सन्देश तो हमें भेजना ही होगा। यदि नहीं भेजेंगे तो प्रवरसेन एक दिन यहाँ आ धमकेगा। लेकिन पहले वैशाली का निपटारा तो हो जाये। उसके बाद काचदेव को तुरत सन्देश लेकर भेजा जायेगा। इस बीच उसका मन भी स्थिर हो जायेगा।

मंत्रगुप्त ने झुककर प्रणाम किया और विदा हो गया।

१०. वैशाली सन्थागार

वैशाली सन्थागार का भूतकाल में बड़ा महत्त्व था। यह महत्त्व और गौरव वर्षों की परम्परा और परिश्रम से स्थापित हुआ था। आज भी यह गौरव चला आता था, यद्यपि अब उसमें गणतंत्र की वह तेजस्विता नहीं रह गई थी। लेकिन लोग अब भी उसे आदर की दृष्टि से देखते थे। वैशाली का सन्थागार अब भी अतुलनीय था। वह गणतंत्र का महान धाम समझा जाता था। साकेत, विदेह, कौशाम्बी आदि सभी उसका अनुसरण करते थे। वहाँ सन्देशवाहक बनकर जाना हर किसी के बूते की बात नहीं थी। सन्देश भेजनेवाला महान सम्राट् अथवा शक्तिशाली सेनापति—कोई भी क्यों न हो, उसे वैशाली के गौरव के अनुरूप ही सन्देशा भेजना होता था। गणतंत्र की प्रतिष्ठा का उसे ध्यान रखना पड़ता था। यदि गणतंत्र की प्रतिष्ठा का ध्यान न रखा जाता, उसकी मर्यादा को तनिक-सी भी ठेस पहुँचाई जाती तो लिच्छवी-गण उसकी आफत कर देता था, फिर वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो।

लिच्छवी-गण द्वारा स्थापित यह परम्परा अब भी वैशाली में जीवित थी। बलाधिकृत कुंजरक को इस बात की जानकारी थी। परन्तु जहाँ तक स्वयं उसकी कार्यनीति का प्रश्न था, वह बहुत ही स्पष्ट थी। उसका काम था वैशाली को चुनौती देना; युद्ध के लिए लिच्छवी-गण का आह्वान करना। इसलिए जब वह पाटलीपुत्र से चला तो .उसके साथ शक्तिशाली विशाल सेना थी। सैकड़ों नौकाएँ गंगा के पानी में उतार दी गईं। कुंजरक के साथ मगध की महारानी भी थीं। युवराजपदीय शिशु कल्याण वर्मा भी था। कवयित्री विज्जका थी। सेनानायक थे। ये सब वैशाली को मगध-साम्राज्य के दूसरे बड़े नगर के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए जा रहे थे। युवराज-पदीय कुमारामात्य अब वहीं—वैशाली में ही रहने को था। इसके आशय में किसी प्रकार के भ्रम अथवा भ्रान्ति की गुंजाइश नहीं छोड़ी गई थी। स्पष्ट अर्थ यह था कि वैशाली का प्रदेशपति मगधपति का आश्रित बन-कर रहेगा; स्वतंत्र गणतंत्र का अन्त कर दिया जायेगा। अभिनव राजतंत्र

के लिए वैशाली में कोई स्थान नहीं था। वैशाली की ओर से इस बात का विरोध किया जाये उसके पहले ही बलाधिकृत कुंजरक गंगा के उस पार उतर जाना चाहता था।

भूतकाल में, मगध राज्य के युवराज के लिए तक्षशिला में रहना निश्चित किया गया था। महाराज अशोक और मगध के दूसरे बहुत-से राजा अपने युवा-काल में वहाँ रहे थे। अब वही स्थान वैशाली को दिया जा रहा था। तक्ष-शिला को तो वह स्थान दिया नहीं जा सकता था, क्योंकि कुशान शासकों ने मगध महाराज्य की जड़ें हिला दी थीं और तक्षशिला पर मगध का कोई अधि-कार रह नहीं गया था।

वैसे भी मगध का केवल नाम-ही-नाम रहा था। लेकिन नाम का भी इतना आकर्षण था कि सभी विजेता सब से पहले पाटलीपुत्र पर अधिकार जमाने के लिए दौड़ते थे। जो भी भारतेश्वर बनना चाहता वह मगधेश्वर बनने और पाटलीपुत्र को जीतने के स्वप्न देखने लगता था। मगध-साम्राज्य के टूट जाने और हीन दशा को प्राप्त हो जाने पर भी भारत का कोई नगर अभी तक पाटलीपुत्र का स्थान ग्रहण नहीं कर सका था, न उसकी तुलना में ठहर ही सकता था।

बलाधिकृत कुंजरक की नौकाओं को देखने के लिए गंगा के उस पार वैशाली के शत-सहस्र नागरिकों के ठठ्ठ-के-ठठ्ठ आ जमा हुए थे। लेकिन किसी ने उसका विरोध नहीं किया, कोई एक शब्द भी नहीं बोला। या तो सामना नहीं करना चाहते थे या फिर उन्होंने पाटलीपुत्र के निर्णय को स्वीकार कर लिया था। पता नहीं कारण क्या था, परन्तु सब-के-सब मौन थे; और उनका मौन किस बात का द्योतक है यह कोई जान नहीं सकता था।

सेनापति कुंजरक गंगा पार करके किनारे पर उतरा। वह ऊँचा, पूरा, शक्तिशाली और गौरवर्ण का पुरुष था। उसके नेत्रों में गरुड़ का नुकीला-पन था। उसके किंचित् वक्र ओठ उसकी दृढ़ता, हठीलेपन और अपनी बात पर डटे रहने के सूचक थे।

गंगा-पार किनारे पर उतरते ही उसने आदेश दिया और सैकड़ों लोग एक साथ सैनिकों के शिविर खड़े करने में लग गए।

कुंजरक का विचार था कि पहले सैनिकों के शिविर खड़े हो जायें, वह अपनी सुरक्षा का सारा प्रबन्ध सुचारु रूप से कर ले, अपने चारों ओर एक अभेद्य दुर्ग का निर्माण हो जाये, उसके बाद ही कवयित्री विज्जका को सन्देश लेकर भेजा जाये। वैशाली युवराजपदीय कुमारामात्य का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत हो जाये तभी वह आगे बढ़ना चाहता था।

परन्तु उसे मन में बड़ी चिन्ता भी थी। पता नहीं, वैशाली क्या उत्तर दे? उसके मन में तरह-तरह की शंकाएँ उठ रही थीं। यदि वैशाली का उत्तर अनुकूल न हुआ तो उसके लिए क्या करना उचित होगा? और यदि अनुकूल हुआ तो क्या करना उचित होगा? युद्ध तो उसे दोनो ही स्थितियों में करना पड़ेगा।

और इस सम्बन्ध में मंत्रगुप्त की राजनीति बिलकुल ही स्पष्ट थी।

वैशाली को मगध का गौरव स्वीकार करना चाहिए; बिना किसी असमंजस और विलम्ब के तत्काल स्वीकार कर लेना चाहिए। वैशाली और चन्द्रगुप्त के बनते हुए सम्बन्धों को वह इसी प्रकार समाप्त कर सकता था और करना चाहता था। यदि वैशाली ने युद्ध का मार्ग अपनाया तो मंत्रगुप्त ने उसकी भी तैयारी कर रखी थी।

उसने प्रवरसेन को निमंत्रण भेज दिया था। काचदेव को प्रवरसेन के पास भेजने की बात तो निरी धमकी थी। इसका उल्लेख उसने चन्द्रगुप्त को भ्रम में रखने और डराने के ही उद्देश्य से किया था। वैसे वह अपना एक विशेष सन्देशवाहक प्रवरसेन के पास पहले ही भेज चुका था। प्रवरसेन भी एक शक्तिशाली सेना लेकर पाटलीपुत्र आने की तैयारियाँ कर रहा था। केवल वैशाली के युद्ध-घोषणा करने की देर थी; इतने में तो प्रवरसेन पाटलीपुत्र पहुँच भी जाता।

जैसे ही प्रवरसेन पाटलीपुत्र पहुँचता चन्द्रगुप्त को बन्दीगृह में डाल दिया जाता। इसमें एक क्षण की भी देर न की जाती। यह मंत्रगुप्त की कार्यनीति के लिए नितान्त आवश्यक था। यदि चन्द्रगुप्त को मुक्त रखा जाता तो वैशाली कह सकती थी कि उसे उसका न्यायोचित अधिकार दिलाने के ही लिए हमने आक्रमण किया है। बन्दी चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में, तत्का-

लीन राजनीति के अनुसार ऐसी कोई बात कही नहीं जा सकती थी। इस प्रकार दूसरे गणतंत्रों को भी वैशाली के सहायतार्थ आने से रोका जा सकता था।

चन्द्रगुप्त को बन्दी बनाकर यह प्रचार भी किया जा सकता था कि वह वैशाली की सहायता से मगध और पाटलीपुत्र के महत्त्व को गिराना और मगध राज्य की मर्यादा को भंग करना चाहता था; इसी लिए तो महाराज मगधपति को उसे कारागार में डालना पड़ा।

इस प्रचार के द्वारा चन्द्रगुप्त के समर्थक जितने भी नागरिक, सैनिक और परिषद् के सदस्य थे उन्हें निरस्त और विमुख किया जा सकता था। कवयित्री विज्जका के कौमुदी-महोत्सव में चन्द्रगुप्त को नापित नन्द की भाँति हीनकुलोत्पन्न सिद्ध करके सदा के लिए समाप्त कर दिया जाता—फिर वह कहीं का न रहता, किसी को अपना लज्जावनत मुँह ही न दिखा पाता।

इस प्रकार युद्ध के बिना ही चन्द्रगुप्त-रूपी काँटे को निकाल फेंकने की मंत्रगुप्त की योजना थी। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए सेनापति कुंजरक पूरे ठाठ-बाट के साथ गंगा उतरकर इस पार आया था।

कुंजरक ने लगभग एक सप्ताह में अपना शिविर सुनियोजित कर लिया। अब कोई सहसा आक्रमण करके उसे तहस-नहस नहीं कर सकता था।

इसके बाद एक दिन उसने कवयित्री विज्जका को बुलाया। वैशाली सन्देश भेजने का समय हो गया था।

कवयित्री विज्जका के दिल में एक आग थी। कुंजरक इस बात को जानता था। विज्जका को किसी भी शर्त पर यह स्वीकार नहीं था कि चन्द्रगुप्त मगध का अधिपति बने। वह जानती थी कि चन्द्रगुप्त केवल वैशाली की सहायता से ही मगधपति बन सकता है, दूसरे किसी भी तरह नहीं। और यदि ऐसा हुआ तो कुमारदेवी पाटलीपुत्र आयेगी, महामंत्री हरिषेण आयेगा, तिलभट्टक भी आयेगा; और पाटलीपुत्र में एक नयी हवा ही चल पड़ेगी। तब हरिषेण नयी विद्वद् सभा संगठित करेगा और अपने साथ नये विद्वान् और कवि लायेगा, क्योंकि वह संस्कृति, श्री, सरस्वती और शौर्य का समान रूप से उपासक था।

और विद्वानों की उस मंडली में विज्जका अपना कोई स्थान नहीं पाती थी। नयी विद्वद् सभा में उसका कवयित्री-पद अवश्य समाप्त हो जाता। अभी तो वह मगध की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री थी और लोगों को अपनी अँगुलियों पर नचाती थी। वह चन्द्रगुप्त के बारे में प्रहसन लिखती, जिन्हें देखकर लोग हँसते-हँसते दोहरे हो जाते थे। वह नन्दों के विनाश के सम्बन्ध में भी नाटक लिखती थी। उसने चन्द्रगुप्त को नन्द ही बना डाला था। अपने सभी नाटकों और प्रहसनों में उसने चन्द्रगुप्त को हीनकुलोत्पन्न, हीन विचारों और हीन आचरणों का व्यक्ति चित्रित किया था। लोग उसे सरस्वती का अवतार कहते और वह स्वयं भी अपने-आपको सरस्वती मानती थी। उसके दम्भ और अहम्मन्यता की कोई सीमा नहीं थी। कुंजरक कवयित्री के स्वभाव की इस विशेषता से परिचित था। उसकी अद्भुत कवित्व-शक्ति का ज्ञान भी उसे था।

उसे यहाँ दो काम करने थे। एक तो यह कि वैशाली न अपने को गण-तंत्र समझे, न राजतंत्र; केवल मगधपति के अधीन मगध का आश्रित समझे और मगध के युवराज का अपने यहाँ प्रदेशपति के रूप में रहना स्वीकार कर ले।

दूसरा यह कि चन्द्रगुप्त का वैशाली के प्रति जो आकर्षण है वह नष्ट हो जाये और दोनो के पारस्परिक सम्बन्ध की समाप्ति हो।

अभी तो उसे ये दो ही काम करने थे और उसके बाद यह देखना था कि वैशाली में कोई विद्रोह न हो और कोई मगध की सत्ता को चुनौती न दे। और यदि चन्द्रगुप्त पाटलीपुत्र से भागे तो उसे वैशाली में आश्रय न मिल सके।

मगध में सबकी यही मान्यता थी कि चन्द्रगुप्त को देर-अबेर पाटलीपुत्र छोड़कर भागना होगा। और उसे भागने न दिया जाये, यह मंत्रगुप्त की राजनीति थी।

एक बार प्रवरसेन इस ओर आ जाये, फिर तो ये सब राजाओं के भी राजा थे।

पाटलीपुत्र से प्रवरसेन को उखाड़ने की शक्ति किसी में न थी: उसकी

सेना का सामना करने की सामर्थ्य भी किसी की न थी। और स्वयं प्रवरसेन का भी अपना एक उद्देश्य था। उसके मृतक पुत्र गौतमीपुत्र का बेटा रुद्र-सेन अभी बच्चा ही था। सुन्दर वर्मा का पुत्र कल्याण वर्मा भी शिशु ही था। यदि दोनों शिशुओं का लालन-पालन साथ-साथ होने लगे तो वह उनका संरक्षक बनकर पाटलीपुत्र की रक्षा का भार उठा सकता था। पाटलीपुत्र का अधिपति बनकर ही वह भारतवर्ष से शक, गान्धार और पार्शव सेनाओं तथा कुशान यवनों को निष्कासित कर सकता था, जो कि उसका जीवनोद्देश्य था। यदि गौतमीपुत्र जीवित रहता तो उसे यह कार्य सौंपकर वृद्ध प्रवरसेन निश्चिन्त हो जाता। अब स्वयं उसे ही यह भार वहन करना पड़ रहा था। चार-चार अश्वमेध-यज्ञ उसने किये थे। ठेठ मथुरा तक उसने वाकाटकों की सत्ता स्थापित की थी। अब वह भारतवर्ष को एकता के सूत्र में आबद्ध करना चाहता था और यह कार्य पाटलीपुत्र पर अधिकार करके ही किया जा सकता था।

लेकिन वह वृद्ध हो गया था। उसके दूसरे पुत्रों में कोई गौतमीपुत्र-जैसा तेजस्वी और शक्तिशाली नहीं था। रुद्रसेन अभी बच्चा था और वह चाहता था कि अभी से शिशु रुद्रसेन को मगध के लोकमानस में राज्य के होनहार उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित कर दे, लोग उसे आदर और स्नेह की दृष्टि से देखने लगें।

इसी लिए वह कल्याण वर्मा का संरक्षक बनकर पाटलीपुत्र आना चाहता था। लेकिन पाटलीपुत्र का राजा सुन्दर वर्मा बूढ़ा हो गया था। अब-तब का वह मेहमान था। ऐसे बूढ़े को सताने का एक तो कोई अर्थ नहीं था और दूसरे, लोगों के मन पर उसकी प्रतिक्रिया भी बड़ी विपरीत होती। शिशु कल्याण वर्मा का राज्य छीनना भी उसके-जैसे प्रवीर के लिए उचित न होता। यह सब सोचकर उसने मगधपति को अभय वचन दिया था कि पाटली-पुत्र आपका ही रहेगा, आप ही मगधपति बने रहेंगे, भारतेश्वर भी आप ही माने जायेंगे; मैं तो केवल शिशु कल्याण वर्मा का संरक्षक बनकर रहूँगा।

इस राजनीतिक पृष्ठभूमि में कुंजरक का काम था वैशाली को अपने वश में करना और जहाँ तक सम्भव हो, बिना युद्ध के ही इस कार्य को करना।

जैसे ही कवयित्री के आने की अनुचर ने घोषणा की कुंजरक ने उसे तत्काल बुला भेजा। कवयित्री ने वहाँ प्रवेश किया। उसका सहज श्यामवर्ण उसके सुकोमल रूप को एक अनोखी छटा प्रदान कर रहा था। उसका अहंकार रोम-रोम में से फूटा पड़ता था और उसकी प्रखर शक्ति की घोषणा करता था।

'विज्जकादेवी,' कुंजरक ने कहा, 'आज आपको वैशाली में प्रवेश करना है। वैशाली के सन्थागार को महाराज मगधपति का सन्देश पहुँचाना है। यह तो आप जानती ही होंगी कि अभी सन्थागार ही वैशाली की सर्वोच्च संस्था है।'

'सन्देश क्या है?' विज्जका ने गर्व-भरी वाणी में पूछा, 'मुझे सन्देश पहुँचाना है, यह तो जानती हूँ, परन्तु सन्देश जान लूँ तो और भी अच्छा!'

'सन्देश बिलकुल संक्षिप्त ही है। आप सावधान होकर सुनिए : महाराज मगधपति ने वैशाली को युवराज-प्रदेश निर्धारित किया है। युवराज कल्याण वर्मा यहाँ आये हैं। महारानी मदिरावती साथ हैं। बलाधिकृत कुंजरक भी आये हुए हैं। वैशाली उनके स्वागत की घोषणा करे। नगरजन उनके स्वागत-सत्कार का समुचित प्रबन्ध करें। बस, सन्देश इतना ही है।'

'सन्देश पहुँचाने के बाद भी मुझे क्या कुछ करना होगा?'

'नहीं, अभी तो कुछ नहीं करना होगा। आप केवल इनता देखें कि इस सन्देश की वहाँ के नागरिकों पर क्या प्रतिक्रिया होती है! वैशाली की प्रतिक्रिया को जानने के बाद ही दूसरा कदम उठाया जायेगा!'

विज्जका ने कुंजरक के हाथ से स्वर्ण-नलिका ले ली। महाराज मगधपति का सन्देश इसी में रखा था। सन्देश लेकर वह तत्काल बाहर चली आई।

वैशाली के नागरिकों की रसिकता और रंगों के प्रेम के बारे में वह जानती थी। तदनुरूप ही उसने अपनी तैयारियाँ कीं। विज्जका का रथ श्वेत था। वैशाली की परम्परा के अनुसार रथ के समस्त अंग-उपांग भी श्वेत थे। रथ के वाहक अश्व श्वेत थे। अश्वों की वल्गाएँ श्वेत थीं। सारथी के वस्त्र श्वेत थे। रथ का छत्र श्वेत था। स्वयं कवयित्री ने भी चन्द्र कौमुदी-जैसे श्वेत

दुकुल वस्त्रों को धारण किया था। यह सब इस बात का सूचक था कि वह जो सन्देश ला रही है वह मैत्रीपूर्ण है।

वैशाली के दुर्ग के समीप आकर विज्जका का रथ रुक गया।

द्वारपाल ने नगर में प्रवेश करने की मुद्रा माँगी। विज्जका ने मगधपति की राजमुद्रा दिखाई। द्वारपाल ने तत्काल मार्ग दे दिया। विज्जका का रथ आगे बढ़ा।

वैशाली नगर की शोभा को देखती हुई वह सन्थागार की दिशा में बढ़ती चली गई। कुंजरक ने पहले ही खबर करवा दी थी कि विज्जका आ रही है इसलिए सन्थागार में नगरजन पहुँच गए थे।

सन्थागार के समीप आकर वह रुक गई। रथ को उसने पीछे ही छोड़ दिया। उसे देखने के लिए वहाँ नागरिक आ जुटे थे।

उसे सन्थागार में जाने देने के लिए लोगों ने इधर-उधर हटकर एक पगडण्डी-सी बना दी। लोगों ने उसका अभिवादन किया। लेकिन सभी बिलकुल मौन थे। न कोई कुछ बोल रहा था, न कोई किसी प्रकार की ध्वनि या उद्गार ही प्रकट करता था। यह देखकर विज्जका का विस्मित होना स्वाभाविक ही था।

दोनो ओर खड़े लोगों का अभिवादन करतो हुई वह आगे बढ़ी। सन्थागार में पहुँचकर उसने देखा कि वहाँ सैकड़ों नागरिक, श्रेष्ठी, सार्थवाह, अधिकारी आदि जमा हैं। उसके आगमन की सूचना तो पहले ही पहुँच गई थी और इसी लिए सन्थागार में इतनी भीड़ थी।

वह सन्थागार के रंगमंच के सामने आकर खड़ी हो गई। सन्थागार का विज्ञापक तुरत दो कदम आगे बढ़ आया और हाथ जोड़कर बोला—देवी, पधारिए। यहाँ ऊपर आकर आसन ग्रहण कीजिए। महामंत्री हरिषेण बस आ ही रहे हैं। आप आ रही हैं, यह सूचना हमें मिल गई थी; हमने इस आशय की घोषणा करवा दी थी। वैशाली के श्रेष्ठी, नगरजन, सार्थवाहपति, उपराजा, अष्टकुलिक आदि सभी यहाँ एकत्रित हैं और आपका स्वागत करते हैं। आप मंच पर आकर आसन ग्रहण कीजिए।

विज्जका रंगमंच पर आई और एक क्षण रुककर उसने सन्थागार में

उपस्थित जन-समुदाय की ओर देखा। लोग इस तरह शान्त और चुप बैठे थे कि यदि सुई भी गिरती तो उसकी आवाज सुनाई दे जाती। वैशाली की आश्चर्यजनक विशेषताओं के बारे में उसने बहुत-कुछ सुन रखा था। इस समय की शान्ति और चुप्पी को देखकर उसे विश्वास हो गया कि यदि इस नगर ने प्रतिरोध किया तो पाँच-सात वर्ष नहीं सौ-सवा सौ वर्षों तक युद्ध चलता रहेगा। वैशाली के लिए वह मगधपति का जो सन्देश लेकर आई थी वह लिच्छवियों के मनोनुकूल तो नहीं ही था; और उनकी यह शान्ति वैशाली की अपार शक्ति की सूचक थी।

विज्जका ने दोनो हाथ जोड़कर और सिर नवाकर सन्थागार को प्रणाम किया।

उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि मंत्रगुप्त को जैसे भी बने इस नगर को जीत लेना चाहिए। ऐसा करके ही चन्द्रगुप्त को जड़-मूल से विध्वस्त किया जा सकता है। यदि वैशाली और चन्द्रगुप्त एक हो गए तो न रहेगा कल्याण वर्मा और न रहने पायेगा सुन्दर वर्मा। तब प्रवरसेन भी न रहेगा। रहेगा केवल गुप्तों का बोलबाला।

यह सारी प्रतिस्पर्द्धा भारतीय साम्राज्य की स्थापना को लेकर थी। उसका केन्द्र था यह नगर, पाटलीपुत्र नहीं।

जैसे ही उसने अपना आसन ग्रहण किया सूत्रधार वक्ता के स्थान पर आया और उसका गम्भीर उच्च स्वर सन्थागार के कोने-कोने में गूँज उठा :

'भन्ते नागरिक मुझे सुनें। अष्टकुलिक, राजा, उपराजा, नायक सभी यहाँ सभामंच पर हैं। वे सब भी मुझे सुनें। महाराज मगधेश्वर का सन्देश लेकर कवयित्री विज्जकादेवी यहाँ आई हैं। सन्देश क्या है यह तो हम नहीं जानते। परन्तु मगधपति हमारे मित्र हैं; सन्देश पारस्परिक मैत्री को दृढ़ करनेवाला ही होगा। फिर भी मुझे जो कहना है उसे अधिक स्पष्ट रूप में कहनेवाले महामंत्री चले आ रहे हैं। नगरजन उन्हीं के वक्तव्य को सुनें....'

सन्थागार में बैठे सभी व्यक्तियों की दृष्टि सन्थागार के बहिर् प्रवेश-द्वार की ओर उठ गई।

महामंत्री हरिषेण द्वार में प्रवेशकर इसी ओर चला आ रहा था।

११. महामंत्री हरिषेण

कवयित्री विज्जकादेवी ने भी सन्थागार के प्रवेश-द्वार की ओर देखा; और उसकी दृष्टि वहीं स्थिर होकर रह गई। एक अत्यन्त सुन्दर, सुशोभन, तेजस्वी युवक वहाँ प्रवेश कर रहा था। वह समझ गई कि महामंत्री हरिषेण यही होना चाहिए। उसके लम्बे, सुन्दर, काले, सुकोमल केश कन्धे पर लहराते हुए पीठ तक छितराये हुए थे। वह अपनी ही मनोरम कल्पनाओं में खोया-खोया-सा लग रहा था।

शरीर उसका ऊँचा, पूरा, भरा हुआ, सुगठित और शक्तिशाली था। उसे देखते ही लगता था मानो वैदिक काल का कोई आर्य पुनः शरीर धारण करके सामने आ खड़ा हुआ हो। उसके नेत्र बड़े तेजस्वी और उनका आलोक किसी अगम्य रहस्य से परिपूर्ण था। ऐसा लगता था मानो हर समय वह स्वप्न देखने में लीन हो और उसका मानस नित-नूतन स्वप्नों की सृष्टि कर रहा हो। उत्साह और वेग की उसमें कोई कमी नहीं थी। उसका रोम-रोम आन्तरिक उल्लास से भरा और प्रफुल्लित मालूम पड़ता था। स्वप्न, संस्कृति, जीवन और सामर्थ्य से वह भरा-पूरा था और इन चारों को वह प्रजा-जीवन के महान स्तम्भ मानता था। इनमें से एक की भी न्यूनता हुई तो प्रजा पंगु हो जाती है, ऐसा उसका दृढ़ विश्वास था। हरिषेण का यह विश्वास उसके छोटे-से-छोटे कार्य में भी परिलक्षित होता था।

उस विशाल मानव-समुदाय में उसका व्यक्तित्व सबसे अलग ही दिखाई पड़ रहा था।

वह अपने रथ में से उतरा। उसने एक बार सन्थागार की ओर देखा। तब वह आगे बढ़ा।

कवयित्री के नेत्र अभी तक उसी की ओर लगे हुए थे। वह उसके रूप-रंग को देख रही थी। लेकिन रूप-रंग से परे भी उसमें कुछ था, जिसे वह समझ नहीं पा रही थी। रूप था, रंग था, आकर्षण था, माधुर्य था, हृदय-हारिणी मनोरमता थी। यह सब था और इससे विशेष कुछ ऐसा भी था जो समझ में नहीं आता था। देखते ही लगता था जैसे इस युवक में एक प्रकार

की क्रियात्मक सांस्कृतिक स्वप्नशीलता कूट-कूटकर भरी हुई हो।

वह स्वप्नशीलता विरल थी और स्वप्नशीलता होते हुए भी निरी वायव्य नहीं, ठोस पदार्थ की भाँति घन प्रतीत होती थी। यह भी दिखाई देता था कि उस स्वप्नशीलता को अतुलित पराक्रम से मूर्तित और पूर्ण करने की दृढ़ता और उत्साह भी उसमें प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। पहली दृष्टि में उसका चेहरा कल्पनाशील कवि की भाँति मधुर लगता था, दूसरे ही क्षण वह चेहरा वज्रवत् कठोर और दृढ़ निश्चय से भरा हुआ लगने लगता था। देखनेवाले को विश्वास हो जाता कि सुगठित शरीरवाले इस युवक की देह में मधुर कल्पनाओं में खोये हुए कवि और शक्तिशाली रणनिपुण सेनानी एक साथ निवास करते हैं।

वह दृढ़ कदमों से धीरे-धीरे सन्थागार के सभा-मंच की ओर बढ़ा। उसके प्रत्येक कदम में एक मधुर गति और लय थी।

उसे आता देख सन्थागार का प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर उठकर खड़ा हो गया। यह इस बात का सूचक था कि सारा लिच्छवी-गण उसका आदर करता है। मान-प्रदर्शन के लिए लोगों के खड़े होने में औपचारिक यांत्रिकता नहीं थी, एक प्रकार की हार्दिक आत्मीयता परिलक्षित होती थी। सब हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वह दोनो हाथ जोड़े सब को सिर झुकाता सब का अभिवादन स्वीकार करता हुआ आगे बढ़ा।

अन्त में वह सभा-मंच के ऊपर आया। कवयित्री विज्जका भी उसे नमस्कार करने के लिए सबके साथ उठकर खड़ी हो गई।

जैसे ही उसने आसन ग्रहण किया सब लोग बैठ गए और सन्थागार में पूर्ववत शान्ति छा गई।

कवयित्री का लाया हुआ सन्देश जानने के लिए सभी उत्सुक थे, इसलिए विज्जका उठी और महामंत्री को प्रणाम कर उसने मगधपति के सन्देशवाली स्वर्ण-नलिका उसके हाथों में थमा दी।

महामंत्री ने स्वर्ण-नलिका के अन्दर से सन्देश निकाला और पढ़ने लगा। सब लोगों की उत्सुक दृष्टि उस पर केन्द्रित हो गई।

सन्देश को पढ़ते हुए ही हरिषेण ने पूछा—आज किससे भेंट करने का

महान सौभाग्य मुझे उपलब्ध हुआ है ? किसके परिचय से मैं अपने को धन्य समझूँ ?

हरिषेण के मधुर रमणीक शब्दों ने वातावरण को निनादित कर दिया। संस्कृत की मधुरिमा चारों ओर विकीर्ण हो गई। लेकिन साथ ही वह माधुर्य वज्रोपम दृढ़ता का सूचक भी था। इतने से ही वज्जिका को वैशाली की राजनीति की एक झलक देखने को मिल गई।

जिस प्रकार प्रश्न पूछा गया था उसी प्रकार उसका उत्तर देने का विज्जका ने निश्चय किया। दोनों हाथ जोड़कर वह बोली—महामंत्री मुझे इस रूप में पहचानें तो मैं भी अपने को धन्य मानूँगी :

'इन्दीवरदलश्यामां विज्जकां माम जानाता।
वृथैव कविना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥'

(श्याम कमल-जैसी मुझ विज्जका को जाने बिना ही महाकवि दंडी ने व्यर्थ ही कह दिया है कि सरस्वती देवी शुभ्र और धवल हैं। तात्पर्य यह कि मैं सरस्वती के समान ही शक्तिशालिनी, परन्तु श्यामवर्णा की हूँ।)

'ओ हो! तब तो मगध देश की कवयित्री विज्जकादेवी के सान्निध्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो रहा है। देवी, आपका लाया हुआ यह सन्देश मनोरम है। इसमें जो बात कही गई है वह भी सुन्दर है। और शब्द-योजना तो इसकी अतीव सुन्दर है। मगधपति के शिशु का यहाँ स्वागत करते हुए किसे प्रसन्नता न होगी? परन्तु इस समय यह नगर अपनी वर्षों पुरानी परम्परा और प्रणाली का भाग्य-निर्णय करने में व्यस्त है। हमरे समक्ष इस समय मुख्य प्रश्न यह है कि पुरातन प्रणाली को बदला जाये या नहीं। इसी पर विचारों का मन्थन हो रहा है। अन्तिम परिणाम क्या होगा, इसे यहाँ कोई नहीं जानता। न मैं जानता हूँ और न अष्टकुलिकों में से ही कोई जानता है। किसी राजा, उपराजा अथवा नायक के विचारों में अभी तक इसका कोई स्पष्ट उत्तर रूपायित नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में आपके सन्देश का मैं प्रत्युत्तर दूँ तो वह प्रत्युत्तर न होगा; और प्रत्युत्तर न दूँ तो वह घोर अविनय होगा!'

मधुर शब्दों में दिया हुआ हरिषेण का यह उत्तर इतने दृढ़ मनोबल का सूचक था कि एक क्षण तो विज्जका को यही लगा कि उसे उत्तर मिल गया।

वैशाली युद्ध का ही स्वागत करेगी। युवराज का वह कभी स्वागत नहीं करेगी। उसके मन में उदित यह विचार वातावरण को उग्र करनेवाला था। लेकिन जब उसने हरिषेण के चेहरे की ओर देखा तो उसे अपने स्वभाव की लघुता स्पष्ट समझ में आ गई। महामंत्री हरिषेण के चेहरे पर उग्रता का लेश भी न था। प्रशान्त महासागर की शान्ति वहाँ छायी हुई थी। शान्त होते हुए भी वह निर्णय दृढ़ता से भरा हुआ था। उसे महामात्य की शान्त शक्ति का विश्वास हो गया। वह बोले बिना चुपचाप खड़ी रही।

उसने हरिषेण के गम्भीर और शान्तिपूर्ण परन्तु स्पष्ट और उग्र स्वर को गूँजते हुए सुना। अब वह सन्थागार को सम्बोधित कर रहा था।

'सन्थागार के सदस्य मुझे सुनें। महाराज मगधेश्वर का सन्देश आया है। सन्देश अत्यन्त स्पष्ट है। स्पष्ट सन्देश वीरता के सूचक होते हैं। महाराज ने कवयित्री के हाथ सन्देश भेजा है। मगध के युवराज का निवासस्थान अब से वैशाली होगा। तक्षशिला दूर है। दोनो ही दृष्टियों से दूर है। स्थान की दृष्टि से दूर है और शासन की दृष्टि से भी। इस समय वहाँ कुशानों का शासन है। यह वही स्थान है जहाँ महामात्य चाणक्य ने एक अखंड भारत का ध्वज आरोपित किया था। यह वही स्थान है जहाँ से भारतीय संस्कृति विश्वव्यापिनी हुई। यह वही स्थान है जहाँ श्री और सरस्वती एक साथ निवास करती थीं। पाटलीपुत्र के पश्चात् इसी नगर की गणना होती थी। मगध के युवराज वहाँ रहते थे। लेकिन आज वह मगधपति के लिए दूर है। वह मानते हैं कि वैशाली उनके निकट है। वैशाली निकट है या दूर, यह तो हम कहेंगे। परन्तु कवयित्री को मैंने जो कहा उसे तो आपने सुना ही होगा। मैंने कहा कि इसका प्रत्युत्तर मैं दे नहीं सकती, अष्टकुलिक भी दे नहीं सकते। राजा, उपराजा अथवा नायकों में से भी कोई दे नहीं सकता। इसका उत्तर केवल वैशाली नगरी दे सकती है—कुमारदेवी स्वयं दे सकती हैं। मेरा यह कथन यदि समुचित हो तो सन्थागार एक घोषणा के द्वारा इसका अनुमोदन करे....'

वैशाली सन्थागार में, वर्षों बाद पहली ही बार एक अभिनव घोषणा सुनाई दी :

'परमभागवतों की जय हो! महामंत्री हरिषेण की जय हो!'

इस घोषणा को सुनते ही विज्जका जैसे सोते से जाग पड़ी। उसे अत्य-धिक विस्मय हुआ। उसे विश्वास हो गया कि वैशाली का वातावरण पूरी तरह बदल गया है। इस व्यक्ति ने उसे बदल डाला है। अब वैशाली को लेकर मगधपति को अवश्य लोहे के चने चबाने होंगे।

अनुमोदन की विजय-ध्वनि समाप्त होते ही हरिषेण कवयित्री विज्जका की ओर मुड़ा और बोला—देवी, आप यहाँ कुछ समय ठहरिए। आपके लाये हुए सन्देश का प्रत्युत्तर वैशाली देगी। वही सच्चा प्रत्युत्तर होगा। थोड़े ही समय में, अष्टकुलिक, राजा, उपराजा, नायक, श्रेष्ठी, सार्थवाहपति आदि मिलकर इस नगर के एक नये रूप का निर्माण करेंगे। प्रत्युत्तर आप-को शीघ्र दिया जायेगा। लेकिन कुछ समय प्रतीक्षा अवश्य करनी होगी। आप यहाँ रुकिए। आप हमारी अतिथि हैं। हम आपका स्वागत करते हैं और अपना आतिथ्य ग्रहण करने का निवेदन भी....

विज्जका वहाँ रहना चाहती थी। रहकर वह वैशाली के वातावरण और रीति-नीति से परिचित होना चाहती थी। उसने इस निमंत्रण को तत्काल स्वीकार कर लिया। वह बोली—मुझे वैशाली में रहने का सौभाग्य मिल रहा है, यह साधारण सम्मान की बात नहीं।

वह मुड़कर अपने स्थान पर बैठ गई और उधर सन्थागार की कार्रवाई आगे चली।

हरिषेण महामंत्री जहाँ खड़ा था वहाँ से आगे आया और अपने उच्च, स्पष्ट स्वर में उसने कहा—सदस्यो! श्रेष्ठियो! नागरिको! आप सब मुझे सुनें। हमें मगधपति को प्रत्युत्तर देना है। प्रत्युत्तर में विलम्ब किया नहीं जा सकता। लेकिन जल्दबाजी भी हम कर नहीं सकते।

'परन्तु वास्तव में मगधपति चाहते क्या हैं? आपने जो सन्देश पढ़कर सुनाया उसमें तो यह स्पष्ट कहा गया है कि वह वैशाली को सदा के लिए मगध के युवराज का निवासस्थान बनाना चाहते हैं। यही उनकी माँग है। बात इतनी ही है या और भी कुछ?'

'अभी तो इतना ही। "और कुछ" उसके बाद। क्या आप इसे स्वीकार करते हैं?'

'एक क्षण—विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए—प्रत्युत्तर यदि "हाँ" में हो, तो ?'

'बाद की और कुछ विशेष बात यह है : हम लोग राजनीतिज्ञ नहीं। हम तो संस्कृति का प्रकाश चतुर्दिक् फैलानेवाले दीपधर हैं। परन्तु राजनीतिज्ञ जानते हैं और मगध के महामात्य मंत्रगुप्त एक प्रखर राजनीतिज्ञ हैं, इसलिए वह जानते हैं कि जो झुकता है वह अधिकाधिक झुकने के लिए तैयार रहता है। इसलिए हमने यदि इसे स्वीकार कर लिया तो आगे उनकी माँग यह है कि वैशाली को मगधपति का एक प्रदेश बनकर रहना चाहिए; इसमें वैशाली की शोभा भी है और मगध की भी। गणतंत्र नहीं, राजतंत्र नहीं, वैशाली का नगरतंत्र (नगर-शासन) भी नहीं, मगध का प्रादेशिक शासक ही उस पर शासन करेगा। मगध और वैशाली दोनो के लिए यही श्रेयस्कर होगा....'

महामंत्री हरिषेण की बात समाप्त भी नहीं होने पायी थी कि सन्थागार में कई लिच्छवी खड़े होते दिखाई दिये। उनके चेहरे तमतमाये हुए थे, नेत्र रोष से लाल हो गए थे। उन्होंने लगभग चीखते हुए कहा—महामंत्री, हम लिच्छवी हैं। लिच्छवी कभी किसी के आगे झुके नहीं और कभी झुकेंगे भी नहीं। झुकने में हम मानते ही नहीं।

'आप लिच्छवी हैं,' हरिषेण ने शान्तिपूर्वक कहा, 'मैं भी लिच्छवी हूँ; और साथ ही आर्य भी हूँ। आप झुकने में नहीं मानते; परन्तु मैं तो झुकना जानता ही नहीं। फिर भी इतना अवश्य जानता हूँ कि कई बार झुकना झुकना नहीं होता, मन की महान, कोमल, कवित्वमय अभिरुचि का वह आविर्भाव होता है। इसे समझना चाहिए कि अब वैशाली में महत्त्व बोलने का नहीं, मौन रहने का है। हमारा प्रत्युत्तर, जैसा कि मैंने कहा, आप, मैं अष्टकुलिक या दूसरा कोई भी नहीं दे सकता। प्रत्युत्तर दे सकती हैं केवल कुमारदेवी अर्थात् हमारी नगरी वैशाली....वैशाली की जय हो! देवी कुमारदेवी की जय हो! परमभागवतों की जय हो!'

निश्चय ही वैशाली का वातावरण बदल गया था। इस मनुष्य ने उसे

बदल डाला था। उसने एक नये प्रतीक की सृष्टि की थी। इस समय वैशाली उसी प्रतीक के सहारे जी रही थी।

विज्जका ने महसूस किया कि उसे एक रूप में उत्तर मिल गया है, फिर भी उसने वैशाली में कुछ समय तक ठहरना उचित समझा।

'सन्थागार अब समाप्त होता है....' हरिषेण का स्वर सभाभवन के कोने-कोने में गूँज उठा।

थोड़ी ही देर में हाथी, घोड़े, रथ, मनुष्य और शिविकाएँ वहाँ से विदा होने लगीं।

विज्जका का रथ भी राजकीय अतिथिगृह की ओर चल पड़ा।

वह मार्ग में सोचती जा रही थी, वैशाली का गणतंत्र, वैशाली का सन्थागार, वैशाली की परिषद् सब-कुछ है, और फिर भी कुछ नहीं।

इस नवयुवक कवि ने लोगों को एक नये स्वप्न, नये आदर्श और नयी कल्पना से अनुप्राणित कर दिया था।

उसने एक नये शब्द की सृष्टि की थी। वह शब्द था परमभागवत। यह परमभागवत शब्द लोगों को शक्ति और प्रेरणा प्रदान करनेवाला था। अब त्याग करने और वैराग्य में आनन्दित होनेवाला महान नहीं था। महान वह था जो अपने सभी पराक्रम भगवच्चरणों में समर्पित कर दे। अब देश की आवश्यकता भागवत-धर्म की थी। शकों, युवनों, कुशानों आदि विदेशी आक्रान्ताओं को इस प्रकार पराभूत करने की आवश्यकता थी कि वे कभी भूलकर भी भारत की ओर दृष्टि न उठा सकें। देश के सम्मुख मुख्य प्रश्न यह था। आवश्यकता थी देश को एकताबद्ध करने की, देश को सामर्थ्यवान बनाने की, देश की रक्षा करने की। जो यह करता वही देश के युगधर्म का स्रष्टा होता।

'भन्ते' और 'भणे' के सम्बोधन पुराने पड़ चुके थे और लोग उन्हें विदा कर रहे थे। सारा वैशाली नगर ही बदल गया था। वहाँ गणतंत्र था और नहीं भी था। वहाँ सन्थागार था और नहीं भी था। छन्द था, विज्ञप्ति थी, परन्तु अब इन सब बातों की परछाईं ही बची रह गई थी।

विज्जका को विश्वास हो गया कि कुमारदेवी ही यहाँ की सर्वस्व है।

प्रेरणा की मूर्ति वही थी। सब-कुछ उसकी इच्छा पर निर्भर करता था। वह चाहे तो गणतंत्र था, और वह चाहे तो राजतंत्र। उसका स्वप्न लोक-समस्त की कल्पना को उद्‌बुद्ध करनेवाला था। महाकवि हरिषेण ने वैशाली को एक नये ही पथ की ओर अग्रसर कर दिया था।

१२. वैशाली

आदर्शवादी मनुष्य जब अपने आदर्शों को कार्यान्वित करने लगता है तो व्यक्तिगत सुख-सुविधा, आराम-विश्राम, भूख, प्यास और नींद तक को बिसारकर काम में जुट जाता है। अपने स्वप्नों और आदर्शों को वही मूर्त कर पाता है जो सतत जाग्रत रहकर काम करता है। जाग्रत न रहना आदर्शवादी के लिए खतरनाक होता है, परन्तु राजनीतिज्ञ के लिए तो वह आत्महत्या के ही समान है।

कवयित्री विज्जका को उत्तर देने के लिए महामंत्री हरिषेण ने समय तो अवश्य ले लिया था, परन्तु वह जानता था कि विज्जका उसके आदर्शों को उखाड़ फेंकने और उसके स्वप्नों को मिट्टी में मिलाने के ही लिए आई है। उसके आने का प्रमुख उद्देश्य यही था कि वैशाली की जनता चन्द्रगुप्त से घृणा करने लगे, उसे नापित नन्द के जैसा हीनकुलोत्पन्न समझने लगे और चन्द्रगुप्त तथा वैशाली के पारस्परिक सम्बन्धों में इतना तनाव आ जाये कि वे सम्बन्ध ही समाप्त हो जायें।

इसलिए हरिषेण जानता था कि उसे जो कुछ करना है या तो तत्काल करना चाहिए, या कुछ भी नहीं करना चाहिए। एक-एक पल की कीमत थी और तीसरा कोई विकल्प नहीं था।

शीघ्रतापूर्वक किया हुआ दृढ़ निर्णय ही वैशाली को प्रतिष्ठा प्रदान कर सकता था, महान बना सकता था और सर्वनाश से बचा सकता था।

वास्तव में देखा जाये तो प्रश्न अकेले वैशाली का नहीं, समूचे राष्ट्र का था। प्रश्न भारत के साम्राज्य को खोने अथवा पाने का था। वैशाली को बचाने

अथवा पाटलीपुत्र को हथियाने का क्षुद्र प्रश्न नहीं था। प्रश्न इससे कहीं महान और व्यापक था।

कल्पना की धनी उसकी स्वप्नशील आत्मा इस बात को बहुत अच्छी तरह जानती थी कि भारतवर्ष का डूबना या तरना अथवा जीना या मरना इन दो-चार दिनों के इतिहास पर ही निर्भर करता है। उसे अविलम्ब निर्णय लेना और उस निर्णय को कार्यान्वित करना होगा।

यों उत्तर तो उसने दे ही दिया था, परन्तु उसके मनोमन्थन की कोई सीमा नहीं थी।

तिलभट्टक को उसने पाटलीपुत्र इसी लिए भेजा था कि वह चन्द्रगुप्त को अच्छी तरह ठोक-बजाकर देख ले। यदि चन्द्रगुप्त पाटलीपुत्र का साथ दे सके तभी वैशाली किसी बड़े और भयंकर युद्ध के बिना पाटलीपुत्र को अपने अधिकार में कर सकती थी, और तभी भारतवर्ष जीवित रह सकता था।

तिलभट्टक को पाटलीपुत्र भेजने के साथ ही उसने वैशाली में भी तैयारियाँ आरम्भ कर दी थीं। वैशाली और पाटलीपुत्र के बीच गंगा नदी बहती थी। जिस किनारे पाटलीपुत्र था, उससे कुछ दूर, जंगल में उतरा जा सके, इसके लिए उसने इस किनारे पर सैकड़ों नौकाएँ जमा कर रखी थीं। वैशाली के समीपस्थ जंगल में उन्हें छिपाकर रखा गया था। वैशाली के लिच्छवियों में उसने कुछ कनबतियाँ (कर्णोपकर्ण कथा) प्रचलित कर दी थीं। वे इस प्रकार थीं : वैशाली पर पाटलीपुत्र का वर्षों से जो अधिकार चला आता है उसका अन्त करना होगा; मगध की सत्ता को हमेशा के लिए उतार फेंकना होगा; पाटलीपुत्र के अस्तित्व का प्रयोजन वैशाली को विशाल बनाने के ही लिए है; वैशाली महान है और वही पाटलीपुत्र को महान बना सकती है। लिच्छवियों का—एक-एक लिच्छवी का मौन ही इस बात को सिद्ध और सार्थक कर सकता है।

वैशाली में गणतंत्र का सदा के लिए अन्त और एक अभिनव तंत्र का आरम्भ किया जा रहा था। कुमारदेवी को एक स्वप्न आया था। उस स्वप्न को वास्तविकता में परिवर्तित करने के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले वीरों की अब आवश्यकता थी। छन्द (मत) के लिए स्वच्छन्दता करनेवालों की अब

कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी। स्थिति तेजी से बदल रही थी। वातावरण बदल रहा था। बातें बदल रही थीं। संस्कृति बदल रही थी। सारी हवा ही बदली जा रही थी। कुशान, शक और यवन भारत के अधिष्ठाता बनकर फिरें—ये दिन ही अब लद चुके थे। विदेशियों को भारत से निकाल बाहर करनेवाली सेनाएँ संगठित हो रही थीं। समय की पहली माँग और आवश्यकता यही थी। गणतंत्र हो या राजतंत्र—यह बहस उसके बाद आती थी। बिना वास्तविक स्वतंत्रता के न गणतंत्र का कोई अर्थ था और न राजतंत्र का। जो देश की रक्षा ही न कर सके वह शासन किस काम का, और उसे शासन कहेगा कौन ?

हरिषेण के इन विचारों को लेकर लिच्छवियों में कनबतियाँ होने लगी थीं। आदेश मिलते ही एक-एक लिच्छवी पाटलीपुत्र पर चढ़ दौड़ने के लिए तैयार था और उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। परन्तु हरिषेण ने ताकीद कर दी थी कि अभी सब-के-सब इस सम्बन्ध में मौन रहें और किसी को कुछ पता न चलने दें।

प्रत्येक लिच्छवी इस बात को जानता था कि उसे लड़ने के लिए जाना है; परन्तु फिर भी प्रत्येक इस प्रकार अपनी दिनचर्या में लगा था मानो कोई बात ही न हो !

विज्जका लिच्छवियों का भेद लेने के ही लिए वैशाली में रुकी थी। दो-चार दिन वह सब जगह घूमी-फिरी; परन्तु उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया, किसी बात की भनक तक न मिली।

लिच्छवी सदा की भाँति, रंग-बिरंगे वस्त्र पहने, अपने उत्सवों और राग-रंग में लीन थे। कहीं नृत्यों का आयोजन होता तो कहीं नट खेल दिखाते। कहीं गीत-वाद्य का कार्यक्रम होता तो कहीं घुड़दौड़ और रथदौड़ की प्रतियोगिताएँ आयोजित की जातीं। सब-कुछ गणतंत्र के अनुरूप ही हो रहा था।

इधर हरिषेण तिलभट्टक की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे अब तक लौट आना चाहिए था। चन्द्रगुप्त को उसने ठोक-बजाकर देख लिया था, लेकिन सहसा घटोत्कच महाराज के सांघातिक रूप से रुग्ण होने के समाचार आ गए और उसे रुक जाना पड़ा। अब वह लौट आये और वहाँ की परिस्थिति के

बारे में विस्तार से बता दे तभी पाटलीपुत्र की ओर सेना भेजने का निश्चय किया जा सकता था।

लेकिन वह तो आया नहीं और इस बीच कुंजरक और कवयित्री विज्जका यहाँ अकस्मात् ही आ पहुँचे। हरिषेण को आशंका हुई कि कहीं मंत्रगुप्त को उनकी योजना के बारे में मालूम तो नहीं हो गया? इन्हीं सब कारणों से उसे अपने निर्धारित कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करना पड़ा। लेकिन अब स्थिति यह थी कि यदि तत्काल कुछ न किया गया तो कुछ भी नहीं किया जा सकता था।

तभी उसे समाचार मिले कि तिलभट्टक पाटलीपुत्र से एक गुप्त मार्ग के द्वारा कभी भी रवाना हो सकता है। यह गुप्त मार्ग एक सुरंग के रूप में गंगा नदी के किनारे तक आता था। हरिषेण को इस मार्ग की जानकारी थी। उसे गुप्त रूप से गंगा-पार लाने का सारा प्रबन्ध पहले ही कर दिया गया था। अब तो हरिषेण को केवल उसके लौट आने की प्रतीक्षा थी और वह उत्सुकता से प्रतीक्षा कर भी रहा था।

यदि तिलभट्टक यह समाचार लाया कि चन्द्रगुप्त अन्दर रहकर वैशाली की सहायता करेगा तभी यहाँ से गंगा-पार जानेवाली लिच्छवी सेना को प्रयाण के आदेश दिये जायेंगे।

परन्तु कहीं चन्द्रगुप्त ने इस प्रकार सहायता देना अस्वीकार कर दिया तो क्या होगा?

अथवा चन्द्रगुप्त ने भी मगधपति की भाँति वैशाली को मगध के अधीन रखने का आग्रह किया, तो?

इन दो बातों ने महामंत्री हरिषेण को चिन्ताग्रस्त कर दिया। इतना तो उसे साफ-साफ दिखाई दे रहा था कि वैशाली का दमन करने के ही लिए कुंजरक को भेजा गया है। कवयित्री जो सन्देश लेकर आई थी उसका भावार्थ भी यही था। इसी लिए वह शीघ्रता करना चाहता था। तुरत निर्णय करना आवश्यक हो गया था। विलम्ब करने से वैशाली का ही नहीं सारे भारत-वर्ष का भविष्य खतरे में पड़ सकता था। परन्तु मुश्किल यह थी कि वह तत्काल निर्णय कर नहीं सकता था; क्योंकि तिलभट्टक अभी तक लौटकर आया नहीं

था और उसकी बात सुने बिना कोई निर्णय किया नहीं जा सकता था।

वैसे आशा तो उसे चन्द्रगुप्त के भी साथ आने की थी। परन्तु बाद में जो समाचार मिले, जिस प्रकार चन्द्रगुप्त और तिलभट्टक सुगंगप्रासाद में घिर गए, उन्हें देखते हुए उसने चन्द्रगुप्त के आने की आशा छोड़ दी थी। इस समय चन्द्रगुप्त के आने या न आने का कोई महत्त्व भी नहीं था। महत्त्व केवल इस बात का था कि वह पाटलीपुत्र में बना रहकर भीतर से सहायता करता रहे।

यह इसलिए आवश्यक था कि वैशाली पाटलीपुत्र के साथ किसी लम्बे युद्ध में उलझ नहीं सकती थी। इस समय लम्बे युद्ध का परिणाम वैशाली के ही लिए नहीं, सारे भारतवर्ष के लिए विघातक होता। कोई भी लम्बा युद्ध शकों, यवनों और कुशानों के उखड़ते हुए पाँवों को जमा देता, और इधर प्रवरसेन पद्मावती के गणपतिनाग, मथुरा के यादव, अहिछत्र के नागवंशी आदि को पाटलीपुत्र की सहायतार्थ दौड़े आने का अवसर प्रदान कर देता। इस प्रकार एक लम्बा युद्ध भीषण गृहयुद्ध का रूप धारण कर लेता। पाटली-पुत्र तो हाथ नहीं ही लगता स्वयं वैशाली का इस प्रकार विनाश हो जाता जसा किसी जमाने में अजातशत्रु ने किया था। फिर तो वैशाली की स्थिति जड़ें खोदकर मठा पिलाये वृक्ष-जैसी हो जाती। स्वयं हरिषेण की सारी महत्त्वाकांक्षाएँ धूल में मिल जातीं। इतिहास यही कहता कि हरिषेण ने अपनी नीति के कारण, स्वयं होकर विदेशी आक्रान्ताओं को भारत में आमंत्रित किया।

यही कारण था कि इस समय हरिषेण के मन में विचारों का प्रबल द्वन्द्व मचा हुआ था। यदि उसकी योजना फलीभूत हुई तो भारतवर्ष के एक केन्द्रीय साम्राज्य की स्थापना में कोई भी सन्देह नहीं था। लेकिन यदि उसकी योजना फलीभूत नहीं हुई तो सदा के लिए वैशाली का अस्तित्व ही मिट जायेगा और उसके नाम पर कलंक की अमिट कालिमा पुत जायेगी।

प्रवरसेन, गणपतिनाग, मथुरा और पाटलीपुत्र-जैसे चार प्रबल राज्यों के बीच वैशाली दो दिन भी टिकी नहीं रह सकती थी। स्थिति इस समय ऐसी थी कि एक आशुनिर्णय और तड़ित् आक्रमण ही हरिषेण की कल्पनाओं और स्वप्नों को मूर्त कर सकता था। बात तभी बन सकती थी जब कि प्रवरसेन

आदि देखते रह जायें और वह रातोंरात पाटलीपुत्र में नई शासन-व्यवस्था स्थापित कर दे। घटिका-यंत्र की नियमितता से उसकी योजना का प्रत्येक चरण पूरा होता रहे तभी वह विजय-लाभ कर सकता था, अन्यथा उसकी पराजय और सर्वनाश में कोई भी सन्देह नहीं था।

वह इन्हीं विचारों में लीन था। कुमारदेवी भी वहीं थी और वह भी यही सब सोच रही थी। वह पाटलीपुत्र पर तत्काल आक्रमण कर देना चाहती थी। हरिषेण इसके पक्ष में नहीं था। जब तक तिलभट्टक आ न जाये और वह उसके मुँह से चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में जान न ले तब तक वह कुछ भी नहीं करना चाहता था—कर सकता ही नहीं था।

जैसे-जैसे समय बीतता जाता था हरिषेण की चिन्ता बढ़ती जाती थी। तिलभट्टक को क्या हुआ? वह अभी तक क्यों नहीं आया? गुप्त मार्ग से चल पड़ा तो उसे अभी तक पहुँच जाना चाहिए था! कहाँ रुक गया? मार्ग में कोई बाधा, कोई व्यवधान....

सहसा उसने किसी को आते देखा। उसने यह भी देखा कि द्वारपाल आगन्तुक को मार्ग देने के लिए एक ओर हट गया है। वह प्रसन्न हो उठा। अवश्य तिलभट्टक ही होना चाहिए। लेकिन फिर उसने यह देखा कि आगन्तुक नौकापति के वेश में है। उसका मुखमण्डल सुन्दर, गौरवर्ण और तेजस्वी है; और शरीर से वह ऊँचा-पूरा और बलिष्ठ है। उसे आगन्तुक का चेहरा शोक-सन्तप्त भी दिखाई दिया, जो उसके आन्तरिक विषाद और असमंजस का परिचायक था।

आगन्तुक बढ़ा चला आ रहा था। हरिषेण उसे सहसा पहचान न पाया। तभी उसकी दृष्टि आगन्तुक के पीछे चले आ रहे तिलभट्टक पर पड़ी। अब हरिषेण समझ गया कि अपरिचित आगन्तुक चन्द्रगुप्त ही होना चाहिए।

हरिषेण की प्रसन्नता बाँध तोड़ने लगी। तिलभट्टक की उसने अनेकों बार परीक्षा ली थी, और वह हर बार उत्तीर्ण हुआ था। परन्तु इस बार उसे जो काम सौंपा गया था वह बहुत ही कठिन था। किसी मनुष्य को अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ दूसरे की महत्त्वाकांक्षाओं में विलीन करने के लिए कहना स्वयं होकर उसे प्रतिस्पर्द्धी बनाना है। परन्तु तिलभट्टक ने यह भी कर दिखाया

था। वह केवल सेनापति ही नहीं कौटिल्य का सुयोग्य शिष्य भी था।

वह अपने आसन पर से उठ खड़ा हुआ। स्वागत के लिए दो डग आगे बढ़ते हुए उसने सुगन्धित तेल के मन्द प्रकाश में चन्द्रगुप्त के चेहरे पर उसके अन्तःसंघर्ष को स्पष्ट रूप से लिखा देखा।

हरिषेण ने हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा—स्वागत महाराज, हमारे अहोभाग्य कि आप पधारे। सबसे पहले तो इस बात की क्षमा चाहता हूँ कि मैं आपको इस वेश में पहचान न सका। आप तिलभट्टक के साथ आये, इससे हमारे बहुत-से कठिन काम सरल हो जायेंगे। इस समय एक-एक क्षण मूल्यवान है। महाराज, इधर आइए....

लेकिन उधर आसन की ओर देखते ही हरिषेण चौंक पड़ा। कुमारदेवी वहाँ नहीं थी। उसे कुमारदेवी का अभिप्राय समझते देर न लगी। उसके चले जाने का यही अर्थ था कि उसे अविलम्ब चन्द्रगुप्त से चर्चा आरम्भ कर देनी चाहिए।

हरिषेण ने दूसरे ही क्षण इतने साहजिक भाव से कहा, मानो कुछ भी न हुआ हो—आइए महाराज, इधर आइए। हमें अभी तत्काल एक निश्चय करना है।

चन्द्रगुप्त को स्वयं भी जल्दी थी। आने को वह तिलभट्टक के साथ चला आया था, परन्तु प्रभात के पक्षी बोलने के पहले ही उसे सुगंगप्रासाद में पहुँच जाना था।

लाल चन्दन के स्वर्ण-खचित आसन पर चन्द्रगुप्त बैठ गया। उसके सामने थोड़ी ही दूर हरिषेण बैठा। चन्द्रगुप्त की बगल में एक साधारण आसन पर तिलभट्टक भी चुपचाप बैठ गया।

'महाराज, इस समय प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। शीघ्रता करने से ही हम उबर सकते हैं। औपचारिकता निबाहने का तनिक भी समय नहीं है। घटोत्कच महाराज के निधन के समाचारों से हमें बड़ा आघात पहुँचा है। उन्हें हम अपना ही समझते थे। वह हमसे और हमारी आकांक्षाओं से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। यह जो अभी का अवसर है इसका निर्माण हमारे लिए महाकाल ने ही किया है। इस समय प्रश्न यह है कि भारतवर्ष जीयेगा अथवा मरेगा?

जो स्वप्न आपका है ठीक वही वैशाली का भी है। इसलिए बतलाइए कि आप क्या करना चाहते हैं? वहाँ रहकर हमारी सहायता करेंगे या नहीं? तिलभट्टक ने आपको सब-कुछ बताया तो होगा ही।'

'जी हाँ, बताया है। मैं जानता हूँ। परन्तु मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि बाद में वैशाली पाटलीपुत्र के अधीन रहेगा या नहीं? यदि अधीन रहेगा तो किस रूप में? अधीन नहीं रहा तो फिर मगधपति का महत्त्व ही क्या रह जायेगा? इस समय मगध का विस्तार कुछ ही योजन-पर्यन्त रह गया है, फिर भी मगधपति अपने को भारतपति मानते हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि मगधपति की इस भ्रान्ति में और आपके स्वप्न में अन्तर क्या है?'

'अन्तर केवल इतना,' हरिषेण ने तत्परता से कहा, 'कि हमारा स्वप्न बड़ा ही भव्य है; इस स्वप्न में वैशाली को वैशाली होने का और पाटलीपुत्र को पाटलीपुत्र होने का अभिमान नहीं रह जाता—प्रत्येक को एक नया ही गौरव प्राप्त होगा।'

'वह कौन-सा?'

'यह कि मैं हूँ तो भारतवर्ष है और भारतवर्ष है तो मैं हूँ।'

'लेकिन इन दोनों में—वैशाली और पाटलीपुत्र में—किसका महत्त्व अधिक होगा? विदेशी किसे प्रमुख समझेंगे? मगधपति का क्या स्थान रहेगा?'

'मगधपति भारतपति बने—यही उसका स्थान होगा। और जो इस स्वप्न को सार्थक करेगा वही मगधपति होगा और भारतपति भी। भारत का प्रमुख स्थान और केन्द्र अब एक ही होगा। पाटलीपुत्र और वैशाली ऐसे दो केन्द्र अब नहीं रहेंगे। दोनों ही गंगा मैया की सन्तान बन जायेंगे। यह है हमारा स्वप्न। यदि यही स्वप्न आपका भी हो, तो मगधपति महाराज चन्द्रगुप्त की जय हो! समस्त भारतवर्ष उनका हो! एक-एक क्षण मूल्यवान है, इसलिए महाराज तत्काल उत्तर प्रदान करें....'

'और यदि मैं "ना" कहूँ, तो?'

'तो हम महाकाल से आदेश प्राप्त करेंगे। आपकी अस्वीकृति का हम पर कोई प्रभाव न होगा, वह हमें छू भी नहीं जायेगी। हम महाकाल के संकेत

का अनुसरण करेंगे। आप मनुष्यों को रोक सकते हैं, सेनाओं को रोक सकते हैं, लेकिन महाकाल को कोई रोक नहीं सकता। इस परिवर्तन के प्रणेता हम नहीं, समय है। काल इसे ला रहा है। युग इसे ला रहा है। महाकाल इसका जनक है। वह आकर रहेगा। महाकाल की यही आज्ञा है। युग का यही भैरवनाद है। समय देवता ने हमें यह सन्देश दिया है कि मानव-जाति के कल्याण के हेतु हम युग-परिवर्तन करें। हम वह करके ही रहेंगे—चाहे आप हाँ कहें, चाहे ना। ऐसे समय पाटलीपुत्र का शासन निर्बल हो, यह हम नहीं चाहते; आप भी ऐसा नहीं चाहेंगे। नये शासन-तंत्र के स्वप्न तो आप भी देखते ही हैं।'

चन्द्रगुप्त सोच-विचार में पड़ गया। हरिषेण का यह प्रत्युत्तर उसके मनोनुकूल नहीं था। लेकिन तिलभट्टक ने बात सँभाल ली।

वह बोला—मंत्रीश्वर, महाराज चन्द्रगुप्त भी इतना तो समझते ही हैं कि इस समय पाटलीपुत्र का दुर्बल हाथों में रहना युग-धर्म के अनुरूप नहीं है; दुर्बल के हाथों रहा तो भारतवर्ष ही नहीं रहेगा, वही हाथ से निकल जायेगा।

'हाँ महामंत्री। महादंडनायक तिलभट्टक का कथन यथार्थ है।' चन्द्रगुप्त ने तत्परता से कहा।

'साधु, साधु! तब तो महाराज युग-धर्म को समझते हैं। इसी लिए तो हमने महाराज पर आशा लगा रखी है। पाटलीपुत्र को दुर्बल हाथों में एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए। रहा तो यहाँ विदेशी आक्रमणकारी आ धमकेंगे। दक्षिण दिशावाला कोई पाटलीपुत्र की रक्षा नहीं कर सकता। यह काम प्रवरसेन का नहीं। यह काम आपका है, हमारा है।'

'इस काम को पूरा करने के लिए वैशाली मुझे सहायता दे, इसी लिए तो मैं यहाँ आया हूँ।' चन्द्रगुप्त ने कहा।

'वैशाली अवश्य आपकी सहायता करेगी। लेकिन वह इस तरह कि आप स्वयं को वैशाली का समझें; क्योंकि जो भी इस स्वप्न से अनुप्राणित होता है वह वैशाली का है और हम उसे लिच्छवी ही समझते हैं। हमारे मन वह देवता ही है।' हरिषेण ने प्रत्युत्तर दिया।

'महामात्य हरिषेण, मैं आपको अपने मन की बात कहा चाहता हूँ। अब

मैं किसी के आधार को सहन नहीं कर सकता, मुझे सहारा अच्छा नहीं लगता। मगध में कृतक-तनय के रूप में रहकर मैंने क्या नहीं गँवाया ? मैं अपने पिता घटोत्कच महाराज की मृत्यु-शय्या के निकट भी नहीं जा सका ! इससे अधिक अधमता की बात और क्या हो सकती है ? मेरे लिए इससे अधिक कलंक और क्या होगा ?'

'महाराज को यह बात अब भूल ही जाना चाहिए।'

तिलभट्टक ने हरिषेण की इस टिप्पणी का समर्थन करते हुए कहा—महाराज की आकांक्षा देश का नवनिर्माण करने की है। हमारी आकांक्षा भी यही है। हम दोनो को एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए। आप वहाँ पाटलीपुत्र में रहें और भीतर से हमारी सहायता करें। हमें पाटलीपुत्र को घेरना न पड़े; तभी गृह-युद्ध से बचा जा सकता है, तभी विदेशी आक्रमणकारियों को अवसर नहीं मिल सकता है, तभी प्रवरसेन का यहाँ आना रोका जा सकता है।'

'यह सब तो मैं समझ गया; परन्तु इस सब के बाद मगधपति कौन होगा ? वैशाली का कोई होगा, या मगधवाला ही कोई होगा ? मूल प्रश्न यह है।'

'हम दोनों में से किसी को भी मगधपति नहीं बनायेंगे।' हरिषेण का उत्तर बिलकुल तलवार की धार की तरह तीखा था।

'तो फिर क्या करेंगे ?'

'हम तो अपने स्वप्न, अपनी आकांक्षा और अपनी कल्पना को ही मगधपति मानेंगे। आपकी यह आकांक्षा है, इसलिए आप मगधपति। हमारा स्वप्न भी यही है, इसलिए हम भी मगधपति।'

'यह तो बड़ी विचित्र बात हुई। इस प्रकार दुहरी सत्ता स्थापित हो जायेगी। इस प्रकार की स्थिति को मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करती। इसलिए यदि मैं अस्वीकार करूँ तो आप क्या करेंगे ? युद्ध करेंगे ? और वह भी इस समय, जब कि प्रवरसेन का भय नंगी तलवार की भाँति सिर पर लटका हुआ है ? अकेले प्रवरसेन का ही नहीं, मथुरापति का और शकों-यवनों का भय भी है ! तो ऐसे समय में आप क्या करेंगे ? मैं यही जानना चाहता हूँ ?'

हरिषेण को तत्काल कोई जवाब नहीं सूझा। तिलभट्टक भी एक क्षण सोच-विचार में पड़ गया। परन्तु ठीक तभी यवनिका के पीछे से धनुष की

टंकार-जैसे शब्द सुनाई दिये और तीनों के तीनों चौंक पड़े।

'महाराज, आप हाँ कहें या ना, वैशाली की आकांक्षा को तो हम पूरा करके ही रहेंगे।'

तीनों ने देखा, यवनिका को एक ओर हटाकर वहाँ कुमारदेवी खड़ी हुई थी।

लगता था, वह चन्द्रगुप्त की पूरी बात सुन चुकी है। अब हरिषेण ने वार्तालाप का सूत्र उसी के हाथों सौंप दिया।

कुमारदेवी शीघ्रता करना चाहती थी। विलम्ब उसे एक क्षण का भी स्वीकार नहीं था। हरिषेण जानता था कि उत्तर भी उससे इसी आशय का मिलेगा।

१३. गणपतिनाग का आगमन

चन्द्रगुप्त कुमारदेवी की ओर देखता ही रह गया। एक अत्यन्त तेजस्विनी महिला उसके सामने खड़ी थी। इतना देदीप्यमान तेज था जिसे कोई भी सहसा सहन नहीं कर सकता था। नारी नहीं, तेजोवल्लरी ही थी वह। शरीर के रोम-रोम से तेज की किरणें उद्भासित हो रही थीं। रूप था, नारी का अनुपम सौन्दर्य और प्रबल आकर्षण भी था, परन्तु सब-कुछ उसकी प्रखर तेजस्विता के आगे दब-सा गया था। उसके विशाल, सुन्दर, स्वप्निल नेत्रों से तेज की किरणें फूटी पड़ती थीं। सुन्दर, सुशोभन और दृढ़ निश्चय से भरे चेहरे से तेज विकीर्ण होता था। पुष्ट, गोल बाहु तेज के अक्षय भण्डार प्रतीत होते थे। लगती थी वह देह-लावण्य से परिपूर्ण एक प्रेममूर्ति के समान; परन्तु परिचय का दूसरा ही क्षण उसे तेजोवल्लरी बना देता था। लगता था, जैसे तेज ही उसका सर्वस्व और तेजस्विता ही उसका व्यक्तित्व है। बिरले ही उस तेज को सह पाते थे; और जिसमें सहने की सामर्थ्य न होती वह तो उसके समीप खड़ा भी नहीं रह सकता था।

धनुष की टंकार-जैसे उसके शब्दों को सुनकर विस्मित हुआ चन्द्रगुप्त

कुछ देर उसकी ओर देखता ही रह गया। उन शब्दों की ध्वनि उस नारी के दृढ़ आशु निर्णय की द्योतक थी। विस्मय-विमुग्ध चन्द्रगुप्त को अपने निश्चय का कुछ और परिचय देते हुए उसने आगे कहा :

'महाराज, आप स्वीकार करें या न करें, वैशाली का स्वप्न प्रतीक्षा नहीं कर सकता, और न वह कभी मिथ्या ही हो सकता है। मुझे प्रतिदिन ऐसा आभास होता है कि समस्त भारतवर्ष को एकताबद्ध करनेवाला, सारे देश को एक, अखण्ड और शक्तिशाली बनानेवाला कोई विराट पुरुष, कोई नर-पुंगव किसी प्रदेश अथवा किसी नगर में किसी नारी के माध्यम से शीघ्र अवतीर्ण होगा। हो सकता है कि ऐसा न भी हो और मेरा आभास निरी मृगतृष्णा ही सिद्ध हो! और यदि मृगतृष्णा हुई तो आप निश्चयपूर्वक जानिए कि क्षुद्र प्रश्नों को, क्षुद्र लोगों के संकुचित स्वार्थों और क्षुल्लक वाद-विवादों को महान राजनीति समझनेवाले क्षुद्रजन इस विराट देश की कभी रक्षा नहीं कर सकते। तब यह देश किसी भी प्रकार बच नहीं सकता। इस देश की सांस्कृतिक एकता नष्ट होते ही यहाँ केवल खंडहर शेष रह जायेंगे। एक नर-पुंगव के बिना इस देश का उद्धार कभी होने का नहीं। यही युग की माँग और युग की वाणी है, जो मुझे सदैव दसों दिशाओं में गूँजती सुनाई देती है। इसी लिए मैं वैशाली को भारत की महानतम नगरी बनाना चाहती हूँ; इसी लिए हमारा ध्यान आपकी ओर गया, इस विश्वास से कि वैशाली को महान बनाने के हमारे स्वप्न और हमारी आकांक्षा के साथ आप अपने स्वप्नों और अपनी आकांक्षाओं को सम्बद्ध कर सकेंगे। यदि आपने ऐसा किया तो हम दोनों की सम्मिलित शक्ति देश का नवनिर्माण कर सकेगी, युग-परिवर्तन का कारण हो सकेगी। यदि आपने अस्वीकार किया तो दूसरा कोई हमें ऐसा दिखाई नहीं देता, किसी दूसरे पर हमारी दृष्टि नहीं ठहरती....लेकिन फिर भी आप इतना मानकर चलिए कि वैशाली को महान बनने से कोई रोक नहीं सकता, महान तो यह होकर रहेगी। यदि इसके लिए हमें सैनिक कार्रवाई करनी पड़ी तो वह भी की जायेगी। आप चाहे तो हाँ कहें चाहे ना कहें, हम तो अपना काम करेंगे ही।'

कुमारदेवी का प्रत्येक शब्द उसके दृढ़ मनोबल और निश्चय का द्योतक

था। सुनकर तिलभट्टक और हरिषेण प्रसन्न हुए। परन्तु चन्द्रगुप्त चिन्तित हो उठा और उसने अधीरतापूर्वक पूछा—लेकिन सैनिक कार्रवाई किसके विरुद्ध होगी?

'पाटलीपुत्र के विरुद्ध। आज के संयोगों में पाटलीपुत्र को स्वतंत्र और अकेला रखने का अर्थ है भारतवर्ष का विनाश, जो वैशाली को स्वीकार नहीं।'

'हूँ, तो यह है पाटलीपुत्र के विरुद्ध वैशाली की सैनिक कार्रवाई का प्रयोजन! पर यह सब कब होगा, किसके द्वारा होगा और सेना लेकर वहाँ कौन जायेगा?'

'कब होगा?' अब कुमारदेवी के स्वर में लोहे की खनक थी। 'अभी होगा, इसी क्षण। आपके यहाँ रहते ही पाटलीपुत्र पर हमारा आक्रमण हो जायेगा। हमारे लिए प्रत्येक क्षण एक युग के समान है और यह युग एक-एक क्षण का बना हुआ है। कुशानों, शकों और यवनों ने इस देश को अनेक वर्षों तक रौंदा है। उन्होंने यहाँ की संस्कृति का विनाश किया, यहाँ के वैशिष्ठ्य को नष्ट किया, यहाँ की महानता को मिट्टी में मिला दिया। हम नहीं चाहते कि यह सब फिर से दुहराया जाये। इसी लिए पाटलीपुत्र पर आक्रमण होगा, अभी होगा और अवश्य होगा। क्या यह भी जानना चाहते हैं कि सेना लेकर वहाँ कौन जायेगा?'

'और तो कौन जायेगा! महामंत्री हरिषेण की यह योजना है, इसलिए वही जायेंगे।'

'नहीं!'

'तो फिर तिलभट्टक जायेंगे।'

'नहीं।'

'यदि वह भी नहीं तो वैशाली के सेनानायक श्रीषेण होंगे।'

'नहीं, वह भी नहीं।'

'तो फिर कौन जायेगा?'

'जाऊँगी मैं। मैं स्वयं सेना का नेतृत्व करूँगी।' जिस प्रकार प्रत्यंचा के खींचे जाते ही धनुष की टंकार गूँज उठती है उसी प्रकार कुमारदेवी के शब्द

गूँज उठे। उन शब्दों को सुनकर चन्द्रगुप्त को विश्वास हो गया कि वैशाली में कुमारदेवी ही सब-कुछ है। परन्तु उसके पुरुष स्वभाव को नारी का यह दर्प जरा भी अच्छा नहीं लगा। उसका मन विद्रोह कर उठा। चन्द्रगुप्त के आन्तरिक विद्रोह को तिलभट्टक ने उसके नेत्रों में प्रतिबिम्बित होते देखा तो वह चिन्तातुर हो गया।

डरा कि इस प्रकार तो मेरा सारा परिश्रम ही व्यर्थ हो जायेगा, सब किये-कराये पर पानी फिर जायेगा। बात को बिगड़ने से पहले ही सँभाल लेना चाहिए। यह सोचकर उसने कहा—देवी! इस समय चन्द्रगुप्त महाराज का हृदय पितृ-शोक से अत्यधिक कातर है। इस आघात ने महाराज के मन-प्राणों को विह्वल कर दिया है। उनके मन में यह धारणा बद्धमूल हो गई है कि पाटलीपुत्र पर अधिकार करने की महत्त्वाकांक्षा का ही यह कुपरिणाम हुआ है। पाटलीपुत्र के सम्बन्ध में वह जरा सशंक हो उठे हैं। बाकी, उनके और हमारे स्वप्न में, उनकी और हमारी आकांक्षाओं में कोई अन्तर नहीं है। हमारी भाँति वह भी यही मानते हैं कि पाटलीपुत्र ही भारतवर्ष है।

'यह तो मैं समझती हूँ तिलभट्टक! महाराज यहाँ आये, तभी मैं इस बात को समझ गई।' कुमारदेवी ने कहा, 'परन्तु जैसा कि महामंत्री हरिषेण महोदय कहते हैं, उसी को मैं भी जोर देकर कहना चाहती हूँ कि यह क्षण एक युग के समान है; स्वप्न ही सर्वस्व है; अहम्मन्यता विनाश है। मैं तो केवल नारी हूँ। पाटलीपुत्र में पराजित हुई तो कोई यह नहीं कहेगा कि इसने धृष्टता की। उलटे सब यही कहेंगे कि पराक्रम के लिए इस नारी के मन में कितनी उत्कट अभिलाषा है! परन्तु यदि महाराज वहाँ पराजित हुए, और अवश्य होंगे, और वह भी एक नारी के हाथों, तो सारे देश में उनका कितना परिहास होगा! जानते हो उस परिहास और निन्दा का परिणाम क्या होगा? महाराज की सभी आशाएँ नष्ट हो जायेंगी, जीवन में उनकी कोई रुचि और कोई रस नहीं रह जायेगा। सम्भवतः भारतवर्ष में उनका कोई स्थान ही नहीं रहने पाये। इसी लिए मैं कहती हूँ कि इस समय, वर्तमान के इस छोटे-से क्षण में जो निर्णय किया जायेगा वह युग-व्यापी और युगान्तरकारी होगा। बेसिर-पैर की लम्बी-चौड़ी और निरी काल्पनिक बातें करना तो मुझे

आता नहीं; लेकिन फिर भी मैं इतना अवश्य कहना चाहती हूँ कि अपने चारों ओर के वातावरण में से मुझे अहर्निश एक ध्वनि गूँजती सुनाई देती है; जैसे कोई पुकार-पुकारकर कहता रहता है—ओ नारी, भारतवर्ष के महान पुरुष की अवतारणा के लिए कुछ तो कर। शंकर, पार्वती और कार्तिकेय प्रतिक्षण मेरी आँखों के आगे नाचते रहते हैं! लेकिन यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ कि प्रेम-मौक्तिकों की माला पहनने का मुझे कोई चाव नहीं, मैं तो चाहती हूँ देश का नवनिर्माण....अब महाराज प्रत्युत्तर दें और जो भी प्रत्युत्तर देना हो निर्णयात्मक ही दें, सोच-समझकर दें और तत्काल दें। महाराज की एक "हाँ" और 'ना" पर उनका सारा जीवन अवलम्बित होगा और वह एक शब्द उनके समूचे जीवन का अन्तिम शब्द बन जायेगा।'

चन्द्रगुप्त बड़े असमंजस में पड़ गया। झुकना उसे स्वीकार नहीं था। सामने एक तेजस्विनी महिला खड़ी थी। वह साधारण कोटि की नारी नहीं थी। उसके मन में महान स्वप्न और महानतम आदर्श सँजोये हुए थे। प्रेम उसके लिए कविता नहीं युगान्तरकारी घटना थी, रोमांच नहीं जीवन की धड़कती हुई साँस थी, वैयक्तिक भावना नहीं देशव्यापी वास्तविकता थी। उसने जो कुछ कहा वह नर, नारी और प्रेम की रंगीन कहानी नहीं हिमसुता के भव्य गौरव की महान गाथा थी। किसी विराट सृजन की भूमिका के लिए मानो यह उसकी प्राथमिक तैयारी थी।

उसकी महान गाथा में प्रेम के सुनहरे-रुपहले धागे जीवन की बुनावट की भाँति बुने हुए थे। इस बुनावट से विलग प्रेम का उसके लिए स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं रह गया था।

चन्द्रगुप्त अभी तक असमंजस में पड़ा हुआ था।

कुमारदेवी ने पुनः एक प्रयत्न कर देखा। उसने कहा—जिस नारी के हृदय में भावी सृजन की भव्यता नहीं होती वह नारी नहीं निरी कठपुतली है; और जिस पुरुष के मन में भावी का गौरव नहीं होता वह मूर्ख की भाँति केवल खिलौनों से खेलता है।

चन्द्रगुप्त असमंजस में पड़ा कुमारदेवी के प्रत्येक शब्द को उत्सुकतापूर्वक सुन रहा था। कुमारदेवी का एक-एक शब्द उसे हिमाचल की भाँति

ऊँचा प्रतीत हो रहा था। कुमारदेवी के विचारों ने उसे आन्दोलित कर दिया था; परन्तु उसका स्वाभिमानी मन लघुता को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं हो रहा था। और उस नारी का प्रेम नकली मोतियों का हार तो था नहीं कि हाथ बढ़ाते ही मिल जाता।

उसका प्रेम था एक अनमोल हीरा। ऐसा हीरा जिस पर साम्राज्य निछावर हो जाते हैं और जो युग का निर्माता होता है; ऐसा हीरा जो स्वयं प्रकाशित है और दूसरों को भी अपने प्रकाश से आलोकित करता है। उसके प्रेम की ऊँचाई तक पहुँचने के लिए स्वयं भी बहुत ऊँचे उठना होता है। चन्द्रगुप्त इस बात को जानता था, परन्तु वह अपने पुरुष स्वभाव के कारण विवश था। उसके उसी पुरुष-स्वभाव ने पुनः जोर मारा और वह दृढ़ता से बोला—यह सच है कि वैशाली का स्वप्न मेरा भी स्वप्न है, लेकिन मेरा स्वप्न मेरा अपना ही रहेगा। मैं किसी का सहारा नहीं लेता, किसी की छाया में खड़ा रहना मेरा स्वभाव नहीं। मैं मैं हूँ और मैं ही बना रहना चाहता हूँ। वैशाली वैशाली रहे, पाटलीपुत्र पाटलीपुत्र रहे और भारतवर्ष भारतवर्ष बना रहे—यही मैं चाहता हूँ और ऐसी ही मेरी मान्यता है।

अपनी बात समाप्त होते ही चन्द्रगुप्त को लोहे की भस्म-जैसे भारी और वजनदार शब्द सुनाई दिये। कुमारदेवी कह रही थी—महामात्य हरिषेण, महाराज को हम अब रोक नहीं सकते। इन्हें सवेरे से पहले सुगंगप्रासाद में पहुँचा आने का उत्तरदायित्व हम लोगों पर है। महाराज जाने को स्वतंत्र हैं। महाराज, हमारी चर्चा अधूरी ही रही, यद्यपि हमारे स्वप्न अधूरे नहीं हैं। तिलभट्टकजी, आप महाराज को पुनः सकुशल....

लेकिन कुमारदेवी की बात अधूरी ही रह गई। एक सन्देशवाहक तेजी से दौड़कर आता हुआ प्रतीत हुआ। वह द्वार के बाहर ही रुक गया। ये लोग अभी अनुमान लगा ही रहे थे कि आगन्तुक कौन हो सकता है, तभी द्वारपाल ने अन्दर आकर अभिवादन किया और बोला—देवी की जय हो! पद्मावती नगर से महाराज गणपतिनाग आये हैं।

'कौन? महाराज गणपतिनाग? स्वयं आये हैं? कहाँ हैं?'

'राजभवन के बाहर खड़े हैं। देवी से अभी तत्काल भेंट करना चाहते

हैं। कहते हैं कि अभी मिलना है और काम बहुत जरूरी है। हमने सवेरे तक रुकने के लिए कहा तो बोले कि सवेरा होने तक तो अनेक युग बीत जायेंगे; अभी और इसी समय मिलना आवश्यक है।'

'परन्तु काम क्या है ?' कुमारदेवी ने पूछा।

'जब काम के सम्बन्ध में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि वैशाली नगरी के जीवन-मरण का प्रश्न न होता तो मैं इस समय कदापि न आता।'

'वैशाली के जीवन-मरण का प्रश्न ? क्यों हरिषेण, क्या हो सकता है ? अच्छा, आप सब यहीं रहें, मैं ही उनसे मिलने के....'

सहसा कुमारदेवी को याद हो आया कि चन्द्रगुप्त इस समय यहाँ उपस्थित है और गणपतिनाग द्वारा उसका यहाँ देखा जाना अनिष्टकर होगा। उसे तत्काल सुगंगप्रासाद में पहुँचा देना आवश्यक था।

यवनिका की ओट में जाते हुए उसने चन्द्रगुप्त से मन्द स्वरों में कहा— महाराज, आप अब पधारें। पहले आपको गंगा-तट तक पहुँचा दूँ। वहाँ एक नौका आपको गंगा-पार ले जाने के लिए खड़ी है। जिस सुरंग की राह आप आये हैं उसी के द्वारा सुगंगप्रासाद में पहुँच भी जायेंगे। किसी को पता भी न चलेगा कि आप यहाँ आये थे। तिलभट्टक, आप थोड़ी देर रुककर आइए। इस बीच मैं महाराज को लेकर आगे चलती हूँ। चलिए महाराज !

चन्द्रगुप्त भी कुमारदेवी के पीछे-पीछे यवनिका की ओट हो गया। महल से बाहर जाने के लिए एक सुरंग बनी हुई थी। चन्द्रगुप्त यहाँ उसी में होकर आया था।

मार्ग में कोई कुछ न बोला। दोनो चुपचाप चलते रहे। चन्द्रगुप्त सोचता जा रहा था कि अब क्या करना ठीक होगा। कोई मार्ग उसे दिखाई नहीं देता था। केवल एक बात उसकी समझ में आती थी। क्यों न मगधपति का वध कर डाले ? लेकिन तब लोग उसका तिरस्कार करेंगे। वह विश्वासघाती समझा जाने लगेगा। तब वह लोगों में इतना निरादृत हो उठेगा कि किसी को अपना मुँह भी नहीं दिखा सकेगा।

वैशाली का आक्रमण तो अवश्य होगा। यह जो पीछे-पीछे चल रही है नारी नहीं रणदेवी ही है। अपने स्वप्नों को सार्थक करने के लिए आकाश-

पाताल एक करने की सामर्थ्य इसमें है। यदि इसका सहयोगी बन जाये तो भविष्य बन सकता है। परन्तु पुरुष होकर नारी की सहायता कैसे ले? नारी की सहायता से आगे बढ़ने की अपेक्षा तो कहीं अच्छा है पुनः साकेतपति बन जाना।

तभी कुमारदेवी ने कुछ आगे बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। राजमहल का गलियारा यहाँ समाप्त होता था और यहीं से सुरंग की सीढ़ियाँ आरम्भ होती थीं। दीपों का प्रकाश पीछे छूट गया था, इसलिए इस ओर अँधेरा घना होने लगा था।

चन्द्रगुप्त के कन्धे पर हाथ रखकर कुमारदेवी ने कहा—महाराज, आपको आश्चर्य होगा। मेरी बात सुनकर आश्चर्य हुआ भी होगा। परन्तु हर क्षण मुझे ऐसा लगता है मानो मैं देश के महान भविष्य का निर्माण करने में निमित्त बनने को हूँ। यह अनुभूति ही मुझे हर क्षण प्रेरित करती रहती है। महाराज इसे मेरी अहम्मन्यता और अपनी लघुता न समझ बैठें। कई बार युग स्वयं अपने व्यक्तियों और उनके व्यक्तित्वों का निर्माण करता है, उन्हें अपने साथ लेकर आता है। वे व्यक्ति कुछ कह नहीं सकते, समझा नहीं सकते, केवल देख सकते हैं। मैं भी केवल देख सकती हूँ; देख रही हूँ कि देश का महान निर्माण होगा और मेरे निमित्त से होगा। इस कथन को महाराज अपनी लघुता न समझें, यही मेरा निवेदन है। और आपसे इतना विश्वास तो हम पा ही सकते हैं कि यहाँ की बात यहीं रहेगी, पाटलीपुत्र में इसे कोई जान नहीं सकेगा।

'देवी निश्चिन्त रहें। यहाँ की बात यहीं रहेगी, पाटलीपुत्र में इसे कोई भी जान नहीं सकेगा।'

'और आप हमारा साथ तो देंगे न?'

'यह निर्णय भी मैं वहीं जाकर करूँगा। इस समय मेरी मनःस्थिति ऐसी नहीं कि कोई निर्णय कर सकूँ। मेरा मस्तिष्क काम ही नहीं कर रहा है।'

'लेकिन हमने जो कहा वह याद रहे। आपका निर्णय जो भी हो, हमारा निर्णय तो अटल है और अटल रहेगा।'

चन्द्रगुप्त ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'पुरुषों को जब किसी तेजस्विनी महिला की प्रेरणा में अपनी लघुता

दिखाई देने लगेगी तब यह देश-देश नहीं रह जायेगा, उस समय यह रह जायेगी निरी बंजर धरती। बस, यही मुझे आपसे कहना था। लीजिए, वह तिलभट्टक आ गए।'

दूसरे ही क्षण तिलभट्टक वहाँ आ पहुँचा। चन्द्रगुप्त ने चुपचाप कुमारदेवी को अभिवादन किया और फिर सुरंग की सीढ़ियाँ उतरने लगा।

१४. कुमारदेवी का प्रत्युत्तर

कुमारदेवी को इतना विश्वास तो था कि चन्द्रगुप्त के यहाँ आने की बात किसी को मालूम नहीं होने पायेगी। लेकिन गणपतिनाग के आकस्मिक आगमन से वह अवश्य चिन्तित हो उठी थी। पता नहीं वह कौन-सी समस्या लेकर आया है! समस्या जो भी हो, अब उसे शीघ्रता करनी चाहिए। किसी को भनक पड़े, उसके पहले ही पाटलीपुत्र पहुँच जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया तो उसकी सारी योजना धरी रह जायेगी। कहीं गणपतिनाग को उसकी योजना की गन्ध तो नहीं मिल गई?

यही सब सोचती हुई वह जल्दी-जल्दी लौटी। लौटकर उसने हरिषेण और गणपतिनाग को पास-पास बैठे देखा। वे आपस में वार्तालाप कर रहे थे और वहाँ दूसरा कोई नहीं था।

देखते ही कुमारदेवी समझ गई कि बूढ़ा गणपतिनाग उसे उसके निश्चय से फेरने के ही लिए आया है। ठीक है, उसने मन-ही-मन कहा, देखती हूँ, कौन मुझे अपने निश्चय से विमुख करता है!

पद्मावती का गणपतिनाग अपने जमाने का महान वीर और वीरों में श्रेष्ठ पुरुष माना जाता था। पद, मर्यादा और सम्मान में उसका स्थान प्रवरसेन से भी ऊँचा था। यदि वह चाहता तो आज पाटलीपुत्र उसकी मुट्ठी में होता। उत्तर प्रदेश में होने के कारण उसकी ख्याति भी पर्याप्त थी। वह बड़ा अनुभवी, रणकुशल और विलक्षण राजपुरुष था। विद्यानुरागी और कवियों का आश्रयदाता होने के कारण उसके नाम पर कई काव्य-ग्रन्थों का सृजन भी हुआ था। 'भावशतक' उसी को समर्पित किया गया था। वह रहता था

उत्तर प्रदेश में, लेकिन कहलाता था पश्चिमी मालवे का धरणीपति। यदि वह चाहता तो समूचे उत्तर प्रदेश का अधिपति बन जाता; लेकिन वाकाटक-वंशीय प्रवरसेन के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के बाद सारी परिस्थिति ह बदल गई थी।

गणपतिनाग के कोई पुत्र न होने के कारण उसका जामाता गौतमीपुत्र ही नागों का भी उत्तराधिकारी हुआ; परन्तु उसकी अकाल मृत्यु हो गई। अब बालशिशु रुद्रसेन दोनो कुलों का उत्तराधिकारी था और बूढ़ा गणपति-नाग भी, प्रवरसेन की ही भाँति, उसी के हितों की रक्षा में लगा रहता था; और इसी उद्देश्य से यहाँ वैशाली आया था। पाटलीपुत्र से सन्देश लेकर विज्जका के यहाँ आने के संवाद उसे मिल चुके थे और इसी लिए वह भी भागा चला आया था।

अच्छी बात है, बूढ़ा आया है तो उसके आगे झुका नहीं जायेगा और यदि उसे यहाँ की बातों की गन्ध मिल गई है तो मुक्त भी नहीं रहने दिया जायेगा, फिर परिणाम जो भी हो—यह निश्चय करके कुमारदेवी ने प्रकोष्ठ में प्रवेश किया।

गणपतिनाग उसे देखते ही आसन से उठ बैठा और हाथ जोड़कर अभि-वादन किया। अभिवादनों के पारस्परिक आदान-प्रदान के बाद उसने कहा देवी मुझे क्षमा करें। लेकिन प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण न होता तो मैं इस समय इस प्रकार कदापि न आता। महामात्य हरिषेण से तो मैं क्षमा माँग ही चुका हूँ, अब देवी से भी क्षमा-याचना करता हूँ।

कुमारदेवी एक बार पुनः अभिवादन करते हुए विनयपूर्वक बोली—लेकिन बात क्या है महाराज? स्वयं आपको सहसा क्यों आना पड़ा? क्या आपका सन्देश हमारे लिए मूल्यवान न होता? हम तो आपके सन्देशवाहक को भी उतना ही महत्त्व देते। अस्तु, बताइए बात क्या है? आपको सहसा क्यों आना पड़ा?

'बात बिलकुल छोटी है,' गणपतिनाग ने धीरे-धीरे भूमिका बाँधते हुए कहा, 'फिर भी एक प्रकार से बहुत बड़ी भी है।'

'आप बतायें तो पता चले। आपने कहलवाया था कि प्रश्न वैशाली के

जीवन-मरण का है। तो क्या किसी आक्रमण के समाचार आये हैं?'

'आक्रान्ता तो किसी भी क्षण आ सकते हैं, केवल आपकी ओर से उन्हें अवसर दिये जाने की बात है। इसी लिए मैं यह कहने के लिए दौड़ा आया हूँ कि वैशाली उन्हें किसी प्रकार का अवसर न दे।'

'हम अवसर दें और सो भी कुशान, शक आदि यवनों को—यह तो न कभी हुआ है और न आगे कभी होगा। अच्छा, अब बताइए, दूसरी बात क्या है?'

'इतना विश्वास तो मुझे था ही। वैशाली सदा से स्वतंत्रता के लिए मर-मिटनेवाली नगरी रही है। इसकी यह परम्परा यहाँ के कण-कण में विद्यमान है।'

गणपतिनाग अब भी भूमिका ही बाँधे जा रहा था। उसका चेहरा अत्यन्त भ्रमोत्पादक था। दिखने में एकदम सीधा-सादा, लगभग अनगढ़—कभी विश्वास ही न होता कि यह पुरुष अनेक युद्धों का विजेता, विचक्षण राज-नीतिज्ञ और महान व्यक्ति होगा। ऊपरी सीधेपन के बावजूद अन्दर से वह बड़ा ही तीखा और मन में आई बात को पूरा कर दिखानेवाला था। शरीर से वह बड़ा बलवान, सुगठित और वज्र-जैसा लगता था। अकेले एक सौ योद्धाओं को रोके रखने की सामर्थ्य उसमें थी।

कुमारदेवी उसके बलिष्ठ शरीर को देखती जाती थी और मन-ही-मन कुछ सोचती भी जाती थी। अन्त में उसने कहा—अब यह बताइए कि आप किस लिए आये हैं?

'मैं आया हूँ देवी, इसलिए कि वनस्पर के जमाने में पद्मावती को जो भुगतना पड़ा उसे लोग अभी तक भूले नहीं हैं। नगर तो ठीक, उसने समूचे प्रदेश को तबाह कर डाला था। हम नागों के इष्टदेवता भगवान स्वर्णबिन्दु शंकर का भी उसने अपमान किया। हम ठहरे शेषनाग के कुल के तक्षक लोग। हम सब-कुछ भूल जाते हैं, परन्तु अपमान को किसी भी प्रकार नहीं भूल पाते। अपमान का प्रतिशोध लिये बिना हमें चैन नहीं मिलता। इसी लिए हमारे पूर्वजों ने शकों, कुशानों और यवनों को यहाँ से मार भगाया। लेकिन वे सँपोले अब भी जीवित हैं और मौके की ताक में हैं। केवल आप

के अवसर देने की बात है। हमने पद्मावती का स्वर्ण-शिखरवाले सौधों से शृंगार किया है, आपने वैशाली को भव्यता प्रदान की है—यह सब उनकी आँखों में खटकता है....इसी लिए मैं आपसे यह कहने के लिए आया हूँ कि आइए, हम सब मिलकर मगध को शक्तिशाली बनायें।'

'अभिलाषा तो हमारी भी यही है महाराज!'

'अहा, सुनकर मैं परम सन्तुष्ट हुआ। तो मुझे अब कुछ भी कहना नहीं रह गया। कवयित्री विज्जका सन्देश लेकर आई है। आप उसे ऐसा उत्तर दें जिससे मगध का महत्त्व बना रहे, उसकी महत्ता घटने न पाये। यदि मगध टिका रहा तो हम भी टिके रहेंगे।'

'हम कवयित्री विज्जका को ऐसा ही उत्तर देंगे जिसमें मगध का महत्त्व अक्षुण्ण रहे और पाटलीपुत्र निर्बल न होने पाये।'

'बस, बस! यही तो मैं भी चाहता हूँ। पाटलीपुत्र के हाथ मजबूत रहे तो यहाँ कोई फटकने नहीं पायेगा।'

'इसी लिए तो महाराज,' अब हरिषेण ने, जो अभी तक चुप था, कहा, 'हमने यहाँ से महाराज जयदेव को नैपाल की रक्षा के हेतु भेजा है। वह नैपाल में व्यवस्था स्थापित करेंगे, और शक्तिशाली शासन की नीव रखेंगे। जब तक देश की सभी दिशाएँ दृढ़ न होंगी, आक्रमण का भय बना रहेगा।'

हरिषेण की यह बात सुनकर बूढ़ा चौंका। उसके चेहरे का भाव भी बदल गया। कुमारदेवी ने इसे लक्ष्य किया और वह समझ गई कि गणपतिनाग वैशाली की महत्त्वाकांक्षाओं का सबसे कट्टर शत्रु है।

'शक्तिशाली शासन के सम्बन्ध में आपने क्या कहा?' गणपतिनाग ने पूछा, 'क्या मगध का शासन शक्तिशाली नहीं?'

तिलभट्टक लौटकर आता दिखाई दिया। कुमारदेवी शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। उसने तिलभट्टक को वहीं रुक जाने का संकेत किया।

वह वहीं रुक गया। कुमारदेवी ने धीरे से उससे कुछ कहा और वह लौटकर चला गया।

कुमारदेवी के आते ही गणपतिनाग ने बात के टूटे हुए सूत्र को जोड़ते

हुए कहा—शक्तिशाली शासन की स्थापना के सम्बन्ध में आप कह रहे थे न, महामंत्री ? मगध के ही बारे में वह बात थी न ?

'नहीं !' कुमारदेवी ने दृढ़ और स्पष्ट स्वर में कहा, 'नहीं महाराज ! वह बात मगध के सम्बन्ध में नहीं थी। मगध के मुर्दे में अब नये प्राण ग्रहण करने की शक्ति नहीं रही !'

'मगध का मुर्दा ? यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?' गणपतिनाग का चेहरा कुछ उग्र हो गया था, परन्तु स्वर पहले की ही भाँति शान्त और संयत था। 'यह क्या जयदेव की पुत्री बोल रही है ? विदेशी आक्रान्ताओं को बुलाने की बात, दूसरे कहीं नहीं, क्या वैशाली से ही आरम्भ होगी ?'

'महाराज रुष्ट न हों। पहले हमारी बात तो पूरी सुन लें। उसके बाद आप स्वयं ही कहेंगे कि हम ठीक कह रहे हैं और तब आप स्वयं हमारी सहायता करने आयेंगे।'

'अच्छा, तो आप अपनी बात कहिए। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम शीघ्र ही अपने पूर्वजों के किये-कराये पर पानी फेर देंगे। बड़ी मुश्किलों से तो विदेशियों को निकालकर बाहर किया गया है, लेकिन अभी वे पूरी तरह गये नहीं हैं और न अपने से जायेंगे। परन्तु हम हैं कि जैसे इस बात को भूल ही गए।'

'हम तो इस बात को भूले नहीं हैं महाराज, और न कभी भूलेंगे। लेकिन हम यह भी जानते हैं कि यदि भारतवर्ष को जीना है तो सबसे पहले उसकी संस्कृति को जीना होगा, उसकी देवभाषा को जीना होगा। बिना भाषा का मनुष्य कैसा ? और मनुष्य से विहीन देश कैसा ? देश की संस्कृति को अपने वास्तविक रूप में प्रकट होना चाहिए। यह है हमारा स्वप्न।'

'हमारे सारे प्रयत्न भी तो इसी दिशा में हुए हैं। फिर समझ में नहीं आता कि वैशाली और मगध को आपस में लड़ना क्यों चाहिए ? ये लड़ेंगे तो जियेगा कौन ? वैशाली के लिए भी यह प्रश्न क्या जीवन-मरण का नहीं है ? इस समय वैशाली मगध से युद्ध ठानेगा—कवयित्री विज्जका के यहाँ आने का प्रयोजन यही है। वह तुम्हें टटोलने के ही लिए आई है। मगध छोटा-सा, बित्ते बराबर का रहे, यह किसी को अच्छा नहीं लगता। इसलिए

मगधपति अपने राज्य का विस्तार चाहते हैं। प्रवीर प्रवरसेन ने इसका समर्थन किया है। मैं भी समर्थन करता हूँ। महाराज भवनाग इसके समर्थक हैं। अहिछत्र और मथुरा के यादव भी समर्थक हैं। समस्त नागकुल ने इसका समर्थन किया है। मगधपति के शिशुकुमार और नन्हें रुद्रसेन का हम इसी रूप में लालन-पालन करना चाहते हैं। परन्तु समझ में नहीं आता कि लिच्छवियों को इसका विरोध क्यों करना चाहिए? वे लड़ना क्यों चाहते हैं? लड़ेंगे तो टिकेंगे कितने दिनों? और उसका परिणाम क्या होगा? एक भयंकर गृहयुद्ध छिड़ जायेगा। हो सकता है कि साकेत, कौशाम्बी, विदेह, कोशल तिरुभुक्ति आदि गणतंत्र देर-अबेर-आपको सहायतार्थ आ जमा हों। लेकिन नाग, महाराज प्रवरसेन और अन्य सब राजा मगध की सहायता करेंगे। यह गृहयुद्ध हम सबके विनाश का कारण बन जायेगा। वैशाली तो गणतंत्र को तिलांजली दे ही रही है, तो क्यों न वह मगध को महान बनाने का प्रयत्न करे? हम सब का श्रेय भी इसी में है।'

'महाराज गणपतिनाग!' अब हरिषेण ने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'हम तो भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। एक अखण्ड और शक्तिशाली भारत का निर्माण—यह है हमारी महत्त्वाकांक्षा। पहला प्रश्न है भारत की रक्षा का। अब यहाँ कुशान, शक, यवन आदि कोई विदेशी आक्रान्ता आ नहीं सकते।'

'तुम्हारे कहने से? उन्हें देश से निष्कासित करने में हम नागों को पूरी एक शताब्दी लग गई थी।'

'लगी होगी।' कुमारदेवी ने कहा, 'हम तो एक शक्तिशाली चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना के द्वारा इस काम को एक दशाब्दी में ही पूरा कर लेंगे।'

'लड़की, तुझे मैं क्या कहूँ! तेरा पिता जयदेव होता तो उससे कुछ कहता। मैंने धूप में बाल नहीं सफेद किये। लड़ते-लड़ते ही बूढ़ा हुआ हूँ और अभी तक युद्ध सिर पर मँडरा रहा है।'

'वह तो मँडराता ही रहेगा। जिस देश में छोटी बातों और छोटे प्रदेशों के लिए लोग आपस में झगड़ते रहते हैं, वहाँ से युद्ध का संकट कभी टलने का नहीं। कितना विराट और समृद्ध है हमारा देश, परन्तु इसमें पारस्परिक

कलह और क्षुद्र स्वार्थों का संघर्ष भी कितना तीव्र और व्यापक है? हम इस क्षुद्रतापूर्ण स्थिति को ही बदल देना चाहते हैं। हम सारे देश को एक चक्रवर्ती साम्राज्य के अन्तर्गत संगठित करना चाहते हैं। युद्ध यहाँ हम चाहते ही नहीं। इस देश में अब युद्ध होना ही नहीं चाहिए।'

'हो सकता है, तुम्हारी ही बात सच हो। तुम बच्चे अधिक समझते होगे। मैं तो वृद्ध हुआ।' गणपतिनाग ने मुख्य विषय के रुख को मोड़ते हुए कहा, 'परन्तु मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं समझता हूँ कि तुम मगध को भी यही उत्तर दोगे। मुझे विश्वास हो चला है कि तुम मगध को यहाँ पैर भी नहीं रखने दोगे।'

'जी हाँ, बिलकुल ऐसा ही होगा। हम किसी के आश्रित नहीं। वैशाली अब बिलकुल स्वतंत्र, मुक्त और महान है। हम उसे और भी महान बनाना चाहते हैं।'

'गृहयुद्ध के द्वारा? मंत्रीश्वर, बालकों से भी कहीं घोड़े सँभले हैं?'

'महाराज गणपतिनाग, आप वैशाली के नये अभ्युदय को समझ नहीं सकते। वैशाली के महान प्रतीक का प्रारम्भ हो भी चुका है। पहले प्रतीक का निर्माण हमीं ने किया है। जानते हैं, वह प्रतीक क्या है?'

'नहीं!'

'वह प्रतीक है सिंह पर सवार देवी लक्ष्मी!'

यह कहनेवाली कुमारदेवी के तेजस्वी चेहरे की ओर गणपतिनाग देखता ही रह गया। उसे जो कुछ जानना था वह जान चुका था। उसे विश्वास हो गया कि वैशाली पाटलीपुत्र पर आक्रमण अवश्य करेगी। प्रवरसेन अभी दूर था। उसके पहुँचने तक यदि वह स्वयं मगधपति की सहायता करे तभी पाटलीपुत्र टिका रह सकेगा। यदि वैशाली ने पाटलीपुत्र पर अधिकार कर लिया तो लिच्छवी देशव्यापी बल बन जायेंगे। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद वह थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा।

फिर उसने उठने का प्रयत्न करते हुए कहा—तो मैं चलूँ। मेरी बात आप लोगों को अच्छी नहीं लग रही....

कुमारदेवी ने भीतर के प्रकोष्ठ की ओर दृष्टि डाली। तिलभट्टक अभी

तक लौटकर आया नहीं था। उसने उसे शीघ्र लौट आने क. ताकीद कर दी थी। आता ही होगा। उसने गणपतिनाग को बातों में लगाये रखा।

वह बोली—नागराज, आप जा सकते हैं। परन्तु बाद में आप हमें दोष न दें, इसलिए कहना चाहती हूँ कि हम आपकी वृद्धावस्था को आदर की दृष्टि से देखते हैं। यवनों को आपने गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश से निकाल बाहर किया है। यह कोई सामान्य बात नहीं। इस महान कृत्य के लिए हमारे हृदय में आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धा है। आप महान हैं। वीर हैं। वीरों में श्रेष्ठ वीरवर हैं। गृहयुद्ध से आप का जी घबराता है। गृहयुद्ध हम भी नहीं चाहते। लेकिन यहाँ बौद्धों ने भिक्खुओं की जमातें खड़ी कीं, निर्ग्रन्थों ने त्यागियों की; आपने उग्राति उग्र त्रिशूलपाणि को अपनाया। रक्तरंजित भीषण संग्राम करके आपने देश को मुक्त किया। अब नया युग आया है। हम निर्मित करना चाहते हैं संसार की शोभा। इसी लिए हमने अंगीकार किया है अपनी संस्कृति के प्रतीकस्वरूप भागवत-धर्म को। अब लिच्छवी परमभागवत हैं।

'परमभागवत ? यह क्या है ? यह तो मैं एक नया ही शब्द सुन रहा हूँ !'

'परमभागवत वह है जो अपने जीवन को समर्पित कर उसे पुनः प्राप्त करता है। वह पुनः प्राप्त किया हुआ जीवन सहस्र गुना अधिक बलवान होता है। फिर वह जो भी करता है—चाहे वह अर्जुन का कुरुक्षेत्र का युद्ध हो अथवा द्वारिका का जल-प्रलय सब-कुछ भगवच्चरणों के प्रतिनिधि के रूप में ही करता है। उसका ध्येय होता है संसार को सौन्दर्य से, शोभा से, संस्कृति से, लक्ष्मी से, विद्या और पराक्रम से भर देना। संसार त्यागने के लिए, छोड़े जाने के लिए तो निर्मित हुआ ही नहीं है और न वह निर्मित हुआ है सासारिक क्षुद्रता के लिए। जो अपनी समस्त शक्ति को ससार का शृंगार करने के लिए, उसकी शोभा बढ़ाने के लिए लगाता है और फिर भी यह नहीं मानता कि वह ऐसा कर रहा है, वही परमभागवत है। अपना कहने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं होता और नहीं कुछ ऐसा ही होता है जो उसका अपना न हो। जो भी कुछ है उस सब को वह भव्य और महान बनाने का सतत प्रयत्न करता रहता है और बनाकर छोड़ता है। एक महान सांस्कृतिक

साम्राज्य ताम्रलिप्ति से गान्धार तक और काश्मीर से मालव तक स्थापित होगा, होकर रहेगा; उसकी स्थापना को कोई शक्ति रोक नहीं सकती। उस साम्राज्य की स्थापना के बाद कुशान, यवन, शक, पारसीक कोई भी यहाँ फटक नहीं सकते। यह है हम लिच्छवियों का क़ौल; यही है हमारा स्वप्न और यही है हमारी महत्त्वाकांक्षा। जो इसके बीच में आयेगा, बाधा पहुँचायेगा वह मौत के घाट उतार दिया जायेगा, चाहे वह कितना ही बलवान क्यों न हो। और जो इसे स्वीकार करेगा, इसमें सहयोग देगा वह होगा हमारा परम मित्र। हमारे इस स्वप्न के बीच कोई न आये, आप भी न आयें, यही मुझे आपसे कहना है।'

कुमारदेवी की इस बात की गणपतिनाग पर बड़ी प्रबल प्रतिक्रिया हुई। सम्भवतः उसे उत्तेजित करने और उसकी प्रतिक्रिया को जानने के ही लिए कुमारदेवी ने इतने विस्तार से और इस तरह स्पष्ट शब्दों में ऊपर की बात कही थी। हरिषेण को गणपतिनाग की उत्तेजना और प्रतिक्रिया बहुत ही स्पष्ट रूप में लक्षित हुई।

गणपतिनाग ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा—अरी ओ जयदेव की बेटी, मैं तुझसे क्या कहूँ! तू उम्र में छोटी और अनुभव में कच्ची है। तूने युद्ध अभी देखे ही कहाँ हैं? और यह हरिषेण मंत्री जानता भी है कि यह कर क्या रहा है? इस प्रकार बढ़-बढ़ कर बातें करने से कभी स्वप्न सार्थक हुए हैं? ये लोहे के चने हैं, लोहे के! तू जिस साम्राज्य का निर्माण करना चाहती है वह एक सहस्र युद्धों के बाद भी अस्तित्व में नहीं आ सकता। मगधपति महान है और महान रहेगा। प्रवीर प्रवरसेन ने उसे वचन दिया है, मैंने भी वचन दिया है। कह देना अपने लिच्छवियों से कि मैं वैशाली और पाटलीपुत्र के युद्ध को एक क्षण के लिए भी सहन नहीं करूँगा।

'तो महाराज यह भी समझ लें कि आपके सहन करने और न करने की लिच्छवियों को रत्ती बराबर भी चिन्ता नहीं है। लिच्छवियों ने तो अजातशत्रु को भी देखा है; और ध्वंस के विकराल पुजारियों को भी यहाँ घुटने टेकने पड़े हैं। जो बबूल बोने के लिए यहाँ आये उन्हें मुँह की खानी पड़ी

और आम ही यहाँ लहलहाये हैं। यदि आप हमारे स्वप्नों को समझ सकें तो हमारे हैं; न समझ सकें तो फिर मुझे दोष न दें, क्योंकि तब आप भी नहीं रह सकेंगे !'

'ऐसी धमकियाँ और गर्वोक्तियाँ मैं बहुत सुन चुका हूँ कुमारदेवी ! तुम भी कान खोलकर सुन लो कि मैं रहूँगा और यहीं रहूँगा और मेरे रहते वैशाली भगवती भागीरथी के उस पार बढ़ने नहीं पायेगी, उसे इसी पार रहना होगा। अच्छा, तो मैं चला....।' गणपतिनाग उठकर खड़ा हो गया। उसने अपनी लम्बी कृपाण को सँभाला। दोनो हाथ जोड़ते हुए उसने कहा, 'हरिषेण मंत्री, तुम कवि हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ। कविता केवल कहने और सुनने में अच्छी लगती है....'

'नहीं महाराज गणपतिनाग, उसे जीवन में उतारना भी होता है। जब जीवन और कविता अलग-अलग हो जाते हैं तब देश मर जाता है, प्रजा कुप्रजा हो जाती है। जीवन और कविता को साथ बनाये रखनेवाले स्वप्न-शिल्पी होते हैं।' हरिषेण उसकी बात काटते हुए एक ही साँस में कह गया और फिर कुछ रुककर बोला, 'युग का परिवर्तन करनेवाले बल अपने साथ युग के पुरुषों को भी लाते हैं, मैं या आप नहीं। और यह काम मेरा या आपका है भी नहीं। युग स्वयं अपना काम करता है। युग की पुकार को सुननेवाले भी होते हैं और कुमारदेवी को अहर्निश युग की पुकार सुनाई पड़ती रहती है....'

'पुकार सुनाई पड़ती रहती है ? तब तो किसी भिषग्वर को दिखाना चाहिए मंत्रिवर ! कहीं मस्तिष्क में कोई रोग तो नहीं हो गया ? उन्माद के लक्षण हों और आप उन्हें स्वप्न, महत्त्वाकांक्षा और युग की पुकार समझकर बैठे रह जायें।' आखिरी चोट करके बूढ़ा उठ खड़ा हुआ। अपने जान तो उसने करारी चोट कर दी थी।

वह दो डग आगे बढ़ा।

परन्तु जिस द्वार से होकर भीतर आया था, उसे देखकर वह चौंक पड़ा। सामने का द्वार बन्द हो गया था।

फिर भी विस्मित होता हुआ वह आगे बढ़ा। जब द्वार को बन्द पाया

तो वह पीछे लौटने को हुआ। उसी समय उसे वहाँ प्रवेश करते हुए तिल-भट्टक का स्वर सुनाई दिया।

वह कह रहा था—नागराज, आप इधर चले आइए। कम-से-कम हमारे आतिथ्य की विडम्बना तो न कीजिए। मेरा निवेदन यह है कि इस समय आप लौट नहीं सकते।

गणपतिनाग मारे आश्चर्य के स्तम्भित ही रह गया। उसने मुड़कर हरिषेण से कुछ कहना चाहा। लेकिन मुड़ने पर उसका आश्चर्य और भी बढ़ गया।

वहाँ न हरिषेण था और न कुमारदेवी। वह समझ गया कि उसे रोक-कर रखने के ही लिए यह कारस्तानी की गई है। कुमारदेवी ने तिलभट्टक को दूर रुकने का संकेतकर मन्द स्वर में जो कुछ कहा था उसका रहस्य अब उसकी समझ में आया। तिलभट्टक इस समय उसे रोकने के ही लिए आया था। उसके पीछे सैनिक भी अवश्य होने चाहिए।

यह सब सोचकर गणपतिनाग ने ऊँचे और तीखे स्वर में कहा—महा-मंत्री हरिषेण, यह आपको शोभा नहीं देता।

लेकिन किसी ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया। केवल उसके शब्द उस खाली प्रकोष्ठ में गूँजकर रह गए।

उसने मुड़कर देखा तो दरवाजे की राह बहुत-से सशस्त्र सैनिक आते दिखाई दिये। वैशाली का सेनापति श्रीषेण भी उन सैनिकों के पीछे इसी ओर चला आ रहा था।

एक क्षण के लिए तो सैकड़ों युद्धों का वह वीर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने स्थिति को सँभाल लिया। चीखने-चिल्लाने और तेवर दिखाने का तो कोई अर्थ होता भी नहीं; इसलिए उसने विनोदपूर्ण स्वर में कहा—अरे तिलभट्टक, मैं क्या जानता था कि तुम लोग बिना आतिथ्य के मुझे जाने नहीं दोगे। तुम आतिथ्य करना चाहते हो न? तो चलो, किधर चलना होगा?

तब गणपतिनाग को आगे करके सब अन्दर के प्रकोष्ठ में चले गए।

१५. सब सोते ही रहे !

तिलभट्टक ने गणपतिनाग को अन्दर के एक प्रकोष्ठ में जाने के लिए कहा। बूढ़ा असमंजस में पड़ गया। वह अकेला ही आया था। जल्दी में दौड़ा आया था। समय-कुसमय का विचार किये बिना चला आया था। आना अपरिहार्य भी था। यह देखना आवश्यक था कि वैशाली आक्रमण न कर दे। वैशाली कुछ देर रुक जाती तो फिर चिन्ता की कोई बात न थी। यदि वह वैशाली का विश्वास सम्पादित कर लेता तो उसका आना सफल हो जाता और वैशाली के सम्भावित आक्रमण को रोका जा सकता था। इसी लिए वह अकेला आया था। पद्मावती में भी उसके यहाँ आने की जानकारी केवल दो-एक सेनानायकों को छोड़ और किसी को न थी। अब यदि वह यहाँ रोक लिया गया तो कुछ समय तक किसी को पता भी न चलेगा कि वह कहाँ है। इसी लिए वह थोड़ा चिन्तातुर हो गया था।

कुमारदेवी उसे बड़ी भयंकर प्रतीत हुई। वह विद्युत् वेग से प्रहार करने के पक्ष में थी। त्वरित गति से कार्य करने में वह उसे प्रवीण दिखाई दी। लेकिन इस समय उससे कुछ कहना-सुनना व्यर्थ था। तिलभट्टक के साथ उलझने से भी कोई लाभ नहीं था। वह बेचारा तो हुक्म का चाकर था। इसलिए गणपतिनाग ने चुपचाप आज्ञापालन करना ही उचित समझा।

वैसे बूढ़ा महा विचक्षण पुरुष था। उसने सारी परिस्थिति पर गम्भीरता से विचार किया और इस नतीजे पर पहुँचा कि सारी बात को विनोदपूर्वक लेने में ही उसके गौरव क रक्षा हो सकती है। लेकिन साथ ही उसे यह चिन्ता भी सता रही थी कि अब क्या होगा? वैशाली ने पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर दिया तो मगध की रक्षा कैसे होगी, कौन पाटलीपुत्र को बचायेगा? वाकाटकराज प्रवरसेन के साथ मिलकर उसने जिस भारतव्यापी राज्य की स्थापना के स्वप्न देखे थे वह स्वप्न उसे छिन्न-भिन्न होता प्रतीत हुआ। इसके लिए उन्होंने कितनी तैयारियाँ की थीं? इसी के लिए उन्होंने विदेशियों को भारत से मार भगाया था। उसके तुरत बाद यदि मगध और पाटलीपुत्र पर अपना अधिकार कर लेते तो आज यह दिन ही क्यों देखना पड़ता! उस समय

ढील दे गए, उसी का आज यह परिणाम भुगतना पड़ रहा था। इस बीच वैशाली को समय मिल गया और उसने अवसर से लाभ उठाया। उधर गौतमीपुत्र की सहसा मृत्यु हो गई, उन्हें रुकना पड़ा और कुमारदेवी विद्युत् वेग से आगे बढ़ आई। अब वह आगे और निरन्तर आगे ही बढ़ती चली जायेगी। गणपतिनाग को वह सब तरह से भयंकर लगती थी। उसका रूप भयंकर था, तेजस्विता भयंकर थी, वाणी भयंकर थी—सभी कुछ भयंकर था।

इस तरह की बातें सोचते हुए उसने प्रकोष्ठ में चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा। अन्दर सुगन्धित तेल के दीपक जल रहे थे। चन्दन के आसन थे। चारों ओर चीनांशुक के सुन्दर परदे लटके हुए थे। सुनहरे-रुपहले मयूर शिल्पाकृतियों में खचित थे। सोने के पींजड़ों में रंग-बिरंगे पक्षी मधुर स्वरों में गा रहे थे। अतिथिभवन की साज-सज्जा में कोई कमी नहीं थी। यह सब देखकर बूढ़ा जैसे आनन्दित हो उठा और प्रसन्न स्वर में बोला—तिलभट्टक, सुख-सुविधा से पूर्ण इस प्रकोष्ठ से जाने की तो कभी मेरी इच्छा ही न होगी। भय है, मेरा आतिथ्य करते-करते कहीं तुम थक न जाओ!

इतने में कुमारदेवी मुस्कराती हुई वहाँ आई और उसने कहा—नहीं महाराज, हम कभी नहीं थकेंगे। आपने जीवन में सैकड़ों युद्ध किये हैं, हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि अब कुछ दिन आप यहीं विश्राम करें।

'अरी पुत्री, कुछ ही दिन क्यों, मैं तो कई महीनों तक यहाँ से जाने का नाम न लूँगा। ओह, कितना थक गया हूँ! बड़ा अच्छा हुआ, तुम लोगों को मेरे आतिथ्य की सूझ गई। लेकिन यह सुझाया किसने? हरिषेण मंत्री ने?'

इस बीच हरिषेण भी वहाँ आ पहुँचा। गणपतिनाग के अन्तिम वाक्य को सुनकर उसने कहा—नहीं महाराज, मुझ कवि की इतनी सामर्थ्य कहाँ और न इतना साहस ही है। सिंहवाहिनी लक्ष्मी को जिसने वैशाली का प्रतीक बनाया, उसी देवी का यह काम है। मुझे तो ऐसी बात सुझाई ही नहीं दे सकती!

'अच्छा, ऐसी बात है! तब तो वाह बेटी, वाह! तूने महाराज जयदेव का नाम उजागर किया! बेटा कहो, बेटी कहो, एक तू ही बची है और कुल-

परम्परा तथा आगन्तुकों के आतिथ्य को निभाना अब तेरा ही काम है। विवाहोपरान्त अवश्य तेरे माथे से यह भार उतर जायेगा। किसी को ढूँढ़ा भी है? चन्द्रगुप्त-जैसा, दूसरों के सहारे पर जीनेवाला, कोई मिल जाये तो क्या कहने! उसके कुल-शील की जानकारी तो तुझे भी होगी ही। कहते हैं कि वह अपने वंश-गौरव से नन्द-कुलवालों का भी मुख उज्ज्वल कर सकता है। तुम दोनो की जोड़ी बुरी नहीं रहेगी।'

बूढ़े के परिहास में विष-बुझे तीरों की तीक्ष्णता और दाहकता थी। परन्तु कुमारदेवी के पास इन व्यर्थ की बातों को सुनने का अवकाश नहीं था। उसने यही सोचा कि बूढ़ा इस प्रकार बातों में उलझाये रखना चाहता है, जिसमें विलम्ब हो जाये और वैशालीवाले पाटलीपुत्र पर तत्काल आक्रमण न कर सकें। इसलिए वह अभिवादन करती हुई उठ खड़ी हुई।

'जाना चाहती हो बेटी? हाँ-हाँ, अवश्य जाओ। तुम्हारे सिर अनेकों काम होंगे। जोड़ा मिलाने के लिए भी तो किसी को खोजना होगा। जाओ, मिला ही आओ मेल! क्या आक्रमण आज ही कर रही हो?'

'परन्तु आपको क्या आनन्द आयेगा? आप तो यहाँ बैठे होंगे!'

'कोई हर्ज नहीं। तुम देखना तो सही। आज राजा, कल भिखारी, परसों बन्दी—यह तो सृष्टि का नियम चलता ही रहता है।'

कुमारदेवी ने बूढ़े से कुछ न कहा। वह लौट पड़ी। जाते-जाते उसने तिलभट्टक से कहा—तुम तो हो ही, श्रीषेण भी हैं। देखना, अतिथि को किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये। आतिथ्य हमारी परम्परा के अनुरूप ही होना चाहिए।

'अरी बेटी, यहाँ कष्ट किस बात का? सब आनन्द-ही-आनन्द है। लगता है, जैसे पद्मावती के अपने ही राजमहल में बैठा हूँ। हरिषेण मंत्री, आप भी जा रहे हैं न? जाइए, अवश्य जाइए; कहीं लड़कों से भी घोड़े सँभले हैं!'

कुमारदेवी और हरिषेण वहाँ से चुपचाप और शीघ्रतापूर्वक चले गए। अब उन्हें सारा काम विद्युत् वेग से पूरा करना था। बूढ़े को यहाँ मूँद ही दिया था, उसकी ओर से कोई डर नहीं रह गया था। नाग-कुल शान्त रहेगा। प्रवरसेन दूर था। वैशाली को तत्काल आक्रमण कर देना चाहिए।

यदि गणपतिनाग मुक्त होता तो अवश्य सेना लेकर पाटलीपुत्र के सहायतार्थ दौड़ा आता, सारा नागकुल उठ खड़ा होता, अहिछत्र, मथुरा और चम्पावती तक का प्रदेश सिर उठा लेता। लेकिन इस बूढ़े को बन्दी बना लेने से इस ओर की पक्की मोरचेबन्दी फिलहाल तो हो ही गई थी। बाकी इन सब को परास्त तो तभी किया जा सकता है जब पाटलीपुत्र के वज्रोपम दुर्ग पर अधिकार हो जाये। हजार टक्करें झेलकर भी दुर्ग अभी तक मजबूत था। पाटलीपुत्र के इस दुर्ग का निर्माण भगवान कौटिल्य ने स्वयं किया था। वह निरे वज्र का बना था। जिसका उस दुर्ग पर अधिकार हो जाता उसकी विजय निश्चित थी। वह दुर्ग में बैठा लाखों सैनिकों के प्रबल आक्रमण का महीनों तक प्रतिरोध कर सकता था।

वैशाली को तत्काल उस दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित कर लेना चाहिए।

हरिषेण और कुमारदेवी तड़ित् वेग से राजप्रासाद के अन्दर आये। आते ही उन्होंने यहाँ की व्यवस्था आरम्भ कर दी। सबसे पहले उन्होंने सेनापति श्रीषेण को बुलवाया। यहाँ का सारा उत्तरदायित्व उसे सौंपा जाने को था।

'श्रीषेण!' कुमारदेवी के शब्द संक्षिप्त, त्वरित और निश्चयात्मक थे। 'सारी बात को ठीक से समझ लीजिए। जरा-सी भी गफलत हम लोगों के विनाश का कारण बन जायेगी; इसलिए सतत जाग्रत रहें। किसी पर विश्वास न करें। एक ही वार में दो टुकड़े करने की भाँति यदि शीघ्रता नहीं की गई तो हमारी सारी योजना पर पानी फिर जायेगा। यह कोई सामान्य युद्ध नहीं है। यहाँ के सारे कामों और उत्तरदायित्वों को आप अच्छी तरह समझ लीजिए, क्योंकि कल हम यहाँ नहीं होंगे।'

श्रीषेण अपने उत्तरदायित्व की गुरुता से अवगत होता हुआ बोला—लेकिन देवी, मैं भी तो साथ चलूँगा। हम सेना ही साथ नहीं ले जा रहे। मेरे विचार में तो सेना लेकर ही चलना चाहिए।

'सेना तो अवश्य साथ जा रही है, लेकिन बड़ी सेना नहीं। छोटी और शक्तिशाली सेना, जिसमें रणनिपुण, कसे हुए लिच्छवी सैनिक होंगे। सेना-

पति एक भी साथ नहीं जा रहा। वे यहीं रहेंगे, क्योंकि हम यह प्रकट नहीं करना चाहते कि सेना जा रही है। आपको दिन में दसियों बार मगध सेनापति कुंजरक से और कवयित्री विज्जका से मिलना होगा। जब-जब आप उनसे मिलें यही कहें कि लिच्छवी बड़े भयंकर हैं। गणतंत्र के लिए मरने-मारने की बातें वे अब भी करते हैं। हरिषेण मंत्री घर-घर से लिच्छवियों को बुलाते हैं, समझाते और मनाते हैं। कुमारदेवी नागरिकों से विचार करने के लिए कहती हैं। गणतंत्र जब छोड़ा जा रहा है तो मगध के शासन को स्वीकार करना ही श्रेयस्कर है, आवश्यक भी है। लेकिन वर्षों से चली आती प्रथा को छोड़ना और बदलना सहज नहीं होता। ऐसा करते हुए लिच्छवियों के प्राणों पर बीत रही है। लिच्छवी तो उतावले और असहिष्णु होते ही हैं। उन्हें उत्तेजित होते देर नहीं लगती। देवी को उन्हें समझाने और अनुकूल करने में समय लग रहा है। धीरे-धीरे सारा काम हो रहा है। समय अवश्य लगेगा, परन्तु युद्ध भी अवश्य रुक जायेगा। लिच्छवी अनुकूल उत्तर दें, इसी दृष्टि से सारे प्रयत्न किये जा रहे हैं। तुम सब को यही बात समझाना। इन दिनों को साधारण दिवस नहीं, युग-परिवर्तनकारी महाकाल का संकेत ही समझना। हरिषेण और कुमारदेवी यहाँ नहीं हैं, इस बात का पता किसी को भी लगने न पाये। यदि मगधवालों को इस बात की जानकारी हो गई तो हमारी सारी बाजी उलट जायेगी। सुन्दर वर्मा वहाँ और सेनापति कुंजरक यहाँ बेखबर सोये पड़े रहें, ऐसा हमें करना होगा। उन्हें भुलावे में डालने के लिए आप और क्या करेंगे?'

श्रीषेण को सहसा कोई उत्तर नहीं सुझाई दिया।

'श्रीषेण, आपने रणक्षेत्र अवश्य देखे हैं, परन्तु युद्ध नहीं देखा। महामंत्री, आप इन्हें बताइए कि जब ये कुंजरक से मिलने जायें तब और क्या करें।'

'श्रीषेण,' हरिषेण ने कहा, 'जब तुम कुंजरक से मिलने जाओ तो तिलभट्टक से कह जाना कि वह तुम्हारे पास लगातार सन्देशवाहक भेजता रहे। सन्देश में कहा जाये कि "देवी आपको बुला रही हैं; बहुत आवश्यक कार्य है। अति शीघ्र आकर मिलिए।" यह इसलिए कि किसी को सन्देह नहीं हो कि हम यहाँ नहीं हैं। यह हमेशा याद रखना कि शीघ्रता ही हमें बचा सकती है

और शीघ्रता ही हमें मार भी सकती है। हमारी शीघ्रता बचायेगी, शत्रु की शीघ्रता मारेगी। शीघ्रता से चलनेवाले को मार्ग में पड़ा एक कंकर भी नहीं सुहाता। शंका को निर्मूल करने के लिए और शत्रुओं को बेखबर रखने के लिए तुमसे और भी जो कुछ करते बने अवश्य करना।'

यह सुनकर श्रीषेण के मुख से आश्चर्योद्गार निकल पड़ा। उसने अनुभव किया कि मेरे पास शस्त्र हैं और मैं उनका उपयोग करना जानता हूँ, परन्तु यह हरिषेण तो शस्त्रों को निरा काठ-कबाड़ बना देता है। उसे पहली बार इस बात की प्रतीति हुई कि रणनीति से कहीं बड़ी कूटनीति होती है। मगध के सेनापति को बेखबर सोते रखना साधारण बात नहीं है।

'और देखो, सेनापति श्रीषेण, इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त के हीनकुल में उत्पन्न होने के सम्बन्ध में भी तुम कोई विश्रम्भकथा कवयित्री विज्जका से अवश्य कहना। इस तरह की बातों में विज्जका की बड़ी रुचि है। वह चन्द्रगुप्त को हीनकुलोत्पन्न सिद्ध करना चाहती है। बात तुम इस तरह करना मानो वह अकेले विज्जका के ही लिए है। वह वैर से प्रेरित होने के कारण स्वयं उसका प्रचार करेगी; उसका सारा ध्यान उस ओर बँट जायेगा। बस, थोड़े ही दिनों की तो बात है। लेकिन इतना ध्यान में रखना कि ये दिन नहीं, युग हैं और युगों के जितना ही इन दिनों का महत्त्व है।' कुमारदेवी ने कहा।

'अच्छा, अब सावधान होकर महामात्य हरिषेण के आदेश को सुनो।' हरिषेण ने शान्त, गम्भीर स्वर में कहा, 'महामंत्री आदेश देते हैं। हमने लिच्छवियों को तैयार तो किया है। मौन रखने के महत्त्व को लिच्छवी समझते भी हैं। हम सन्निपात भेरी बजवा नहीं सकते, बजायेंगे भी नहीं। युद्ध के सर्वथा नये प्रतीक की सृष्टि करनी की है। तुम उस प्रतीक से अवगत तो हो न?'

'हाँ देव, मैं जानता हूँ। प्रत्येक लिच्छवी योद्धा, वह कहीं भी क्यों न हो, एक दूसरे के कन्धे को छूता चले और सब जान जायेंगे कि युद्ध की पुकार हुई है और सूर्यास्त के पहले ही निकल जाना होगा। एकदम मौन रखना होगा। किस रास्ते जाना होगा, यह सबको पता है। इसकी जानकारी सबको पहले ही दी जा चुकी है।'

'इसी लिए हम शंख नहीं फूँकेंगे, भेरी नहीं बजायेंगे, डिंडिमिका-घोष भी नहीं करेंगे।' कुमारदेवी ने कहा, 'लेकिन फिर भी डिंडिमिका-घोष आपको अवश्य करना होगा। जब हम चले जायें तो इस आशय का डिंडिमिका-घोष करें कि नीलपद्मभवन के विशाल मैदान में नाट्य-महोत्सव हो रहा है, सभी लिच्छवी उसमें सम्मिलित हों। तात्पर्य यह कि युद्ध का वातावरण कहीं दिखाई न दे, सर्वत्र राग-रंग और मौज-शौक का ही वातावरण बना रहे। यह भी आवश्यक है कि उस महोत्सव में यहाँ बचे हुए सब लिच्छवी सम्मिलित हों, क्योंकि संख्या का भी बड़ा महत्त्व है।'

'हाँ देवी!' श्रीषेण का आश्चर्य बढ़ता ही जाता था।

'सबसे अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि कल हम यहाँ नहीं होंगे। मैं नहीं हूँगा और देवी भी नहीं होंगी। वहाँ से विजय-लाभ करके लौट पायेंगे या नहीं इसका सारा दारोमदार यहाँ आपके द्वारा रहस्य को सुरक्षित रखने पर निर्भर करेगा।'

'मैं देव को विश्वास दिलाता हूँ कि यहाँ कोई भी कुछ नहीं जान सकेगा।'

'बस, तो हमें इतना ही कहना था। गणपतिनाग यहाँ हैं। उनके आतिथ्य में किसी तरह की न्यूनता न होने पाये, अर्थात् उन पर चौकी-पहरा बराबर रखा जाये। अब आप जा सकते हैं। तिलभट्टक को भेज दीजिए तो उन्हें भी ये सारी बातें समझा दी जायें।'

श्रीषेण प्रणाम करके चला गया। थोड़ी देर में तिलभट्टक आ पहुँचा। वह जानता था कि पाटलीपुत्र पर आक्रमण किया जायेगा, परन्तु वह इतने शीघ्र होगा, इसकी तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। यहाँ उसने सारा काम विद्युत् गति से नियोजित होते देखा। वह डरा कि कहीं यह जल्दी अव्यवस्था और अराजकता का कारण न बन जाये। पता नहीं चन्द्रगुप्त ने वहाँ जाकर क्या किया! वह क्या कर सकेगा, इसकी जानकारी भी उसे नहीं थी। यदि मगध सेनापति को इस बात की जरा-सी भी गन्ध मिल गई तो न जाने क्या होगा? क्या तब वह वैशाली पर आक्रमण करके उसको ईंट-से-ईंट नहीं बजा देगा? और तब पाटलीपुत्र के सहायतार्थ दूसरे भी दौड़ पड़ेंगे और युद्ध को

सारी मोरचेबन्दी ही बदल जायेगी। अच्छा-खासा गृहयुद्ध छिड़ जायेगा। सब एक दुष्चक्र में फँस जायेंगे। इतनी जल्दबाजी उसे दुस्साहस लग रही थी।

वह आया, अभिवादन करके खड़ा हुआ और एकदम प्रस्तुत प्रसंग पर बात आरम्भ हो गई।

'तिलभट्टक, चन्द्रगुप्त को जो करना हो करता रहे....'

'वह और तो कुछ करेगा नहीं देवी, परन्तु हमारी त्वरा उसके लिए असहायक ही सिद्ध होगी। वह मौन धारण किये होगा, क्योंकि मौन उसके हित में भी है। हमारे आक्रमण की वहाँ किसी को खबर नहीं हुई होगी। चन्द्रगुप्त पर इतना विश्वास तो किया ही जा सकता है।'

'इतना सब-कुछ होते हुए भी उसे जो करना हो, भले ही करे। इस समय स्वयं भगवान महाकाल हमारी सहायता कर रहे हैं। उन्होंने बूढ़े गणपतिनाग को हमारे यहाँ भेज दिया। हमने उसे यहीं रोक लिया। अब सारा नागकुल सोया पड़ा रहेगा। हमें अवसर से तत्काल लाभ उठा लेना चाहिए। स्वयं महाकाल हमारे अनुकूल हैं और हमारी विजय होकर रहेगी। लेकिन समय हमारे पास बहुत कम है। मेरी तो ऐसी धारणा है कि या तो दो-चार दिन में हम पाटलीपुत्र पर अपना अधिकार कर लेंगे या जंगलों में भटकते होंगे। लेकिन जब ऊखली में सिर दे ही दिया है तो मूसलों से क्या डरना! भगवान महाकाल ही हमें अनुप्राणित कर रहे हैं; फिर भी जंगलों में भटकना ही पड़ गया तो हम उसके लिए भी तैयार हैं। हरिषेण तैयार हैं, क्योंकि वह कवि हैं। मैं तैयार हूँ, क्योंकि स्वप्न मेरा है, महत्त्वाकांक्षा मेरी है। तुम तैयार हो, क्योंकि यह जन्मभूमि तुम्हारी है। श्रीषेण तैयार है, क्योंकि वह जवानी के जोश में है। कल रात में हम यहाँ नहीं होंगे। केवल तुम होगे, श्रीषेण होंगे, कुछ सेनानायक और सैनिकों की भीड़ होगी। परन्तु सभी समर्थ लिच्छवी यहाँ से जा चुके होंगे। उस समय निर्मित होते हुए इतिहास को तुम्हें सँभालना होगा। सँभाल तो सकोगे न?'

'हाँ देवी, प्राण देकर भी हम इतिहास की उन घड़ियों को सँभाल लेंगे। लेकिन मेरी एक शंका है देवी। कहीं हम बहुत जल्दबाजी तो नहीं कर रहे?'

'जल्दबाजी ? नहीं तिलभट्टक, नहीं! जल्दबाजी बिलकुल ही नहीं। काफी देर हो गई है। तुमने वहाँ बहुत दिन लगा दिये।'

'इससे भी एक लाभ ही हुआ है देवी। काचदेव वहाँ मंत्रगुप्त का विश्वास प्राप्त कर सका है। यह स्वयं मैंने अपनी आँखों देखा है। वह हमारे अभियान में बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।'

'तब तो जल्दबाजी और भी नहीं हो रही है तिलभट्टक, उलटे कुछ देर ही हो गई है। गणपतिनाग जब तक यहाँ है तब तक यह काम हुआ तो हो जायेगा, उसके बाद असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य समझना चाहिए। तुम्हें यहाँ सतत जागरूक रहना होगा। हाँ, एक काम अभी तत्काल कर डालना चाहिए। गणपतिनाग जिस अश्व पर सवार होकर आया है, उसी अश्व को लेकर हमें एक सन्देशवाहक को वहाँ इसी समय भेज देना चाहिए। यह लो उसके लिए मुद्रा....' कुमारदेवी ने एक राजमुद्रा तिलभट्टक को देते हुए कहा, 'हमारा एक सन्देशवाहक मुद्रा लेकर अभी चला जाये।'

सन्देशवाहक भेजने का अभिप्राय न हरिषेण को समझ में आया न तिलभट्टक को।

'क्या वहाँ सन्देशवाहक भेजा जायेगा ?'

'सन्देश क्यों, यही तुम जानना चाहते हो न ?' कुमारदेवी ने कहा, 'सन्देश इसलिए कि हम गणपतिनाग को यहाँ हमेशा के लिए रोककर नहीं रख सकते। अन्तिम निर्णय तो एक युद्ध के द्वारा ही होगा। परन्तु नागराज सहसा विषम रोग से आक्रान्त हो गए हैं। उनकी चिकित्सा के लिए पद्मावती के भिषग्वरों की दौड़ ग्रामीण जनता के मनोविनोद का कारण बन सकती है। इस बीच इतिहास का निर्माण हो जायेगा। प्राप्त भी शक्ति से किया जाता है और संचित भी शक्ति से ही होता है। फिर तो जैसी हमारी शक्ति और जैसी हमारे स्वप्न की महानता !'

'लेकिन देवी....'

'अब लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। समय पूरा हो गया है। उचित अवसर यही है। शंका नहीं। अविश्वास नहीं। मन में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं। एक-एक क्षण एक-एक युग के समान है। हमने कदम बढ़ा दिये

हैं। लेकिन तुम कहते हो कि काचदेव उपयोगी सिद्ध होगा, वह किस प्रकार? उसने विश्वास कैसे अर्जित किया है?'

'उसने महाराज चन्द्रगुप्त और आपके साथ उनके सम्बन्धों के विषय में फरियाद की है।'

'अरे, फरियाद की है? किससे? मंत्रगुप्त से?'

'हाँ देवी, उसकी यह शिकायत मंत्रगुप्त को बड़ी स्वाभाविक भी लगी।'

'परन्तु काचदेव को इसकी प्रेरणा किसने दी? तुमने?'

तिलभट्टक ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'वाह भाई, तुम भी खूब हो! मंत्रगुप्त को ऐसी बात स्वाभाविक लगनी भी चाहिए, लगेगी ही। वह इससे अवश्य लाभ उठायेगा।'

'काचदेव पर उसका विश्वास है, आगे चलकर वह उसे महत्त्व देना चाहता है, यह सिद्ध करने के लिए, कहते हैं कि मंत्रगुप्त ने काचदेव को राजप्रासाद का प्रमुख द्वारपाल नियुक्त किया है!'

'यह तो बहुत अच्छी खबर है तिलभट्टक! तब तो समझना चाहिए कि काम बन गया। महाकाल ही हमें प्रेरित कर रहा है। अब शीघ्रता करनी चाहिए।'

'एक बात और भी उल्लेखनीय है। काचदेव के मन में प्रतिहिंसा है बड़ी ही उग्र प्रतिहिंसा। वह अपने दादा की मृत्यु का प्रतिशोध लेना चाहता है। व तो कोई ऐसी युक्ति भिड़ाना चाहता था कि सब सोये रह जायें, हम भी, और साकेत के सेन सुगंगप्रासाद पर अपना अधिकार कर लें।'

'अब तुम यहाँ अभी तो डिंडिमिका-घोषणा करवाओ। क्या घोषणा कराओगे?

'यह कैसा रहेगा देवी, कि लिच्छवी नर-नारी सब सुनें : नीलपद्मभवन के सामनेवाले विशाल मैदान मे, कल रा को, महान नाट्य-महोत्सव होगा; सब उसमें सम्मिलित हों; कोई उसे देखे बिना न रह जाये; सब इस घोषणा को सुनें।'

'ठीक, बिलकुल ठीक। और गणपतिनाग को उसके भिषग्वर देखने के लिए आयें तब तक सँभाले रहना। भिषग्वरों से कहना कि इस समय तो महा-

राज कुछ ठीक हैं, परन्तु उन दिनों सहसा उन्माद-ग्रस्त हो गए थे। जिस-तिस को कृपाण से मारने दौड़ते थे। आकस्मिक उन्माद हो गया था। अब शान्त हुआ। इस प्रकार भिषग्वरों को उसके उन्माद के कारणों का खोज करने में लगा देना। बस, इतना ही मुझे कहना है।'

तिलभट्टक प्रणाम करके विस्मित होता हुआ वहाँ से चल दिया। वह मन-ही-मन सोचता जा रहा था कि नर योद्धाओं का युग समाप्त और नारी योद्धाओं का युग आरम्भ हो गया है।

थोड़ी देर बाद, जैसे ही प्रभात हुआ, डिंडिमिका-घोषणा सुनाई दी और सारी वैशाली नगरी आनन्द और उल्लास से भरकर डोल उठा।

उनकी इस उत्सवप्रियता को कवयित्री विज्जका ने भी देखा।

और लिच्छवी, जो भी जहाँ था, खेत में, जंगल में, पण्यवीथिका में, जलागार में, उत्सव में, घर में, सर्वत्र इस उत्सव के लिए एक-दूसरे का अभिनन्दन-सा करता हुआ, एक-दूसरे के कन्धे को छूकर जल्दी-जल्दी चला जा रहा था।

वास्तव में वैशाली के लोग उत्सवप्रिय हैं, विज्जका को विश्वास हो गया कि ये लोग युद्ध नहीं कर सकते, आक्रमण करना इनका काम नहीं, इन्हें तो अपने राग-रंग और मौज-शौक से ही फुर्सत नहीं।

१६. सुगंगप्रासाद में

सुगंगप्रासाद, अनेक शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी, समय के सारे चिह्नों को लिये हुए, उसी दम-खम से खड़ा था। पाटलीपुत्र का दुर्ग भी, अनेक परिवर्तनों के बावजूद, अपनी वज्र-जैसी अभेद्यता को बनाये हुए था। इस बीच वैशाली और मगध में अनेक युद्ध हुए थे और प्रत्येक युद्ध वहाँ की धरती पर अपने अविस्मरणीय स्मारकों को छोड़ गया था।

कितने ही चिह्नों को स्पष्ट रूप से देखा भी जा सकता था। ये चिह्न उस जमाने के भीषण युद्धों की याद ताज़ा कर देते थे। कुछ स्मारक अस्पष्ट और अदृश्य भी थे और उन्हें केवल जाननेवाले ही जानते थे।

मगध और वैशाली के पुरातन युद्धों का एक ऐसा ही अदृश्य स्मारक गंगा के इस पार, नदी-तट से आरम्भ होकर सुगंगप्रासाद के भीतर तक चला गया था। यह एक सुरंग थी, जिसे वैशालीवालों ने किसी युद्ध के समय तैयार किया था। नौका के द्वारा गंगा-पार करके आदमी इस सुरंग में अलोप हो जाता था। इसकी जानकारी वैशाली में केवल दो-ही-चार व्यक्तियों को थी।

इस समय हरिषेण मंत्री ने इस सुरंग का पूरा उपयोग किया। वैशाली से चली लिच्छवियों की सेना ने पहले तो गंगा के तटवर्ती जंगल में प्रवेश किया। फिर जैसे ही रात का अँधेरा घना हुआ, सैकड़ों नौकाओं के द्वारा उन्होंने गंगा नदी को पार करना आरम्भ किया।

रथ, अश्व अथवा गज का उपयोग तो किया नहीं जा सकता था। फौलादी शरीरवाले पदाती सैनिक ही साथ थे। कइयों को नौकाओं के लिए ठहरना स्वीकार नहीं हुआ। उन्होंने लकड़ियों के लट्ठे बाँधकर बेड़े बनाये और इस पार उतर गए। कुछ मिट्टी के घड़ों के सहारे तैरते हुए इस किनारे आ लगे। बाकी सैनिकों को नौकाओं ने दो फेरे करके इस पार उतार दिया। जैसा जंगल उस किनारे था, वैसा ही गाढ़ जंगल नदी के इस किनारे पर भी था। लिच्छवी सैनिकों ने नदी पार करके इसी जंगल में आश्रय ग्रहण किया।

जब सारी सेना पार उतर गई तो हरिषेण ने सबसे पहले गुप्तचरों को चारों ओर पता लगाने के लिए भेजा। वे इक्के-दुक्के और सादे वेश में, जंगल में और जंगल के बाहर, चारों ओर घूम-फिरकर देख आये।

उन्होंने आकर बताया कि कहीं कोई नहीं है। आदमी तो ठीक चिड़िया भी पर मारती दिखाई नहीं देती है।

इन समाचारों से आश्वस्त लिच्छवी सैनिक सुरंग की राह आगे बढ़े।

सुगंगप्रासाद में पहुँचने के बाद विद्युत् वेग से की हुई कार्रवाई ही उनकी सहायक हो सकती थी। उनका स्वागत करने और सहायता पहुँचाने के लिए वहाँ कोई नहीं था। अपने ही पाँवों के भरोसे अन्धकार में पगडण्डी को टोहने की तरह की यह बात थी।

यह तो स्पष्ट दीख रहा था कि चन्द्रगुप्त ने सारी बात को गुप्त रखा है; क्योंकि कहीं कोई दिखाई नहीं दिया था और किसी को भनक भी नहीं पड़ने पाई थी।

चन्द्रगुप्त स्वयं इसी सुरंग की राह वैशाली गया और फिर सुगंगप्रासाद में लौट भी आया था। सबसे पहले यह देखना आवश्यक था कि वह कुछ कर भी सका है या नहीं!

यदि वह मिल जाता तो कुमारदेवी और हरिषेण का कार्य बहुत-कुछ सरल हो जाता। उससे मार्गदर्शन में बड़ी सहायता मिलती। यह पता लगाना भी आवश्यक था कि सुन्दर वर्मा इस समय महल के किस भाग में होगा। महामंत्री मंत्रगुप्त ने उसकी सुरक्षा के प्रबन्ध तो अवश्य किये होंगे। सम्भवतः एक रात में तीन बार वह अपने शयनागारों को बदल रहा होगा।

इस समय न राजा को और न मंत्री को किसी पर विश्वास होगा।

चन्द्रगुप्त ने वैशाली से लौटते समय स्पष्ट शब्दों में इनकार कर दिया था। उससे किसी प्रकार की सहायता प्राप्त होना लगभग असम्भव ही था। काम सभी दृष्टियों से कठिन प्रतीत हो रहा था।

वह भले हो सहायता ने दे, कोई दूसरा ही मिल जाये। सम्भवतः काच-देव ही सहायतार्थ प्रस्तुत हो जाये! लेकिन इस बात का भी तो पता लगाना होगा। तिलभट्टक ने कुमारदेवी को काचदेव की प्रतिहिंसा और प्रतिशोध के बारे में बताया था। कुमारदेवी जानती थी कि प्रतिशोध की भावना से भरा हुआ मनुष्य कितना भयंकर होता है। सबसे पहले उसी को खोजना चाहिए। सुगंगप्रासाद के प्रमुख द्वारपाल के रूप में उसकी नियुक्ति की गई थी। वह यहीं कहीं, प्रासाद-द्वार के समीप ही, होना चाहिए।

इस समय तो सब-कुछ अन्धकार की चादर में लिपटा हुआ था। परन्तु कुमारदेवी की प्रखर कल्पना और दुर्दान्त आशा अन्धकार के आवरण को चीरकर प्रकाश की किरण की भाँति अपना काम किये जा रही थी।

उसका प्रत्येक आदेश निश्चयात्मक होता था। उसने कह रखा था कि सुन्दर वर्मा के प्रकोष्ठ पर पूरा ध्यान रखा जाये, सबसे पहले वही हमारा लक्ष्य हो, शेष बातें बाद में देख ली जायेंगी।

और सुगंगप्रासाद के द्वारपालों को पता लगे उसके पहले ही उन्हें बन्दी करके उनके स्थान पर लिच्छवी सैनिकों को नियुक्त कर देना होगा।

आवश्यकता जल्दी करने की थी; दृढ़ रहने की थी। सबसे पहले सुन्दर वर्मा को बन्दी करना था। एक बार उसकी राजमुद्रा हाथ में आ जाये फिर तो बहुत-सा काम उसकी मुद्रा से ही निकल जायेगा।

सुरंग के मुँह में से सबसे पहले कुमारदेवी ही बाहर निकली। उसके हाथ में नंगी तलवार थी। मन में शंका का लेश भी नहीं था। चारों ओर अँधेरा था, पर उसका मन आशा की आलोक-किरण से जगमगा रहा था। जैसा मैं सोचती हूँ वैसा ही होगा—ऐसी एक अदृश्य दृढ़ता उसके मन में फौलाद की तरह भरी हुई थी।

जैसे ही वह बाहर निकली उसने एक युवक को वहाँ खड़े देखा।

कहीं यह गुप्तचर तो नहीं? कुमारदेवी का बढ़ता हुआ पाँव वहीं रुक गया। वह ठिठकी और दूसरे ही क्षण उसका दाहिना हाथ तलवार पर चला गया।

वह युवक आगे बढ़ रहा था।

'बता, कौन है तू? जल्दी बोल, नहीं तो सिर धड़ से जुदा हो जायेगा।'

तलवार को अधर में ऊँचा उठते देख वह युवक दो डग पीछे हट गया।

'मैं काचदेव हूँ।' उसने जल्दी-जल्दी कहा, 'लेकिन यह समय सवाल-जवाब करने का नहीं है। एक शब्द भी बोलना इस समय ठीक न होगा।'

काचदेव के ही बारे में तो कुमारदेवी इस समय सोचती चली आ रही थी। संयोग से वही पहले मिल गया। शकुन अच्छा ही हुआ। वह आश्वस्त हुई। काचदेव ने सच ही कहा था कि एक शब्द भी बोलने का समय नहीं है।

'क्या समाचार हैं काचदेव?' उसने बहुत ही धीमे स्वर में पूछा, 'तुम्हारे बारे में तिलभट्टक ने बताया था। सुन्दर वर्मा कहाँ हैं? महाराज चन्द्रगुप्त कहाँ हैं?' वह शीघ्रातिशीघ्र टोह पा लेना चाहती थी।

'महाराज' चन्द्रगुप्त इस समय बन्धनागार में हैं।' काचदेव ने उत्तर दिया।

'महाराज चन्द्रगुप्त बन्धनागार में ? यह हुआ कैसे ?' कुमारदेवी ने सोचा कि बात अवश्य फूट गई है। अब उसे विद्युत् गति से ही काम करना होगा।

वह शीघ्रता से आगे बढ़ी। हरिषेण और दूसरे लिच्छवी पीछे आ रहे थे।

काचदेव ने कुमारदेवी के इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने चुपचाप सुन्दर वर्मा की राजमुद्रा उसके सामने कर दी। फिर वह बोला—महाराज चन्द्रगुप्त ने यह आपके लिए भिजवाई है। वह अपने शयनागार में सवेरे की सुख निद्रा में थे कि मंत्रगुप्त के सैनिकों ने उन्हें घेर लिया और पकड़कर कारागार में बन्द कर दिया। इस समय बात करने का भी समय नहीं है। शीघ्र आगे बढ़िए....

'लेकिन इस समय महाराज चन्द्रगुप्त होंगे कहाँ ?'

'सुगंगप्रासाद के ही किसी प्रकोष्ठ में उन्हें बन्दी बनाकर रखा गया है। लेकिन वह प्रकोष्ठ कौन-सा है, इसे कोई नहीं जानता।'

'तुम्हें हमारे आगमन की सूचना कैसे मिली ? क्या उन्होंने बताया था ?'

'जी हाँ, उन्हीं ने बताया। उन्होंने जाते-जाते मुझे यह राजमुद्रा आपके लिए दी। यह मगधपति की अपनी राजमुद्रा है। इस मुद्रा की सहायता से आप सुगंगप्रासाद में कहीं भी आ-जा सकती हैं।'

कुमारदेवी ने जल्दी से मुद्रा अपने हाथ में ले ली। अब यह जानना जरूरी हो गया था कि सुन्दर वर्मा इस समय कहाँ होगा !

'हमारे आने का किसी और को भी पता है ?'

'जी नहीं, दूसरा कोई भी आपके आने के बारे में नहीं जानता। सुगंगप्रासाद में अभी सब निश्चिन्त सोये पड़े हैं।'

'सुन्दर वर्मा इस समय कहाँ है ? तुम्हें कुछ पता है ?'

'पता हो तो भी वह आपके किसी काम का नहीं।'

'क्यों ?'

'मंत्रगुप्त की ऐसी आज्ञा है कि मगधपति को रात एक ही प्रकोष्ठ में नहीं बितानी चाहिए। रात में कम-से-कम तीन बार उन्हें अपना शयनकक्ष बदल

देना चाहिए। इसलिए निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस समय वह कौन-से प्रकोष्ठ में हैं !'

अब कुमारदेवी को पहली बार अपने आगे अन्धकार घिरता हुआ दिखाई दिया। लेकिन रुके रहने और सोचने का समय नहीं था। उसने जल्दी से हरिषेण से कहा—हरिषेण, आगे बढ़ो। सबसे पहले तो प्रासाद के एक-एक द्वारपाल को बन्दी बनाकर उनके स्थान पर लिच्छवियों को नियुक्त करो। उसके बाद सुगंगप्रासाद के प्रत्येक प्रकोष्ठ की हम तलाशी लेंगे।

'देवी की जय हो! चलो, आगे बढ़ो!' हरिषेण दबे हुए स्वर में बोला।

सब चुपचाप आगे बढ़ने लगे। रात के अन्धकार में वे भूतों की जमात-जैसे लग रहे थे। एक भी शब्द न हो, जरा-सी भी आवाज न हो, इसकी सावधानी उन्हें विशेष रूप से बरतनी थी।

सुगंगप्रासाद के सभी द्वारों पर और प्रासाद के अन्दर प्रमुख स्थानों पर भी लिच्छवी सैनिकों की नियुक्ति पहली आवश्यकता थी। यदि ऐसा न किया जाता तो वह विशाल प्रासाद उन्हीं के लिए कारागार बन जाता। क्योंकि मंत्रगुप्त की योजना के बारे में कोई कुछ नहीं जानता था। हो सकता है कि इस समय उसने जान-बूझकर ही महल में सन्नाटा करवा दिया हो।

प्रासाद का प्रमुख द्वार दिखते ही काचदेव आगे बढ़ा और उसने हरिषेण के कान में कुछ कहा। सुनते ही हरिषेण चौंक पड़ा। उसे विश्वास हो गया कि यह युवक प्रतिशोध की आग से जल रहा है और प्रतिहिंसा के वश में होकर ही इसने मंत्रगुप्त-जैसे कूटनीतिज्ञ को भी धोखा दिया है। इतना तो स्पष्ट था कि इस काचदेव को चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी का अधिक परिचय में आना जरा भी अच्छा नहीं लग रहा था। हो सकता है कि आगे चलकर वह चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी ही बन बैठे। लेकिन यह तो भविष्य की बात थी। अभी तो वह उनकी सहायता ही कर रहा था।

उसने हरिषेण से कहा—अन्दर प्रवेश करने के लिए मगधपति की यह मुद्रा दिखाना काफी होगा। ऐसी मुद्राएँ दो-चार ही हैं। अब प्रश्न यह है कि पहले कौन प्रवेश करे। इस मुद्रा से एक बार में केवल एक ही व्यक्ति

अन्दर जा सकता है। मेरे तो मुद्रा दिखाकर प्रवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि मैं सब द्वारपालों का अधिपति हूँ और बिना मुद्रा के जहाँ चाहूँ आ-जा सकता हूँ।

काचदेव की इस बात ने हरिषेण को घोर चिन्ता में डाल दिया। उसे आशंका हुई कि काचदेव कहीं उसी को तो मूर्ख नहीं बना रहा है ? क्योंकि सुगंगप्रासाद के अन्दर जो एक बार गया वह फिर लौटकर बाहर नहीं आ सकता। उसे वहीं का होकर रह जाना पड़ता है। प्रासाद उसे निगल जाता है। उसकी अवस्था गणपतिनाग-जैसी हो जायेगी। गणपतिनाग को उन्होंने वहाँ रोक लिया था, इसलिए भी हरिषेण को अधिक चिन्ता हो रही थी। वह क्षुब्ध हो उठा। उसने काचदेव की बात का सहसा कोई उत्तर नहीं दिया।

लेकिन काचदेव भी चतुर था। वह उसकी आशंका को बिना कहे ही समझ गया।

अभी वह कुछ कहता उसके पहले ही कुमारदेवी झपटकर उसके पास आई और बोली—चलो काचदेव, राजमुद्रा मेरे पास है। हरिषेण, आप यहीं रहें। यदि सेना आ ही गई तो उसे रोकेगा कौन ? यदि पीछे कोई नहीं रहा तो सुगंगप्रासाद हम सभी को निगल जायेगा। अच्छा काचदेव, चलो आगे !

एक बार तो हरिषेण भी काँप उठा। उसे कुमारदेवी सदा के लिए अन्धकार के गर्त में समाती हुई दिखाई दी। उसे विश्वास हो गया कि गणपतिनाग के इतिहास का यहाँ पुनरावर्तन होकर रहेगा।

लेकिन वह कुछ कहता, रोकने का प्रयत्न करता उसके पहले ही कुमारदेवी काचदेव के साथ आगे बढ़ गई थी। इसलिए कुछ कहने-सुनने का तो अवसर ही नहीं रह गया था। हरिषेण के देखते-देखते कुमारदेवी राजमहल के प्रवेश-द्वार पर भी पहुँच गई।

मगधपति की उस राजमुद्रा को देखते ही द्वारपाल झुककर एक ओर को हट गया। इस द्वार से मगधपति के विश्वस्त स्वजनों को छोड़ और किसी को भीतर नहीं जाने दिया जाता था। जब द्वारपाल ने रास्ता दिया तो कुमारदेवी को मुद्रा का महत्त्व और चन्द्रगुप्त की सहायता का वास्तविक अर्थ समझ में आया।

यह द्वार राजमहल के पीछे की ओर था और इस समय यहाँ कोई भीड़-भाड़ भी नहीं थी। वैसे भी यहाँ अधिक सैनिक नहीं रखे जाते थे। जो सैनिक थे भी वे अन्दर के दूसरे प्रवेश-द्वार पर रहते थे।

जैसे ही द्वारपाल अभिवादन करके मुड़ा कुमारदेवी ने एक तुला हुआ हाथ मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। वह बेचारा मुँह से चूँ भी न कर सका।

फिर उसने कहा—काचदेव, अब तुम सब को भीतर बुला लो। मैं अकेली ही आगे बढ़ती हूँ।

काचदेव के आश्चर्य का पार न था। वह कुछ कहने जा ही रहा था कि कुमारदेवी तेजी से आगे बढ़ गई।

अन्दर प्रवेश करते ही उसने अपने आसपास यवनियों, सैनिकों और द्वार-रक्षकों को जुटते देखा। उसने तत्काल मगधपति की मुद्रा आगे कर दी। उसके चेहरे को देखकर कुछ द्वारपाल आशंकित हो रहे थे और कुछ को उस-की लम्बी तलवार ने सशंक कर दिया था।

कुमारदेवी समझ गई कि द्वारपालों को सन्देह हो गया है। उनके सन्देह का बढ़ना या निवारण करना किसी भी प्रकार अभीष्ट नहीं था, क्योंकि एक क्षण का भी समय उसके पास नहीं था। उसने पुनः एक तुला हुआ हाथ मारा और अपने सामने खड़े हुए द्वारपाल को भुट्टे की भाँति काट गिराया।

अब तो दूसरे सब रक्षकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया और छपाछप तलवारें चलने लगीं। लेकिन इसी बीच हरिषेण, काचदेव और कुछ लिच्छवी सैनिक वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने महल के रक्षकों को घेर लिया।

प्रासाद के रक्षकों की अपेक्षा लिच्छवी संख्या में अधिक थे। बात-की-बात में उन्होंने महल के रक्षकों के हथियार छीनकर उनकी मुश्कें कस दीं। परन्तु काचदेव ने देखा कि यदि किसी ने शोर मचा दिया तो सारी बात बिगड़ जायेगी और लेने के देने पड़ जायेंगे। उसने हरिषेण के कन्धे पर हाथ रख-कर उसके कान में कुछ कहा।

हरिषेण ने तत्काल अपने लिच्छवी सैनिकों को आदेश दिया—शोर जरा भी नहीं होना चाहिए। मार-काट भी न की जाये। सभी द्वारपालों को एक

साथ मुख्य द्वार से लगे हुए तलघर में ढकेलकर ऊपर से कपाट बन्द कर दो।

पलक झपकते ही सारे द्वारपाल उसे अँधेरी कालकोठरी में ढकेल दिये गए। द्वार बन्द करके उसमें ताला डाल दिया गया। अब वे कितना ही चीखें-चिल्लायें उनकी आवाज़ दीवालों को भेदकर बाहर नहीं आ सकती थी।

सुन्दर वर्मा के शयनकक्ष की ओर जानेवाला मार्ग काचदेव का देखा-भाला था। वह संक्षेप में बोलना सीख गया था।

'मेरे पीछे।' उसने केवल इतना ही कहा और आगे बढ़ा।

कुमारदेवी ने उसका अनुसरण किया। हरिषेण को तो वहीं द्वार पर रुके रहना था। वह अन्दर जाती हुई कुमारदेवी को सचिन्त नेत्रों से देखता रहा।

१७. कभी न झुकनेवाला मगधपति

काचदेव को भी कुछ पता नहीं था। इतने विशाल प्रासाद में सुन्दर वर्मा कहीं भी हो सकता था। लेकिन उसे खोजा कहाँ जाये? पता लगाना सरल काम नहीं था। यदि सवेरा होने से पहले सुन्दर वर्मा को खोज नहीं लिया गया और सब-कुछ निपट नहीं गया तो एक भीषण, संहारक युद्ध के बिना कुछ भी निपटारा न हो सकेगा। यह बात बिलकुल निर्विवाद थी।

और कुमारदेवी यह बिलकुल ही नहीं चाहती थी। वह बिना युद्ध के ही सारा काम निपटाना चाहती थी। उसे शीघ्रता करनी होगी।

काचदेव के साथ राजप्रासाद के एक-एक प्रकोष्ठ को ढूँढ़ती-खोजती वह आगे बढ़ी जा रही थी।

किन्हीं-किन्हीं प्रकोष्ठों के आगे शस्त्रधारिणी यवनियाँ खड़ी हुई थीं। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। इस समय भला किसकी ढूँढ़-खोज हो रही है!

काचदेव साथ था। फिर महाराज की विशिष्ट मुद्रा भी उन लोगों के

पास थी। सन्देह के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी; सन्देह किया ही किस बात पर जाता?

लेकिन इस समय महाराज से मिलना चाहनेवाली यह नारी कौन है? और इसी बात पर वे यवनियाँ तर्क-वितर्क करती आश्चर्य प्रकट कर रही थीं।

कुमारदेवी को भी कुछ कम अचरज नहीं हो रहा था। यदि मगधपति की मुद्रा उसके पास न होती तो यहाँ खासा शोरगुल मच जाता और उसकी सारी योजना विफल हो जाती।

वह चन्द्रगुप्त की सहायता के प्रति मन-ही-मन कृतज्ञ होती हुई काचदेव के पीछे-पीछे आगे बढ़ती चली गई।

सहसा एक प्रकोष्ठ के आगे खड़ी हुई सशस्त्र यवनी आगे बढ़ आई। वह वहाँ अकेली ही थी।

काचदेव ने अनुमान से सब-कुछ जानकर उस यवनी से शीघ्रतापूर्वक कहा—इन्हें महाराज से मिलना है।

'अभी? और वह भी यहाँ? ऐसा भला क्या काम है?'

काचदेव ने चुपचाप मगधपति की विशिष्ट मुद्रा उसके आगे कर दी।

यवनी ने मुद्रा ले ली। वह समीप जल रहे दीपक के पास गई। उसके प्रकाश में उसने मुद्रा को घुमा-फिराकर अच्छी तरह देखा। उसे आश्चर्य तो बहुत हुआ; परन्तु वह यह भी जानती थी कि इस मुद्रा की अवहेलना करने का परिणाम क्या होता है! उसे सुगंगप्रासाद की भाषा में 'राजद्रोह' कहा जाता था। मंत्रगुप्त महाराज से जब चाहे और जहाँ भी चाहे मिल सके और कोई उनके साथ प्रवंचना न कर सके, इसलिए महामात्य ने इस विशिष्ट राजमुद्रा का निर्माण किया था। सारे प्रासाद में इस प्रकार की केवल तीन ही मुद्राएँ थीं : एक मंत्रगुप्त के पास रहती थी और दूसरी चन्द्रगुप्त के पास और एक स्वयं महाराज के पास थी। सहसा यवनी को स्मरण हो आया कि चन्द्रगुप्त तो इस समय बन्धनागार में है। यही उसने सुना था। निश्चित बात की उसे कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए उसे सन्देह हो गया और उसने अपना सन्देह व्यक्त कर देना उचित समझा।

वह दीपक के आगे से उनकी ओर लौटी। कुमारदेवी ने उसे मुद्रा को उलटते-पलटते देख लिया था। उसकी आँखों में बैठे अविश्वास और चेहरे पर छाये सन्देह को भी कुमारदेवी ने लक्ष्य किया। लेकिन सन्देह-निवारण के लिए चर्चा करने का समय नहीं था। और यह विश्वास तो हो ही गया था कि महाराज सुन्दर वर्मा इसी प्रकोष्ठ में हैं।

यवनी को प्रकोष्ठ के अन्दर जाने देना भयंकर हो जाता। यदि भीतर जाकर वह अपने सन्देह को प्रकट करने पाती तब तो अनर्थ ही हो जाता। उसे दूसरी ओर जाने देना भी उतना ही भयंकर होता। यहाँ से खिसककर तो वह किसी से कह-सुनकर संकट की सूचना का शङ्खनाद भी करवा सकती थी। उसे यहाँ से हिलने भी न देना होगा। उसके सन्देह के निवारणार्थ एक शब्द भी नहीं कहा जायेगा। उन द्वारपालों को जिस प्रकार तहखाने में मूँद दिया उसी प्रकार इसे भी मूँद देना चाहिए। लेकिन कुमारदेवी को आस-पास कोई तहखाना नहीं दिखाई दिया। तब तो इसे....कुमारदेवी ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया।

इतने में वह यवनी वहाँ आ गई और उसने राजमुद्रा काचदेव को लौटाते हुए कहा—यह मुद्रा तो महाराज चन्द्रगुप्त की प्रतीत होती है, परन्तु वह तो इस समय बन्दी....

बस इसके आगे वह बोल न सकी। कुमारदेवी ने अपनी तलवार के एक सधे हुए वार से वहीं उसके दो टुकड़े कर दिये। बोलना तो दूर उसे चीखने का भी अवसर नहीं मिला। एक घुटी हुई आह और उसका शव वहीं जमीन पर बिछ गया!

यह देखकर काचदेव के भी होश-हवास उड़ गए। उसने इतनी निर्मम हत्या की अपेक्षा कुमारदेवी से नहीं की थी। तभी उसने कुमारदेवी का आदेशात्मक स्वर सुना—आगे बढ़ो काचदेव! रुको मत। समय जरा भी नहीं है। सुन्दर वर्मा को पकड़ना है। सोचने का समय नहीं। बस, बढ़े चलो।

अन्दर जाने की बात सुनकर काचदेव काँप उठा। लेकिन लौटना भी सम्भव नहीं था।

लेकिन तभी प्रकोष्ठ के अन्दर से एक वृद्ध व्यक्ति बाहर आता दिखाई दिया। वही मगधपति सुन्दर वर्मा था।

वह बिलकुल निहत्था था। उसके साथ सैनिक भी नहीं थे। अंगरक्षक भी वहाँ नहीं थे। इस समय सैनिक हो भी नहीं सकते थे। कोई भी नहीं जानता था कि महाराज इस समय यहाँ हैं। हो सकता है कि अड़ोस-पड़ोस के प्रकोष्ठों में सैनिक और यवनियाँ रखी गई हों, परन्तु साथ में तो इस समय कोई भी नहीं था।

महाराज मगधपति सुन्दर वर्मा को यों अकस्मात् सामने आते देख एक क्षण तो काचदेव स्तम्भित ही रह गया। फिर उसे उन पर मँडराते हुए भय का खयाल हो आया। वह डरा कि इस बूढ़े, निःशस्त्र नृपति को कहीं कुमारदेवी मार न डाले। इसलिए वह एकदम बोल उठा—महाराज मगधपति, हम आपको पकड़ने आये हैं। तैयार हो जाइए। समय नहीं है। देर करने पर सम्भवतः आपका वध ही कर दिया जाये!

'कौन काचदेव? चन्द्रगुप्त का बेटा! अरे, विश्वासघाती, क्या इसी कुकृत्य के लिए तूने अपने पिता की निन्दा की थी? तूने सभी को धोखे में रखा। साँप का सँपोला और क्या करेगा! लेकिन याद रखना, तुझे इसका दण्ड अवश्य मिलेगा।'

'महाराज सुन्दर वर्मा!' अब कुमारदेवी ने आगे आकर कहा, 'इस समय बातें सुनने अथवा कहने का हमारे पास बिलकुल ही अवकाश नहीं है। या तो तैयार हो जाइए, अन्यथा....' और उसके हाथ का खड्ग ऊँचा उठता दिखाई दिया।

लेकिन तभी किसी ने पीछे से उसका हाथ पकड़ लिया। कुमारदेवी ने झुँझलाकर पीछे की ओर देखा तो महामंत्री हरिषेण उसका हाथ पकड़े खड़ा था। वह तड़पकर बोल उठी—हरिषेण, अरे हरिषेण....

मंत्री ने उसे शान्त करते हुए कहा—देवी, हम सुन्दर वर्मा का वध नहीं कर सकते। उनकी वृद्धावस्था का हमें आदर करना होगा। अधिक-से-अधिक हम उन्हें बन्दी बना सकते हैं। यदि वध किया तो सदा-सर्वदा के लिए हमारे नाम पर कलंक का टीका लग जायेगा।

'लेकिन महामंत्री, जानते भी हो कि तुम यह क्या कर रहे हो ? इस प्रकार तो तुम गृहयुद्ध को निमंत्रण दे रहे हो। यह निश्चय ही आत्महत्या का मार्ग है !'

तभी सुन्दर वर्मा ने कड़ककर कहा—मंत्री हरिषेण, कौन कहता है कि मैं बूढ़ा हो गया ? मैं बूढ़ा कदापि नहीं हूँ। मेरे बुढ़ापे पर दया दिखाने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं, न मैं तुमसे इसकी भीख ही माँगता हूँ। तुम धोखा देकर एक प्रवंचक की सहायता से यहाँ घुस आये हो, केवल इसी लिए तुम्हें बढ़-बढ़कर बोलने का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता। मैं बूढ़ा तो बिलकुल नहीं हूँ। क्या बताऊँ, इस सँपोले की मीठी-मीठी बातों में आकर मंत्री मंत्रगुप्त की मति मारी गई और उसने इसे राजप्रासाद का प्रमुख द्वारपाल नियुक्त कर दिया। कौन जानता था कि यह अपने सगे बाप की निन्दा इसी लिए कर रहा है! लेकिन हमें समझना चाहिए था कि जो अपने बाप का न हुआ वह दूसरों का क्या होगा। खैर, गलती हो गई और तुम यहाँ घुस आये। लेकिन इससे क्या होता है! मुझे पकड़नेवाला अभी तक तो कोई जनमा नहीं है। आज तक मैं किसी के आगे झुका नहीं और न आगे कभी झुकूँगा। तैयार हो जाओ। देख लूँ मैं भी तुम्हारा जौहर। मगर इतना याद रखना कि प्रवंचक किसी के नहीं हुए और न कभी किसी के होंगे।

इतना कहकर सुन्दर वर्मा अन्दर दौड़ा गया और अपने सिरहाने रखी लम्बी तलवार को उठा लाया। उसके म्यान को परे फेंकता हुआ वह गरज उठा—आओ, कौन आता है मेरे सामने ? एक आओ, दो आओ, तीन आओ, मैं सब से एक साथ निपट लूँगा।

कुमारदेवी अपनी तलवार खींचकर उस पर लपकी....

तभी सुगंगप्रासाद का कोना-कोना गूँज उठा—मगधपति की जय हो! और कई मागधी सैनिक चारों ओर से दौड़कर आते दिखाई दिये।

कुमारदेवी वहीं ठिठकी खड़ी रह गई। हरिषेण के पाँव-तले की धरती खिसक गई। काचदेव के काटो तो खून नहीं!

अवश्य मागधी सैनिकों को पता चल गया था। इसलिए वे चारों ओर से दौड़े चले आ रहे थे। उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं। अब तो लड़ाई

होकर रहेगी। उन तीनों को अपने घिर जाने का पूरा विश्वास हो गया। सब से बुरी बात तो यह कि मगध का महामंत्री मंत्रगुप्त भी नंगी तलवार लिये उन सैनिकों के साथ था। वही उनका नेतृत्व कर रहा था!

स्थिति की विकटता को लक्ष्य कर हरिषेण ने अपनी कमर से लटक रहे एक छोटे-से शंख को दोनो हाथों में लेकर जोर से फूँका। वह समझ गया था कि अब युद्ध के बिना कोई गत्यन्तर नहीं। जैसे ही उसने शंख बजाया सैकड़ों की संख्या में लिच्छवी योद्धा वहाँ दौड़कर आते दिखाई दिये। लेकिन साथ ही हरिषेण ने एक और भी आश्चर्यजनक दृश्य देखा। साकेत के भी अनेक सैनिक वहाँ भागे चले आ रहे थे और स्वयं चन्द्रगुप्त उनका नेतृत्व कर रहा था।

हरिषेण समझ गया कि यह सारी कार्रवाई काचदेव की होनी चाहिए। उसने पहले से साकेत के सैनिकों को बुला लिया होगा और उन्हें राजमहल के विशाल उद्यान में कहीं छिपा दिया होगा। साकेत के सैनिकों ने ही चन्द्रगुप्त को मुक्त किया होगा। शंखध्वनि सुनते ही वे इस ओर दौड़े चले आये। इस प्रकार काचदेव अपने पिता को मगधपति बनाना चाहता था। अब तो सुन्दर वर्मा की मृत्यु से एक नयी ही समस्या उठ खड़ी होगी।

लेकिन इस समय आसन्न युद्ध के अतिरिक्त किसी समस्या पर सोचने और उसका समाधान ढूँढ़ने का समय नहीं था। हरिषेण ने अपने सिर को एक झटका देकर सब विचारों को मस्तिष्क से निष्कासित कर दिया और अपनी लम्बी तलवार को म्यान से खींचकर वह भी सुन्दर वर्मा की ओर लपका।

सुन्दर वर्मा बड़ी चपलता से कूदा। उसकी वह चपलता और कुदान युवकों को भी लज्जित करनेवाली थी। वार किये जाने से पहले ही वह उछलकर अपने सैनिकों के सामने जा खड़ा हुआ। हरिषेण का वार खाली गया। अपने ही प्रबल वेग को सँभाल न पाने के कारण वह एक क्षण के लिए घुटनों के बल गिर पड़ा। सँभलकर उठते हुए उसने देखा कि मंत्री मंत्रगुप्त की विकराल तलवार स्वयं उसके सिर पर तुली हुई थी। वह समझ गया कि अब मौत आई, तभी एक दूसरी तलवार ने बिजली की तरह कौंधकर उस तलवार को

अधर में उड़ा दिया और वह झन्नाती हुई दूर जा गिरी।

अपनी तलवार को उड़ानेवाले की ओर मंत्रगुप्त ने तड़पकर देखा। कुमारदेवी हाथ में तलवार लिये खड़ी थी। मंत्रगुप्त अब निहत्था था। वह उसी का वध करने के लिए झपटी।

तभी सुन्दर वर्मा ने जोर से पुकारकर कहा—मंत्रगुप्त, भाग जा। भागकर अपने प्राण बचा। राजमहल के द्वार बन्द होने के पहले ही यहाँ से भागकर चला जा। जाकर कुंजरक को इसकी सूचना दे। शिशु राजकुमार को प्रवरसेन के पास ले जा। इस समय लड़ना मूर्खता और भागकर जान बचाना ही समझदारी की बात है। मैं तुझसे कह रहा हूँ, भागकर चला जा और अपने शिशु राजा के प्राण बचा। उसे प्रवरसेन के पास ले जा। गणपतिनाग के पास ले जा। मेरा उत्तराधिकारी जीवित रहा तो वह इस विश्वासघाती नापितनन्द-जैसे चन्द्रगुप्त और काचदेव और इन सभी से निपट लेगा। इसलिए भागकर जा और उसके प्राण बचा। नहीं तो ये नापित उसे मार डालेंगे। मैं आज्ञा देता हूँ कि यहाँ से भाग जा और राजकुमार को बचा। वह बच गया तो सब-कुछ बच जायेगा।

मंत्रगुप्त चारों ओर लिच्छवी सैनिकों से घिरा हुआ था। उसके लिए भागने का अवसर सौ में केवल एक था। सुन्दर वर्मा लिच्छवी सैनिकों को बिखेरता हुआ उसके समीप आ पहुँचा और उसके कन्धे को झकझोरता हुआ चिल्ला उठा—भाग जा मंत्री, भाग जा! किसी तरह मेरे पुत्र को बचा!

मंत्रगुप्त ने देखा, मागधी और लिच्छवी सैनिक आपस में एक-दूसरे से गुँथे हुए थे। चारों ओर घमासान युद्ध हो रहा था। प्रत्येक का ध्यान अपने सामने खड़े प्रतिद्वन्द्वी में केन्द्रित हो गया था। किसी को दायें-बायें देखने की फ़ुरसत नहीं थी। तलवारें नागिनों की तरह लपलपा रही थीं और उनसे चिनगारियाँ निकल रही थीं।

बूढ़ा सुन्दर वर्मा युवकों की-सी चपलता से अपनी तलवार घुमा रहा था। मागधी सैनिक चारों ओर से उसकी रक्षा कर रहे थे। अब सारा युद्ध उसी के चारों ओर केन्द्रित हो गया था। लिच्छवी सैनिक उसे मार गिराने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे थे।

मंत्रगुप्त ने यह सब देखा। बूढ़े राजा की बात का अभीप्सित प्रभाव भी उस पर हुआ। वर्तमान युद्ध को निष्फलता भी उसकी समझ में आ गई। सभी को रणक्षेत्र में उलझा हुआ छोड़कर वह न जाने कब चुपके से खिसक गया—किसी को पता भी न चला।

मंत्रगुप्त को समझाने जाकर स्वयं सुन्दर वर्मा से एक बड़ी भूल हो गई। साकेत के सैनिकों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाने पाया। उन्हें मौका मिल गया और सुन्दर वर्मा चारों ओर से घिर गया। चन्द्रगुप्त उसे घेरने-वालों का नेतृत्व कर रहा था।

सुगंगप्रासाद बाकायदा रणक्षेत्र का रूप धारण करता जा रहा था। अब लिच्छवियों को दो मोरचे सँभालने थे। एक मोरचा यहाँ सुगंगप्रासाद के अन्दर था और दूसरा मोरचा सुगंगप्रासाद के बाहर। अन्दर के मोरचे पर लड़ाई बूढ़े राजा सुन्दर वर्मा ही से थी। बाहर के मोरचे पर लड़ाई मगध के शेष सैनिकों से थी।

यहाँ का मोरचा हरिषेण और चन्द्रगुप्त सँभाले हुए थे। बाहर का मोरचा बिलकुल खाली पड़ा था। किसी भी क्षण शिविर में रहनेवाले मागधी सैनिक यहाँ आ सकते थे, सुगंगप्रासाद को घेर सकते थे और अपने संख्या-बल से लिच्छवियों को पराजित कर सकते थे।

अकेली कुमारदेवी का ध्यान इस परिस्थिति की ओर गया। यहाँ मागधी सैनिकों का मोरचा कमजोर पड़ता जा रहा था। अकेले हरिषेण ने अनेक मागधी सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया था और वह प्रतिक्षण सुन्दर वर्मा की ओर बढ़ता चला जा रहा था। सुन्दर वर्मा को कभी भी मारा जा सकता था, लेकिन यदि बाहर के शिविर-स्थित मागधी सैनिक अन्दर घुस आये तो सारे किये-कराये पर पानी फिर जायेगा।

कुमारदेवी ने तत्काल निर्णय किया। यहाँ का युद्ध उसने हरिषेण और चन्द्रगुप्त पर छोड़ा और वह बाहर का मोरचा सँभालने के लिए उद्यत हुई।

शिविर-स्थित सैनिकों को इस ओर आने से रोकना होगा। वे यहाँ के युद्ध में भाग न ले सकें। उन्हें कोई युक्ति भिड़ाकर किले से ही बाहर निकाल देना होगा। एक बार लिच्छवियों का पाटलीपुत्र पर अधिकार हो जाये,

उसके बाद कोई विशेष चिन्ता नहीं रह जायेगी।

राजमुद्रा अभी उसी के पास थी। उस मुद्रा का चमत्कार वह देख चुकी थी। अभी उस मुद्रा का प्रभाव क्षीण नहीं हुआ था। प्रासाद के अन्दर के युद्ध की सूचना भी अभी बाहर नहीं पहुँची थी।

अपने कुछ चुने हुए लिच्छवी सैनिकों को लेकर वह चुपचाप वहाँ से खिसक गई। बाहर आई और उसने अपने सैनिकों को सीधे मगध के सैन्य शिविर की ओर बढ़ने का आदेश दिया।

अन्दर अब भी तलवारें चल रही थीं। सुन्दर वर्मा घिरता जा रहा था। बाहर कुमारदेवी अपने विश्वस्त सैनिकों के साथ मगध सैन्य शिविर की ओर बढ़ी जा रही थी। उसका उद्देश्य था मागधी सैनिकों को उन्हीं के शिविर में घेरे रखना, जिसमें वे इस युद्ध में भाग न ले सकें अथवा उन्हें किसी युक्ति से दुर्ग के बाहर भेज देना।

क्या वह अपनी युक्ति में सफल होगी? क्या वह मागधी सेना को अपने अनुकूल कर सकेगी?

१८. मगध का पतन

हीनता से महानता की ओर प्रजा को ले जाना सामान्य पुरुषार्थ की बात नहीं होती। इस महान कार्य को करनेवाले प्रत्येक पुरुषार्थी का दुर्गम पथ जाता है विनाश के कंटकाकीर्ण रणक्षेत्र से होकर। तड़ित् वेग से उसे प्रहार करना होता है। उसके पाँवों के आगे निर्मम क्रूरता की खाई हमेशा मुँह बाये रहती है। इतिहास मेरे बारे में क्या कहेगा?—यह डर घटाटोप अन्धकार की भाँति हर समय उस पर छाया रहता है।

हीनता और कायरता का राजरोग जब प्रजा पर आक्रमण करता है तो वह अकेला नहीं होता। उसके साथ आती हैं अनेक व्याधियाँ—विश्वासघात, प्रवंचना, कामचोरी, स्वार्थ, लोलुपता, द्वेष, अहंकार, वचन-भंग आदि। ये सब व्याधियाँ राष्ट्र के जीवन को घुन लगी लकड़ी की भाँति खोखला कर

देती हैं। राग-द्वेष और क्षुद्रातिक्षुद्र प्रतिद्वन्द्विताओं का बोलबाला होने लगता है। हीनता की गहरी खाई से महानता के उच्च शिखर तक पहुँचने का मार्ग एकदम खड़ा और बड़ा विकट होता है। बिरले ही इस दुर्गम पथ पर चलने का साहस कर पाते हैं। जो सारी प्रजा को इस मार्ग का पथिक बनाना चाहते हैं उन्हें कठोर अनुशासन का पालन करवाना होता है। ऐसे समय आवश्यकता होती है एक सतत जागरूक कठोर शासन की। उसके बिना न शासकों का काम चलता है और न शासितों का। कठोर शासन के बिना न तो प्रजा आगे बढ़ पाती है और न हीनता के दलदल से उबरने ही पाती है।

कुमारदेवी के सामने भी ऐसा ही दुर्गम और विकट पथ था। वह देश के नवनिर्माण के ऐसे ही कंटकाकीर्ण पथ पर बढ़ी चली जा रही थी। इस पर प्रतिक्षण जागरूकता और प्रति पग सतर्कता की आवश्यता थी। यदि अभी वह जागरूक न होती तो मगध की शिविर-स्थित सेना सुगंगप्रासाद को घेर लेती और सब-के-सब लिच्छवी उस विशाल प्रासाद में बन्दी हो जाते।

यदि मगध के सैनिकों को पता चल जाये कि उनका मंत्री भाग गया है और उनका राजा मारा गया है तो सब का साहस टूट जायेगा और कोई भी लड़ने को प्रस्तुत न होगा। कुमारदेवी को यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र कर डालना चाहिए।

यह कहना तो सही नहीं होगा कि मगध का पतन सुन्दर वर्मा के शासन-काल में हुआ। इस पतन की जड़ें बहुत गहरी थीं। विदेशी आक्रमण और विदेशी आधिपत्य के दौरान सामान्य रूप से सारे देश और विशेष रूप से मगध का पतन प्रारम्भ हुआ और यह प्रक्रिया समय के साथ तीव्र होती गई। कोई पतन की इस सर्वनाशी प्रक्रिया को रोक न सका। अब तो हालत यहाँ तक बिगड़ चुकी थी कि सर्वनाश के बिना उद्धार किसी भी प्रकार सम्भव नहीं दिखाई देता था। इसी लिए कुमारदेवी को सबसे पहले विनाश की ही सृष्टि करनी होगी। जब सारी गन्दगी और कूड़ा-कर्कट जलाकर साफ कर दिया जायेगा तभी नये का निर्माण हो सकेगा, उसके पहले नहीं।

सुन्दरवर्मा ने भी अपने शासन काल में प्रजा को हीनता के गहन गह्वर से उबारने के अनेक प्रयत्न किये थे। लेकिन वह भूल गया कि सबसे पहले हीनता की गन्दगी को साफ करना आवश्यक होता है। यह काम वह कर न सका। उसके बूते की यह बात थी भी नहीं।

कुमारदेवी इस समय त्वरित गति से मगध सैनिकों के मुख्य शिविर की ओर इसी हेतु से जा रही थी। उसका मुख्य उद्देश्य था मगध सैनिकों को आसन्न परिवर्तन के लिए प्रस्तुत करना। उसके बाद उसका पहला काम होगा नाममात्र की पुष्यमित्र सभा के द्वारा मगधपति की घोषणा करवाना-नये मगधपति की घोषणा होते ही पाटलीपुत्र पर अपनी गृद्ध-दृष्टि डालनेवाले वहीं-के-वहीं रुक जायेंगे; राज्य-परिवर्तन होते ही मगध की दुर्बलता से लाभ उठानेवालों के पाँव आप ही थम जायेंगे।

वह तेजी से मगध-सैन्य शिविर की ओर जा रही थी। नगर में चारों ओर सन्नाटा था। रास्ते बिलकुल निर्जन पड़े थे। सुगंगप्रासाद में हो रहे विप्लव-कांड की जैसे किसी को खबर ही नहीं थी। सारा नगर घोर निद्रा में मग्न पड़ा था। यह स्थिति जितनी विस्मयकारक थी उतनी ही सांकेतिक भी। सांकेतिक इस बात की कि जो प्रजा पतित हो जाती है वह इसी प्रकार सोयी पड़ी रहती है। उस पर प्रहार भी उस समय होता है जब वह सोयी होती है। जागकर तो वह केवल परिणाम को देखती है। पतन की इस स्थिति को पहुँची हुई प्रजा अपनी असावधानी और अजागरूकता को वीरता का नाम देती है। उसे शत्रुओं का कोई डर नहीं होता, आक्रमणों से वह घबराती नहीं; उनका तो वह स्वागत ही करती है। लेकिन डर होता है उसे यह कि कहीं वह अपनी भ्रान्तियों से जागकर सचेत न हो जाये। उसे सबसे बड़ा भय होता है अपनी सुखद भ्रान्तियों से सहसा जाग उठने का। पतित समाज में शासन और शासित सभी सुखद भ्रान्तियों के शिकार होते हैं; भ्रान्तियों के ही सहारे वे टिके होते हैं।

देश और जाति का नवनिर्माण करनेवालों को सबसे पहले प्रजा की इन सुखद भ्रान्तियों पर ही प्रहार करना होता है। कुमारदेवी भी इस समय मागध सैनिकों की भ्रान्तियों पर प्रहार करने के लिए तेजी से चली जा रही थी।

उसके साथ लिच्छवी सैनिक थे। साकेत के भी कुछ सैनिक साथ हो गए थे। परन्तु सैनिकों का उसके लिए कोई विशेष उपयोग नहीं था। वह तो बिना लड़े ही मागध सैनिकों को अपने अनुकूल करना चाहती थी। उसे आशा थी कि वह अपने काम में सफल होगी।

उसने सुन रखा था कि मागध प्रजा में सर्वत्र अविश्वास की भावना है। प्रचलित शासन के प्रति सन्देह और भय लोगों के मन में पैठा हुआ है। लोग मनाते रहते हैं कि यह शासन जाये और कोई दूसरा शासन उसके बदले में आ जाये। सभी का यह खयाल था कि आनेवाला शासन वर्तमान शासन से अवश्य अच्छा होगा। सभी राज्य-परिवर्तन के इच्छुक थे। मागध सैनिकों की भी यही मनःस्थिति थी। तिलभट्टक ने उसे इस सम्बन्ध में बताया था।

सुन्दर वर्मा बूढ़ा हो गया था। मंत्रगुप्त शिशु युवराज के माध्यम से अपनी सत्ता को विस्तारित करने में लगा था। चन्द्रगुप्त के हाथ बँधे हुए थे। उसकी स्वाभाविक उदारता भी उसके बन्धन का कारण थी। श्रेष्ठियों, नगरजनों, सार्थवाहों, निगमों और मंत्रियों की ऐसी कोई परिषद् नहीं थी जो शासन-कार्यों में दखल दे पाती। वैसे नाम को एक परिषद् थी अवश्य, परन्तु उसकी कोई आवाज़ नहीं थी। चन्द्रगुप्त ने जिस परिषद् को स्थापित किया था और पुष्यमित्र ने जिसका नया नामकरण 'पुष्यमित्र सभा' किया था, उसका अब केवल ढाँचा ही बचा रह गया था, प्राण उसमें से निकल चुके थे।

कुमारदेवी मगध की इस स्थिति से परिचित थी और इसी लिए वह सब से पहले सैनिकों को अपने पक्ष में करना चाहती थी। उसके बाद वह चाहती थी कि श्रेष्ठियों की निगम सभा, जो अब केवल नाम की परिषद् थी, सवेरा होने से पहले मगधपति के नाम की घोषणा कर दे।

सैनिकों का शिविर पाटलीपुत्र दुर्ग के मुख्य-द्वार के आसपास फैला हुआ था। मगध की सेना का मुख्य शिविर यही था। कुंजरक के साथ काफी तादाद में सैनिक, गंगा के उस पार, वैशाली की ओर चले गए थे। इस समय यहाँ अधिक सैनिकों के होने को सम्भावना नहीं थी। परन्तु जो भी सैनिक शिविर में बचे रह गए थे उन्हें अपने पक्ष में कर लेना कुमारदेवी के लिए नितान्त आवश्यक था।

शिविर के चारों ओर मजबूत नाकेबन्दी की हुई थी। उस नाकेबन्दी को तोड़ने का कोई अर्थ नहीं था। जब वह शिविर के प्रवेश-द्वार के समीप पहुँची तो उसने यामघोष करते हुए सैनिकों को वहाँ खड़ा पाया। धुँधले प्रकाश में उनकी परछाइयाँ दूर से दिखाई दे रही थीं। शिविर शान्त सोया पड़ा था। यहाँ किसी भी प्रकार की हलचल परिलक्षित नहीं होती थी। कुमारदेवी ने अनुमान से जाना कि मंत्रगुप्त शिशु युवराज के रक्षणार्थ वैशाली की ही ओर गया होना चाहिए। यदि यहाँ आया होता तो इस समय सारा शिविर सजग हो जाता।

शिविर के मुख्य-द्वार के समीप आकर वह रुक गई। एक क्षण उसने अपने निश्चय को मन में दुहराया और तब शंख को अपने हाथों में लिया।

वह जानती थी कि शंखनाद होते ही सैनिकों में कोलाहल मच जायेगा। कौन है, क्या है, यह जानने के लिए सैनिक और सेनानायक दौड़ पड़ेंगे। उनकी यह भाग-दौड़ शिविर में अव्यवस्था उत्पन्न कर देगी। कुमारदेवी को इस अव्यवस्था में से ही अपना मार्ग बनाना था। वह सेनानायकों के द्वारा ही सेना को वश में करना चाहती थी। सबसे पहले वह सेनानायकों को अपने पक्ष में करना चाहती थी। नये परिवर्तन के लाभ समझाकर उन्हें सरलता से मिलाया जा सकता है, ऐसा उसका विश्वास था।

उसने शंख को ओठों से लगाकर फूँकना शुरू किया। शंख की ध्वनि चारों ओर फैल गई। जैसा कि उसने सोचा था, शिविर में कोलाहल होने लगा। सैनिकों में हलचल हुई। भाग-दौड़ होने लगी। अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। सब जिधर से शंख की ध्वनि आ रही थी उस दिशा की ओर देखने लगे।

लोग एक-दूसरे से पूछने लगे—कौन है? क्या है? किसी ने आक्रमण तो नहीं किया? महाराज ने इस समय किसी को भेजा तो नहीं? आखिर बात क्या है? इस समय शंखनाद क्यों हो रहा है?

जो सेनानायक जाग उठे थे वे सैनिकों के साथ शंख-ध्वनि के स्थान की ओर दौड़ पड़े।

वहाँ पहुँचने पर उन्होंने लिच्छवी योद्धाओं को मोरचा जमाये हुए देखा।

उनके आगे कुमारदेवी खड़ी थी। साकेत की सेना उनके पीछे खड़ी थी। बिलकुल लड़ाई की मोरचेबन्दी थी। यह देखकर मगध के सैनिक और सेनानायक विस्मित हो उठे। क्या हुआ है, यह सहसा उनकी समझ में नहीं आया। वे कुछ पूछने जा ही रहे थे कि कुमारदेवी का बुलन्द स्वर गूँजता नाई दिया :

'मगध के सेनानायको! मैं, वैशाली की कुमारदेवी, इस समय तुमसे मिलने के लिए आयी हूँ। तुम्हें आश्चर्य तो अवश्य होगा।'

'होना ही चाहिए।' एक सेनानायक ने कहा।

'बात यह है कि सेनापति कुंजरक वहाँ वैशाली में हैं। तुम सब इस बात को जानते ही होगे। महाराज मगधपति वृद्ध हैं। ऐसे समय पाटलीपुत्र-जैसी महान नगरी का अरक्षित रहना सारे देश के लिए घातक हो सकता है। पाटलीपुत्र को अरक्षित पाकर कुशान, शक और यवन यहाँ दौड़े आयेंगे। परिणाम यह होगा कि इस नगरी का नाश हो जायेगा, तुम्हारा नाश होगा और लोग भी तबाह हो जायेंगे।

'इसी लिए मैं वैशाली से यहाँ दौड़ी आई हूँ। मैं आई हूँ नगर की रक्षा करने और व्यवस्था स्थापित करने। इस समय पाटलीपुत्र की रक्षा-व्यवस्था को दृढ़ करने की आवश्यकता है। पाटलीपुत्र की रक्षा वैशाली की सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है। सेनापति कुंजरक इस समय वैशाली में....'

कुमारदेवी द्विअर्थक भाषा बोल रही थी। उसकी कोई बात स्पष्ट नहीं थी और अस्पष्ट भी नहीं थी।

'लेकिन आपको यहाँ बुलाया किसने?' एक सेनानायक ने साहस बटोरर पूछा।

'किसने बुलाया?' कुमारदेवी का लोहे की खनक-जैसा स्वर गूँज उठा, 'यों समझ लीजिए कि आप ही ने बुलाया है। जब देश विपत्ति में पड़ा हो और जो यह समझता है कि मैं इसका उद्धार कर सकता हूँ, वह किसी के बुलाये जाने की अपेक्षा नहीं करता। वह उसे अपना कर्त्तव्य मानकर स्वयं ही करने लगता है। फिर भी आपकी जानकारी के लिए यह बताना आवश्यक समझती हूँ कि यदि स्वयं महाराज मगधपति ने मुझे न बुलाया होता तो मैं यहाँ

क्यों आती ? आप समझ लीजिए कि उन्हीं के बुलाने पर मैं यहाँ आई हूँ। देखिए, उनकी इस विशिष्ट राजमुद्रा को।' कुमारदेवी ने राजमुद्रा को एक हाथ में लेकर दिखाते हुए कहा, 'आपमें से जो भी चाहें, इस मुद्रा को हाथ में लेकर देख सकते हैं। यह मुद्रा इस बात का प्रमाण है कि महाराज मगधपति ने मुझे बुलाया है और उनके बुलाने पर मुझे यहाँ आना पड़ा है। अब मैं आपको यह बताना चाहती हूँ कि यहाँ आ जाने पर मेरा पहला कर्त्तव्य क्या है ?

'मेरा पहला काम है पाटलीपुत्र को सुरक्षा का प्रबन्ध करना। सेनापति कुंजरक तो यहाँ हैं नहीं। उनके स्थान पर आप लोगों में से ही किसी को महाबलाधिकृत बनाना होगा। सबसे पहले यहाँ व्यवस्था स्थापित करनी होगी। महाराज की यही इच्छा है। बताइए, आपमें से कौन बलाधिकृत बनना चाहता है ? कौन आगे आता है ? लेकिन यह समझ लीजिए कि इस समय महाबलाधिकृत बनना काँटों का मुकुट धारण करना है। यह बच्चों का खेल नहीं, लोहे के चने चबाना है। जिसे अपने में श्रद्धा हो, जिसे आत्मविश्वास हो वही आगे आये। जो पाटलीपुत्र को प्यार करता हो, जो पाटलीपुत्र की महानता पर सौ प्राणों से निछावर हो वही आगे आये। हर किसी के बूते का यह काम नहीं। इसी लिए मैं आप लोगों से पूछ रही हूँ। आप उत्तर दें और निर्णय करें। मुझे सबसे पहले यही कार्य करना है। इस समय यही काम सर्वाधिक महत्त्व का है। सवेरा होने से पहले यह कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिए।

'महाराज की यही अभिलाषा है। हमें ऐसी स्थिति का निर्माण करना है जिसमें कोई भी महाराज मगधपति की वृद्धावस्था से अनुचित लाभ न उठा सके। यदि सवेरा होने से पहले यह कार्य सम्पन्न नहीं हुआ तो यहाँ बहुत-से लोग दौड़े चले आयेंगे। इसी लिए महाराज ने मुझे बुलाकर यह उत्तरदायित्व सौंपा है। इसी में हम सब का श्रेय है। इस नगरी का भी श्रेय है और आप सबका भी। महाराज की राजमुद्रा उनकी अभिलाषा की साक्षी है। आपमें से किसे महाबलाधिकृत बनाया जाये, यह आप स्वयं बताइए। शीघ्रता कीजिए, विलम्ब जरा भी नहीं होना चाहिए।'

कुमारदेवी जान-बूझकर ऐसे शब्दों का उपयोग कर रही थी जिनसे एक साथ कई अर्थों की ध्वनि निकलती थी। सुननेवालों की समझ में नहीं आया कि महाराज ने उसे कौन सा काम सौंपा है ? शासन ही सौंप दिया है, या राजकुमार की रक्षा का भार वहन करने को कहा है या नगर की रक्षा का दायित्व प्रदान किया है ? साफ-साफ किसी की समझ में नहीं आया।

लेकिन असल में कुमारदेवी का उद्देश्य यह था कि सेनानायकों का ध्यान इस बात में उलझा दिया जाये कि महाबलाधिकृत कौन हो। वह अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल रही। प्रत्येक सेनानायक स्वयं ही महाबलाधिकृत बनना चाहता था और हरएक आगे आने को बेताब हो उठा था।

लोहे को इस तरह तपाकर कुमारदेवी ने उस पर ताबड़तोड़ चोटें मारने के उद्देश्य से कहा—महाबलाधिकृत कोई भी बन सकता है। लेकिन मुझे तो इसी समय, सवेरा होने से पहले ही, निर्णय कर डालना है। सभी सेनानायक इस बात को समझें। साथ ही मैं यह भी कहना चाहती हूँ कि सभी की पद-वृद्धि होगी, सभी का सम्मान बढ़ेगा, सभी को गौरव प्राप्त होगा और सभी के प्राप्त होनेवाले कार्षापणों में वृद्धि होगी। यह सब होगा। लेकिन शर्त यह है कि हम किसी बाहरवाले को इस नगर के समीप फटकने न दें। नगर की रक्षा की बात मुख्य है, महत्त्वपूर्ण है। नगर आपको गौरवान्वित करेगा तभी आप उसे गौरवान्वित कर सकेंगे। लेकिन सवेरा होने से पहले यह सब हो जाना चाहिए। मुझे सब काम शीघ्रतापूर्वक निपटाने के लिए कहा गया है। महाराज की राजमुद्रा इस बात की साक्षी है। वैशाली की सेना इसी हेतु से यहाँ बुलाई गई है।

मगधपति की राजमुद्रा लोगों को विश्वास दिला रही थी कि कोई बात अवश्य हुई है, अन्यथा कुमारदेवी लिच्छवी सेना के साथ यहाँ न आती और न इस तरह बातें करतीं। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि कुमारदेवी के पास इस समय सत्ता का स्वर्ण-वृक्ष है और साथ में साकेत की सेना भी है। परन्तु वह सब-कुछ सवेरा होने से पहले ही निपटा लेना चाहती है, इसलिए प्रत्येक सेनानायक अपनी बात कहने के लिए उतावला हो उठा।

उसी समय प्रमुख सेनानायक धनुर्धर आगे आया और बोला—देवी, महाबलाधिकृत बनने के लिए मैं तैयार हूँ।

'तुम तैयार हो ? दूसरे सब तुम्हारा समर्थन करते हैं ? यदि सबको स्वीकार हो तो अंगुलि-निर्देश के द्वारा वे तुम्हारा समर्थन करें।'

दूसरे सेनानायकों ने सोचा कि धनुर्धर महाबलाधिकृत बन गया तो हम भी लाभ में रहेंगे। इस लाभ-लोभ से प्रेरित होकर सब ने उसका समर्थन किया।

कुमारदेवी ने उसे महाबलाधिकृत घोषित कर दिया। उसे अपना कार्य क्षिप्रता से निपटता दिखाई दिया। अब वह वहाँ उपस्थित सभी सेनानायकों के पदों और अधिकारों में वृद्धि करने लगी। वेतन भी उसने सब के बढ़ा दिये।

इतने में काचदेव वहाँ दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया। कुमारदेवी उस युवक की आश्चर्यजनक प्रतिभा से परिचित हो चुकी थी। वह हवा में उड़ती बात को भी पकड़ लेता था।

आते ही उसने कहा—देवी, देवी ! शीघ्रता कीजिए। खोने के लिए एक क्षण भी नहीं है।

'क्यों काचदेव, क्या बात है ?'

'बात तो कुछ भी नही, परन्तु महामंत्री मंत्रगुप्त कहीं दिखाई नहीं देते।'

'क्या कहते हो ? महामात्य दिखाई नहीं देते ? वह कहाँ जायेंगे ? उन्हीं ने तो मुझे यहाँ भेजा है।'

सेनानायक दम साधे सुनते रहे। कुमारदेवी और काचदेव का रहस्य-भरा प्रश्नोत्तर चलता रहा।

'सेनापति कुंजरक वैशाली में हैं। महामात्य भी बाहर चले गए हैं; सम्भवतः वहीं गये हों। महाराज को भय है कि ऐसे समय पाटलीपुत्र पर कोई आक्रमण न कर दे। हो सकता है कि कुंजरक और मंत्रगुप्त ही किसी को चढ़ा लायें। कुशान, शक आ सकते हैं, प्रवरसेन भी आ सकता है। अरक्षित नगरी पर कोई भी चढ़ाई कर सकता है। आक्रमणकारी को नगर के बाहर रोकने के लिए यहाँ से सेना को तत्काल दुर्ग के बाहर रवाना करना चाहिए।

महाराज ने मुझे इसी लिए यहाँ भेजा है। महाराज की यही आज्ञा है! इस समय यहाँ महाबलाधिकृत कौन है?'

'धनुर्धर!

'सेनापति धनुर्धर! तुम मगध की सेना को तत्काल दुर्ग के बाहर ले जाओ। आनेवाली शत्रुसेना को बाहर ही रोकने का प्रबन्ध करो।'

'लेकिन यह भी तो पता चले कि सेना किसकी है, कितनी है और किधर से आ रही है? और महाराज मगधपति की आज्ञा का प्रमाण क्या है?'

'तुम भी ग़ज़ब के आदमी हो!' कान्नदेव ने झुँझलाकर कहा, 'सैनिक होकर इतने सवाल करते हो! तुम्हारा काम है आज्ञा का पालन करना। साँस लेने का तो समय नहीं है और तुम्हें कौन, क्या, किधर से ही अवकाश नहीं। महाराज की आज्ञा का प्रमाण चाहते हो? यह लो प्रमाण।' और उसने महाराज सुन्दर वर्मा की विशिष्ट राजमुद्रा उसके आगे कर दी। 'यह स्वयं महाराज की अपनी मुद्रा है। उन्होंने यह मुझे इसी लिए दी कि मेरे कथन का तत्काल पालन किया जाये।'

'सेनापति धनुर्धर! खोने के लिए हमारे पास एक क्षण का भी समय नहीं है।' कुमारदेवी ने कड़े आदेशात्मक स्वर में कहा, 'मुझे भी महाराज ने यही आज्ञा देकर यहाँ भेजा है। महाराज स्वयं ही आते....'

'हाँ, आ ही रहे थे, परन्तु....'

'परन्तु क्या?'

'बुढ़ापे के कारण चक्कर आ गए तो वहीं सिर थामकर बैठ जाना पड़ा। मैं भागा जा रहा हूँ भिषग्वर चन्द्रगोत्र को बुलाने। लेकिन आप जल्दी कीजिए। सेनापति, आप शीघ्र सन्निपात भेरी बजवाइए और तत्काल बाहर निकल जाइए। महाराज का आदेश है कि शत्रुदल को बाहर ही रोका जाये। सेनापति कुंजरक और मंत्रगुप्त ने मिलकर अवश्य कोई दुरभिसन्धि की है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि हमारी सेना पहले आगे बढ़कर मोरचेबन्दी करे।

इसके बाद महाबलाधिकृत धनुर्धर को कुछ भी कहने के लिए नहीं रह गया। उसने शंखनाद किया। थोड़ी ही देर में सन्निपात भेरी हुई। मागध

सेना के सैनिक मैदान में करीने से आ खड़े हुए। सेनापति धनुर्धर उन्हें लेकर दुर्ग के बाहर चला गया।

उधर सेना जा रही थी; इधर सवेरे की पहली किरण फूट रही थी।

सन्निपात भेरी को सुनकर सोये प्रजाजन हड़बड़ाकर उठ बैठे और अस्त-व्यस्त दशा में घरों से बाहर निकल आये। वहाँ उन्हें लिच्छवी सैनिक दिखाई दिये। साकेत के सैनिक दिखाई दिये। फिर उन्होंने डिंडिमिका-घोषणा सुनी : 'पाटलीपुत्र के समस्त नर-नारी सुनें। पाटलीपुत्र पर आक्रमण होनेवाला है, उसका निवारण करने के लिए वैशाली से कुमारदेवी यहाँ आई हैं। सब उनका साथ दें, उनसे सहयोग करें। पाटलीपुत्र की शासनदेवी कुमारदेवी की जय हो!'

इस घोषणा को सुनकर पाटलीपुत्र के नागरिक स्तब्ध ही रह गए। वे अभी सोच ही रहे थे कि यह सब कैसे और कब हुआ कि चारों ओर अफवाहें उड़ती सुनाई दीं :

'सुन्दर वर्मा मारा गया और मंत्रगुप्त पलायन कर गया!'

१६. पाटलीपुत्र की अन्तिम सभा

पाटलीपुत्र में की जा रही डिंडिमिका-घोषणा नगरजनों के लिए वज्रपात के समान थी। और राजा तथा मंत्री के सम्बन्ध में उड़ती हुई अफवाहों ने तो जैसे लोगों की कमर ही तोड़ दी।

लोग स्तम्भित हो उठे। एक क्षण तो लोगों की समझ में ही नहीं आया कि क्या हुआ और कैसे हुआ। फिर जब चेतना लौटी तो पहला विचार यही आया कि हाय, नगरी अनाथ हो गई! कोई उसका रक्षक नहीं रहा! लेकिन सबको आश्चर्य इस बात का था कि रातोंरात यह सब कैसे हो गया? किसने किया? क्यों किया? कब किया? सब जानना चाहते थे कि महाराज मगधपति कहाँ हैं? सच ही, उनका वध कर दिया गया या वह जीवित हैं? मंत्री क्यों भाग गया? भागकर गया कहाँ? प्रश्न तो कई थे, परन्तु उत्तर

किसी का नहीं था। किसी के पास उत्तर होता तो मिलता। प्रश्नों के अनुत्तरित रह जाने से लोगों की घबराहट बढ़ती जाती थी। एक प्रश्न का उत्तर न मिलने पर अनेक प्रश्न उठ खड़े होते थे।

कुछ लोग अनुमान से उत्तर भी देते। परन्तु वे होतीं निरी अटकलबाजियाँ। ऐसी अटकलबाजियों से लोगों की विह्वलता और भी बढ़ जाती थी।

कुछ लोग कहते, महाराज सुन्दर वर्मा अत्यधिक बीमार हैं; उन्हीं ने वैशाली से कुमारदेवी को रातोंरात बुलाया है। कोई इसे मंत्री मंत्रगुप्त की योजना बताता था। कोई कहता था कि वैशाली को वश में करने के लिए गये हुए कुंजरक ने कुमारदेवी को यहाँ भेजा है। कोई-कोई चन्द्रगुप्त को इस कांड के लिए दोषी ठहराता था। बहुत-से ऐसे भी थे जो केवल भाग्य का दोष देकर अपनी निराशा प्रकट कर रहे थे।

लेकिन डिंडिमिका-घोष में किसी प्रकार की अस्पष्टता और अटकलबाजी नहीं थी। पाटलीपुत्र की पुष्यमित्र सभा का अधिवेशन बुलाया गया था। प्रत्येक व्यक्ति को उसमें निमंत्रित किया गया था। नगरश्रेष्ठी, सार्थवाह, सदस्य, मंत्री, निगम सभा—आमंत्रितों की सूची में सभी का नाम था। राज्य-परिवर्तन के बारे में वास्तविक तथ्य वहीं प्रकट किया जाने को था।

पाटलीपुत्र नगर को शासक-विहीन तो रहने नहीं दिया जा सकता था। ऐसे में तो नगर और राज्य दोनों का ही विनाश निश्चित था।

सुन्दर वर्मा मारा गया था; लेकिन उसको मारनेवाले के बारे में कोई कुछ नहीं जानता था। प्रासाद के द्वारपाल चन्द्रगुप्त का नाम लेते थे। साकेत के सैनिक और लिच्छवी कहते थे कि मंत्रगुप्त महाराज सुन्दर वर्मा का वध करके भाग गया। लोगों का भी ऐसा ही विश्वास था कि मंत्रगुप्त ही महाराज का वध करके भागा है; कुंजरक के साथ मिलकर वह पाटलीपुत्र के सिंहासन पर अपना अधिकार करना चाहता था; इसी लिए महाराज ने कुमारदेवी को यहाँ बुलाया।

कुछ लोग कहते थे कि प्रवरसेन आ रहा है। कुछ कहते थे कि नहीं, प्रवरसेन नहीं, गणपतिनाग आ रहा है। जितने मुँह उतनी बातें थीं।

अफवाहें अनेक थीं। सत्य एक भी नहीं था। सच बात मालूम करने की

किसी को पड़ी भी नहीं थी। सब यही सोच रहे थे कि नगर का कोई स्वामी नहीं रहा। सब यही चाहते थे कि कोई भी स्वामी बन जाये तो जी-में-जी आये। स्वामी-विहीन अनाथ नगर में भला कौन अपने को सुरक्षित अनुभव करता!

सवेरा हुआ और लोगों का प्रवाह पुष्यमित्र सभा के विशाल भवन की ओर बह चला। वास्तविकता को जानने के लिए सभी उत्सुक और उद्विग्न थे। सार्थवाहपति, निगम, मंत्री, श्रेष्ठी, नागरिक सभी का एक ही लक्ष्य था—पुष्यमित्र परिषद् भवन।

देखते-ही-देखते सारा सभास्थल लोगों से भर गया। तिल रखने की भी जगह वहाँ नहीं बची थी। सभाभवन के समीपवाले वृक्षों, अट्टालिकाओं और चन्द्रशालाओं में भी लोगों ने कब्जा जमा लिया था। चारों ओर नरमुण्ड-ही-नरमुण्ड दिखाई देते थे।

लोगों में निरी उत्सुकता थी। एक रात में इस प्रकार की उथल-पुथल और राज्य-परिवर्तन हमारे पतन का द्योतक है, इस ओर जैसे किसी का ध्यान भी नहीं गया था। परिवर्तन हुआ तो अच्छा ही हुआ—यही भाव सबके चेहरों पर लिखा हुआ दिखाई देता था।

परिषद् का विशाल भवन लोगों से खचाखच भर गया था। लोग चुप बैठे थे। इतनी शान्ति थी कि सुई भी गिरती तो सुनाई दे जाती। लोग बैठे देख रहे थे। मंच पर सेनापति कुंजरक नहीं था। महामंत्री मंत्रगुप्त नहीं था। महाराज भी न थे। परिचितों में केवल सेनापति धनुर्धर दिखाई देता था। कुमारदेवी ने उसे परिषद् से आदेश प्राप्त करने के लिए बुला भेजा था। उसकी समस्त सेना पाटलीपुत्र नगर के बाहर पड़ी हुई थी। सेना को कूच के आदेश मिल चुके थे, लेकिन कोई नहीं जानता था कि सैनिकों को कहाँ जाना होगा। नगर में स्थान-स्थान पर लिच्छवी और साकेत के सैनिक दिखाई पड़ रहे थे। नगर की सुरक्षा, शान्ति-स्थापना और व्यवस्था का भार उन्हीं को सौंपा गया था। यह इस बात का सूचक था कि राज्य-परिवर्तन हो चुका है। रातोंरात क्रान्ति हो गई थी। पाटलीपुत्र में किसी को इसकी जानकारी नहीं थी। जानती थी केवल कुमारदेवी। अब स्थिति यह थी कि यदि चन्द्रगुप्त

वैशाली के लिच्छवी सैनिकों की सहायता से पाटलीपुत्र के शासन-सूत्रों को सँभाल लेता तो नगर की रक्षा हो सकती थी। यदि ऐसा न किया जाता तो कोई भी आक्रमण करके नगर का स्वामी बन बैठता और तब नगरजनों की विपत्ति की कोई सीमा न रह जाती।

नागरिकों को यह वस्तुस्थिति समझाना नितान्त आवश्यक हो गया था। पहली बात यह थी कि कोई परिवर्तन का विरोध न करे और नये शासन की स्थापना हो जाये। क्योंकि सुन्दर वर्मा तो मारा ही गया था, परन्तु उसका शिशु राजकुमार कल्याण वर्मा अभी तक जीवित था और लोग उसी को राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी समझते थे। कुंजरक उसका सहायक और समर्थक था। मंत्रगुप्त भी यहाँ से भागकर उसी के पास इसी उद्देश्य से गया था। सुन्दर वर्मा के अन्तिम शब्द 'मंत्री, मेरे पुत्र को बचाओ!' अभी तक कुमार-देवी के कानों में गूँज रहे थे। अब सबसे बड़ा डर यह था कि कल्याण वर्मा को लेकर कुंजरक, मंत्रगुप्त, प्रवरसेन और गणपति नाग मिलकर कोई नया मोरचा न बना लें। इस संकट का दुहरा परिणाम होता। यदि लोग पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर देते तो गृहयुद्ध छिड़ जाता और यदि वे लोग वैशाली पर आक्रमण करते तब भी गृहयुद्ध छिड़ जाता।

इसलिए यह आवश्यक हो गया था कि पुष्यमित्र सभा वैशाली और मगध के संयुक्त शासन की घोषणा करे और चन्द्रगुप्त को उसका शासक स्वीकार कर ले। यह काम पूरा होते ही कुमारदेवी को वैशाली चले जाना होगा। वैशाली को वह संकट की कगार पर ही छोड़कर यहाँ दौड़ी आई थी। गणपतिनाग वहाँ बन्दी था। कुंजरक अपनी सेना लिये पड़ा था। मंत्रगुप्त भागकर वहीं गया था। यदि उन्होंने मिलकर वैशाली पर आक्रमण कर दिया तो न रहेगी वैशाली, न रह पायेगा मगध और न रह जायेगा भारतवर्ष! कुमारदेवी का सारा महत् स्वप्न ही छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

जब परिषद् भवन में सब लोग आ गए तो वहाँ हरिषेण मंत्री, काचदेव और चन्द्रगुप्त भी एक-एक कर आये। उन्हें देखकर लोगों ने किसी प्रकार की हर्षध्वनि अथवा जय-घोषणा नहीं की। लोग बिलकुल चुप रहे। सब सोच रहे थे कि अब मगधपति किसे माना जाये? आगन्तुकों में तो कोई मगधपति

नहीं था और किसी को भी लोग मगधपति के पद के उपयुक्त मानने को तैयार नहीं थे।

सुन्दर वर्मा ने जिसे अपना कृतक-तनय माना, शासन-तंत्र में जिसे उसने सर्वोच्च स्थान प्रदान किया, उसी चन्द्रगुप्त ने सुन्दर वर्मा की हत्या की है, यह बात यदि लोगों को मालूम हो गई तो वे विश्वासघाती कहकर उसका तिरस्कार करेंगे और कभी उसका मुँह ही देखना नहीं चाहेंगे। इसलिए यह भी आवश्यक हो गया था कि सुन्दर वर्मा के हत्यारे का निपटारा अभी कर दिया जाये। क्योंकि लोगों ने चन्द्रगुप्त के आने पर जयघोष नहीं किया और यह इस बात का द्योतक था कि जन-सामान्य चन्द्रगुप्त को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे हैं। लोगों के मन में इस तिरस्कार के रहते चन्द्रगुप्त को कभी भी मगधपति बनाया नहीं जा सकता था। जबर्दस्ती बनाने पर भी लोग उसे स्वीकार न करते।

कुमारदेवी समझ गई कि इस सम्बन्ध में लोगों का मत-परिवर्तन करना आवश्यक होगा।

जब सब लोग मंच पर आ गए तो हरिषेण बोलने के लिए खड़ा हुआ। लोग चन्द्रगुप्त को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं, यह बात उसे विदित हो चुकी थी। लोग राज्य-परिवर्तन के पक्ष में हैं, परन्तु चन्द्रगुप्त का विश्वासघात लोगों को पसन्द नहीं, यह बात हरिषेण ने लोगों के आचरण से जान ली थी। लोगों को सम्बोधित करते समय उसे इस विषय में सतर्क रहना होगा। साथ ही उसे चन्द्रगुप्त की ओर से भी सतर्क रहना होगा। वैशाली के प्रति चन्द्रगुप्त के निश्चयात्मक दृष्टिकोण की जानकारी न तो कुमारदेवी को थी और न हरिषेण को। अभी तो मगध और साकेत दोनो स्थानों की सेनाएँ उसी के नियंत्रण में थीं और वह उनका मनचाहा उपयोग कर सकता था। परिषद् जो चाहे निर्णय करे, सैनिक-शक्ति तो चन्द्रगुप्त के ही हाथ में थी। सैनिक-शक्ति के सहारे वह परिषद् के निर्णय का विरोध भी कर सकता था। चाहे तो वह वैशाली से युद्ध भी छेड़ दे। अभी तक तो उसने सहायता ही की थी। लेकिन वह सहायता घोर स्वार्थ से प्रेरित थी। वह अपना मार्ग निष्कंटक करना चाहता था। काचदेव साकेत की सेना को इसी उद्देश्य से

पाटलीपुत्र लाया था। यही सब सोचता-विचारता हरिषेण वक्ता के स्थान पर आकर खड़ा हुआ।

उसके गौर, कान्तिवान, तेजस्वी और सुन्दर मुख-मण्डल को देखकर लोगों ने मन-ही-मन प्रसन्नता का अनुभव किया। वह विद्वान था, कवि था, वैशाली में उसकी समता करनेवाला कोई नहीं था। महान साम्राज्यों की स्थापना करने की शक्ति उसमें थी। उसकी प्रसिद्धि पाटलीपुत्र में भी पहुँच चुकी थी। यहाँ का वातावरण कुल मिलाकर उसके अनुकूल ही था। चन्द्रगुप्त अभी चुप ही रहना चाहता था। उसने हरिषेण को बोलने दिया।

हरिषेण ने धीर-गम्भीर स्वर में आरम्भ किया। उसका स्वर स्पष्ट, गूँजता हुआ और चेतावनी देता हुआ-सा था।

'परिषद् के सभी सदस्य मेरे वक्तव्य को ध्यानपूर्वक सुनें। पाटलीपुत्र नगर के जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हुआ है। वृद्ध मगधपति सुन्दर वर्मा सुरंग-प्रासाद में, रात के समय मार डाले गए। इस समय यह नगर और यह राज्य अनाथ है, कोई इसका शासक और स्वामी नहीं।'

'मगधपति मार डाले गए? यह तुम क्या कह रहे हो? किसने मारा है मगधपति को? उस हत्यारे को पहले हमारे सामने खड़ा करो। हम जानना चाहते हैं कि वह अधम, पामर हत्यारा कौन है?'

'हत्यारे के बारे में जितना आप लोग जानते हैं उतना ही मैं भी जानता हूँ।' हरिषेण ने तपाक से उत्तर दिया, 'उससे अधिक मुझे कुछ नहीं मालूम। उसे दण्ड अवश्य दिया जायेगा। लेकिन इस समय मुख्य और तात्कालिक प्रश्न है नगरी की रक्षा का, इसके विनाश को रोकने का।'

सैकड़ों नागरिकों के नेत्र एकबारगी चन्द्रगुप्त की ओर उठ गए। उन नेत्रों में घृणा और तिरस्कार का पारावार लहरा रहा था। लेकिन हरिषेण ने स्पष्ट शब्दों में कुछ नहीं कहा। स्पष्ट शब्दों में कहने पर जो प्रतिक्रिया होती उसे वह जानता था।

और वह यह भी जानता था कि इस परिषद् में कोई दम नहीं है। नागरिक विभक्त हैं। किसी की बात को कोई भी बिना विरोध के स्वीकार नहीं करेगा। सब अपनी-अपनी हाँकेंगे। परिषद् का केवल औपचारिक रूप ही रह

आया था, उसकी आत्मा कभी की निकल चुकी थी। लेकिन लोगों को वह औपचारिक रूप, वह प्राणविहीन ढाँचा ही प्रिय था; और हरिषेण को उसी को अपने अनुकूल बनाना था।

उसने कहा—नगरजनो, मैं आपके समक्ष निवेदन कर चुका हूँ कि महाराज मगधपति के हत्यारे के बारे में कोई कुछ नहीं जानता। कोई नहीं कह सकता कि महाराज की हत्या किसने की! लेकिन इस समय इसकी छान-बीन करने से भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि पाटलीपुत्र नगर और मगध राज्य शासक-विहीन न रहे। सेनापति वैशाली में बैठे हैं। महामात्य मंत्रगुप्त नगर का परित्याग कर चले गए हैं।

'क्या मंत्रेश्वर भी भाग गए? कहाँ गये हैं वे? और तब नगर में कौन है?'

'कौन कहाँ गया है और कौन कहाँ है—यह कुछ भी इस समय निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हम तो महाराज और नगर की रक्षा के लिए यहाँ आये थे। महाराज की विशिष्ट राजमुद्रा के प्रताप से जब हमने सुरंग-प्रासाद में प्रवेश किया तो वहाँ का दृश्य देखकर दंग रह गए! महाराज मगधपति स्वयं अपने ही द्वारपालों से घिरे हुए थे।'

'द्वारपालों से घिरे हुए थे? लेकिन द्वारपालों को इस कुकृत्य के लिए उकसाया किसने? क्यों उसने ऐसा किया? कौन था वह?'

चारों ओर से प्रश्न पूछे जाने लगे। अनेक सदस्य उठकर खड़े हो गए। अनेक उठने का उपक्रम करने लगे।

'आपकी पृच्छा सही है। यह सब जानना चाहिए। लेकिन हम केवल अनुमान ही कर सकते हैं। चारों ओर अन्धकार है और हम उसमें केवल टटोल सकते हैं, निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि मंत्रेश्वर भागा है और यह इस बात का द्योतक है कि द्वारपालों को उसी ने उकसाया होगा। महाराज पर आक्रमण की प्रेरणा उसी की होनी चाहिए....परन्तु यह भी हो सकता है कि किसी बाहरी शक्ति ने ऐसा किया हो। सत्य क्या है, यह जानना तो अब किसी भी प्रकार सम्भव नहीं रहा, क्योंकि एक भी द्वारपाल जीवित नहीं बचा। जब

हम आये तो हमारा पहला काम विप्लव की उस आग को बुझाना था। हम उसे बुझाने को कूद पड़े। प्रश्न पूछने और कारणों की छानबीन करने का समय हमारे पास नहीं था। अपराधी का पता लगाने के लिए हम रुक नहीं सकते थे। यदि आते ही कूद न पड़ते तो सर्वनाश ही हो जाता। अब हम केवल इतना कह सकते हैं कि मगधपति सुन्दर वर्मा नहीं रहे !'

'तो उनके शिशु युवराज कल्याण वर्मा की जय हो।' चारों ओर से उच्च स्वर में घोषणा हुई : 'अब मगधपति वही हैं। मगध के सिंहासन पर अधिकार उन्हीं का है। प्रजा उन्हीं के साथ है, उन्हीं का साथ देगी। हत्या करनेवाला विश्वासघाती है।'

हरिषेण सहसा कुछ बोल न सका। फिर कुछ रुककर उसने कहा—हाँ, जय हो ! शिशुकुमार कल्याण वर्मा की अवश्य जय हो, यदि मंत्रगुप्त और कुंजरक उन्हें उठा न ले गए हों !

'क्या ? वे शिशुकुमार को भी उठा ले गए ? ऐसा कभी हो नहीं सकता। एक बच्चे को उठा ले जाकर वे करेंगे क्या ?'

'उसी को तो वे अपनी चतुरंग की विशिष्ट गोट बनायेंगे। उसी के नाम पर तो वे अब लड़ सकते हैं; प्रवरसेन और गणपतिनाग को बुला सकते हैं। इस प्रकार पाटलीपुत्र पर अधिकार करने की उनकी मन्शा हो सकती है। मैं तो समझता हूँ कि उनकी यही योजना है। अब निर्णय आप लोगों को करना है। प्रश्न यह है कि शिशु राजकुमार के अधिकारों को अनावश्यक महत्त्व देकर इस समय नगर को अरक्षित और शासक-विहीन रहने देना उचित होगा या नहीं ? आप क्या चाहते हैं ? नगर में किसी प्रकार का शासन न हो ? अराजकता बनी रहे ? क्या इससे नगर पर आक्रमण का भय बढ़ नहीं जायेगा ? मगध की सेना इस समय विशृंखलित है। आप सोच-कर देखें। क्या करना उचित होगा ? नगरी अशासित ही रहे ?'

'हाँ-हाँ !' और 'ना-ना !' का शोर मच गया। सारी परिषद् दो दलों में विभक्त हो गई। कौन क्या कहना चाहता है यह कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। बस, सब चिल्लाये जा रहे थे।

'आप निश्चय करें !' कुमारदेवी ने अपने स्थान से उठकर उच्च स्वर

में कहा। वह अपनी पूरी ऊँचाई में रणदेवी-जैसी लग रही थी। उसका मुख-मण्डल तेजोमय और आकर्षक था। उसकी ओर देखनेवाले की आँखें सहज ही चौंधिया जाती थीं। उसका स्वर शान्त और गम्भीर था, परन्तु सुननेवाले को ऐसा लगता था मानो वह दृढ़तापूर्वक आदेश प्रदान कर रही है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

वह आगे बढ़कर वक्ता के स्थान पर आ खड़ी हुई और बोलने लगी—नगरजनो! क्या आप यह चाहते हैं कि आपकी यह प्राचीन गरिमामयी नगरी प्रवरसेन के अधिकार में चली जाये, उसकी आश्रिता बन जाये? यदि आपको इसमें अपना गौरव दिखाई देता हो तो अवश्य ऐसा कीजिए। आप ऐसा करने के लिए स्वतंत्र हैं। लेकिन वैशाली का नगर किसी का आश्रित और दास नहीं बन सकता। आज तक उसने किसी की दासता स्वीकार नहीं की। वैशाली की रक्षा के लिए वीरों की कमी नहीं हुई और न कभी होगी। आप नागों के आश्रित बनना चाहते हैं, दास बनकर अपने गौरव को खंडित करना चाहते हैं तो प्रसन्नता से कीजिए; लिच्छवी तो पराधीनता में साँस भी नहीं ले सकता। आप दास बनें, पराधीन बनें, किसी के आश्रित बनें, हमारी बला से! ऐसी दशा में हम यहाँ एक क्षण भी रुक नहीं सकते। प्रवरसेन यहाँ आकर जो करेगा वह हम जागते हैं। लिखकर रख लीजिए, आपकी यह नगरी चौपट हो जायेगी। शिशु युवराज के लिए इस नगर को अभी अरक्षित और शासक-विहीन नहीं छोड़ा जा सकता।

कुमारदेवी के चुप हो जाने के बाद भी उसका आदेशात्मक स्वर बड़ी देर तक सभाभवन के कोने-कोने में गूँजता रहा। कुछ देर तक लोग चुप बैठे उस प्रतिध्वनि को सुनते रहे। ऐसा लग रहा था मानो वे अँधेरे में भटक रहे हों। अन्त में फिर वही 'हाँ-हाँ!' और 'ना-ना' का शोर सुनाई दिया। उस 'हाँ' और 'ना' में यही पता नहीं चल रहा था कि शिशु राजकुमार के समर्थक कौन हैं और विरोधी कौन? जीवन-मरण के प्रश्न पर भी एक होने की शक्ति और संयुक्त होने की क्षमता मगधजनों में रह नहीं गई थी। कुमारदेवी ने ऐसी निर्वीर्य गौरवहीन परिषद् को महत्त्व देना ही व्यर्थ समझा।

इतने में कुछ परिषद्-सदस्य उठकर खड़े होते दिखाई दिये। उन्होंने

रोष-भरे स्वर में चिल्लाकर कहा—प्रवरसेन भले ही आये ! वह वीर है। उसने कुशानों को मार भगाया है। वह आया तो राजकुमार की रक्षा ही करेगा।

'नगरजनो !' हरिषेण ने उन सदस्यों के रोष को परखकर कहा, 'आप समझ लीजिए कि प्रवरसेन यहाँ आयेगा रक्षक बनकर, लेकिन बाद में स्वयं बन बैठेगा यहाँ का स्वामी। आपका शिशु युवराज कभी मगधपति नहीं बन सकेगा। क्या आप यही चाहते हैं ? यह तो कढ़ाई से निकलकर चूल्हे में गिरने-जैसी बात हुई। क्या आप प्रवरसेन को मगधपति बनाना चाहते हैं ? याद रखिए, वह मगधपति बन गया तो आपकी यह परिषद् भी न होगी; आपकी कोई बात नहीं सुनी जायेगी। तब उसी का कथन हुआ करेगा सर्वोपरि और अन्तिम !'

'न रहे यह परिषद् ! अब इसमें रह ही क्या गया है ? न किसी प्रकार की सत्ता है और न किसी प्रकार की तेजस्विता। ऐसी परिषद् से पूछा भी जाये तो क्या और न भी पूछा जाये तो क्या ?'

'यदि ऐसी ही बात है तो आप लोग वैशाली के साथ क्यों नहीं मिल जाते ? फिर तो प्रवरसेन को यहाँ आते हुए हजार बार सोचना होगा। वह लिच्छवियों को पहचानता है।'

'हाँ-हाँ, वैशाली के साथ मिल जायें और बेचारे शिशु युवराज को दर-दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ दें, क्यों ! जो प्रजा ऐसे बालक राजा के साथ विश्वासघात करती है उसे नरक में भी ठौर नहीं मिलता।' कुछ वचन-वीरों ने बाँहें चढ़ाते हुए कहा। अपनी बात को जोर देने के लिए वे उठकर खड़े भी हो गए थे।

सारा सभाभवन भिन्न-भिन्न विचारों से प्रतिध्वनि होने लगा। किन्हीं भी दो व्यक्तियों की राय आपस में मिल नहीं रही थी।

कुमारदेवी ने अपना एक हाथ ऊँचा किया। किसी प्रकार शान्ति स्थापित हुई।

'सुनो मगधजनो, सुनो ! आप लोगों में एक होने की शक्ति ही नहीं रह गई। यदि मंत्रगुप्त शिशुकुमार को ले नहीं गया है, यदि शिशु युवराज

यहीं है, तो केवल वैशाली ही उसकी रक्षा कर सकती है। यदि मंत्रगुप्त भाग गया है तो उसका यहाँ कोई अधिकार नहीं रह जाता। वह अपने सारे अधिकारों से च्युत किया जाता है। वह मगध का मंत्री बना नहीं रह सकता। शिशुकुमार का वह रक्षक नहीं। पाटलीपुत्र में उसके लिए कोई स्थान नहीं। वह है प्रवरसेन का आश्रित; और प्रवरसेन का आश्रित यहाँ आ नहीं सकता। प्रवरसेन के आश्रित द्वारा ले जाया गया शिशु राजकुमार भी लौटकर यहाँ आ नहीं सकता। यह है वैशाली का निर्णय। अपने इस निर्णय की रक्षा के लिए वैशाली का नगर मर मिटेगा। दूर दक्षिण का कोई यहाँ आकर राजा बन बैठे और शासन करे, इसे हम कभी सहन नहीं करेंगे। वह होगा हमारे पार्श्व में शूल की भाँति। उसके शासन का परिणाम क्या होगा, यह जानते हो? देर-अबेर ऐसा शासन कुशाणों, शकों और यवनों को आक्रमण के लिए प्रेरित करेगा। हम भारत को एक बनाना चाहते हैं, भारत की अखण्डता को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं। यदि यह आदर्श तुम्हारी समझ में नहीं आता तो हम विवश हैं। तुम्हें समझाने के लिए हम कुछ नहीं कर सकते और तुम्हारी दुर्बलता के कारण हम स्वयं भी दुर्बल नहीं बन सकते। वैशाली की नीति एकदम स्पष्ट है। या तो वैशाली के साथ मिल जाओ और बलवान बनो या वैशाली को आने दो और अपने को बलवान बनाने दो। तीसरा कोई मार्ग नहीं है। तत्काल निर्णय करो। समय हमारे पास एक क्षण का भी नहीं है। कोई नहीं जानता कि इस समय पाटलीपुत्र के दुर्ग के बाहर क्या हो रहा है। मंत्री और सेनापति दोनो ही यहाँ से भागकर चले गए हैं। इस बात के मतलब को समझो। यहाँ इस समय किसी का शासन नहीं है। नगरी को शासक-विहीन रखने का स्पष्ट अर्थ है प्रवरसेन और यवनों को यहाँ आने का निमंत्रण देना।

'तुम समझते हो कि प्रवरसेन यहाँ आकर शासन कर लेगा! लेकिन यह तुम्हारा निरा भ्रम है। ठेठ विन्ध्यप्रदेश से यहाँ आकर कोई शासन कर नहीं सकता। देर-अबेर उसका शासन विश्रृंखलित हो जायेगा। शासन के विश्रृंखलित होते ही पाटलीपुत्र की उस अनाथावस्था का वैशाली पर भी अनिवार्य रूप से प्रभाव पड़ेगा। हम ऐसा कभी नहीं होने देंगे। पाटलीपुत्र और वैशाली

एक होकर भारत का केन्द्र बनेंगे, भारत की रक्षा और नवनिर्माण करेंगे। निर्णय करो। शीघ्रता करो! एकमत हो जाओ।'

लोगों में भनभनाहट शुरू हो गई। किसी ने कहा, 'बात तो ठीक है, इस में बुरा ही क्या है?' किसी ने कहा, 'बिलकुल सच है, बड़े पते की बात इस ने कही है....'

अन्त में उस भनभनाहट को दबाता हुआ एक महाघोष सुनाई दिया : 'महादेवी कुमारदेवी की जय हो! जय हो कुमारदेवी की!'

लोगों में शुभाशुभ और भले-बुरे का निर्णय करने की सामर्थ्य तो रह नहीं गई थी। जो हुआ सो ठीक हुआ—इस भाव से उन्होंने कुमारदेवी के प्रस्ताव को हर्षध्वनि के साथ स्वीकार कर लिया।

और कुमारदेवी उन्हें सोचने-विचारने के लिए एक पल का भी समय नहीं देना चाहती थी। उसने तुरन्त दूसरा प्रस्ताव लोगों के सम्मुख उपस्थित कर दिया :

'तो यहाँ की सेना का—लिच्छवी सेना, साकेत की सेना और मागधी सेना का—तीनों स्थानों की सेना का नेतृत्व और संचालन अब महाराज चन्द्रगुप्त करेंगे। सेना के बिना केवल वचनों की वीरता से शत्रुओं के आक्रमण को रोका नहीं जा सकता। वचनों के पीछे यदि कार्य की शक्ति न रही तो वे वचन बोलनेवाले का ही विनाश कर डालते हैं। पाटलीपुत्र के बाहर जो हो रहा है वह सब इस समय अन्धकार के गर्भ में छिपा हुआ है। कौन कहाँ आ-कर मोरचा बाँधे बैठा है, इसे कोई नहीं जानता। धनुर्धर सेनापति यहाँ हैं। वह बाहर के समाचार प्राप्त करने के लिए इसी समय यहाँ से प्रस्थान करेंगे।

'इस समय नगर में सत्रियों की सुचारु व्यवस्था भी नहीं रह गई है। ऐसी स्थिति में यदि नगर रातोंरात घिर गया तो उसका पराभव निश्चित है। इस-लिए साकेतपति चन्द्रगुप्त तीनों स्थानों की संयुक्त सेना का नेतृत्व और संचा-लन करेंगे।

'और हम वैशाली लौट जायेंगे। वहाँ जाकर पता लगायेंगे कि सेनापति कुंजरक और महामंत्री मंत्रगुप्त कहाँ हैं, उनकी योजना क्या है, वे पाटलीपुत्र

के साथ क्या करना चाहते हैं और शिशु राजकुमार कहाँ है? इन प्रश्नों का पता लगाना है। हम लौट जाना चाहते हैं। आप हमें लौटने की अनुमति प्रदान करें।'

पाटलीपुत्र की यह अन्तिम सभा थी। लेकिन इस बात को कोई जानता नहीं था। जानती थी केवल कुमारदेवी। उसने परिषद् से आदेश अवश्य प्राप्त किया, लेकिन वह निरी औपचारिकता थी।

परिषद् के आज के अधिवेशन ने सिद्ध कर दिया था कि मागधजनों में अब एक होने की शक्ति नहीं रह गई है। जो आ पड़े, वह भला हो, बुरा हो, उसे स्वीकार कर लेने की निराशाजनक स्थिति तक वे पहुँच चुके थे। कभी-कभी केवल शाब्दिक उत्साह अवश्य प्रकट किया जाता था, लेकिन वह निरा शाब्दिक और पोला होता था।

कुमारदेवी के अन्तिम प्रस्ताव की प्रतिध्वनि भी वहाँ तुरत सुनाई दी: 'सेनापतिराज चन्द्रगुप्त महाराज की जय हो!'

'हरिषेण महामंत्री की जय हो!' कुछ लोगों ने हरिषेण को महामंत्री के पद पर आसीन भी कर दिया!

हरिषेण ने दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए कहा—मगध के नागरिको! इस समय हम नितान्त अँधेरे में हैं। हमें इसी समय लौटकर जाना है। आपने इस समय जो कुछ किया वह भारतवर्ष के भावी निर्माण की भूमिका बने। इस समय तो हम विदा होते हैं।

और कुमारदेवी के जयजयकार के साथ मगध की पुष्यमित्र सभा, वह नाम की परिषद्, सदा के लिए विसर्जित हो गई।

फिर उसका अधिवेशन कभी नहीं हुआ।

२०. महामंत्री हरिषेण का प्रत्युत्तर

कुमारदेवी को अब वैशाली की रक्षा के लिए दौड़ना था। पवन-वेग से भागकर उसे अविलम्ब वैशाली पहुँच जाना होगा। वहाँ सेनापति कुंजरक

जमा बैठा था। मगध की शक्तिशाली सेना उसके साथ थी। मंत्रगुप्त भी वहीं गया था। जिसके नाम पर युद्ध छेड़ा जा सकता था वह शिशुकुमार कल्याण वर्मा भी वहीं था।

मगधपति सुन्दर वर्मा की आखरी वसीयत यही थी कि शिशु राजकुमार के नाम पर युद्ध छेड़ा जाये। मंत्रगुप्त अब ऐसा ही करेगा; करने की उसमें शक्ति भी थी।

यदि उन्हें ऐसा करने दिया गया तो वैशाली एक लम्बे गृहयुद्ध की दलदल में फँस जायेगी। गणपतिनाग, प्रवरसेन आदि तो चारों ओर से ताक लगाये बैठे ही थे।

इसके निवारण का एक ही उपाय था। सुगंगप्रासाद के समाचार वहाँ पहुँचने के पहले ही लिच्छवियों को तड़ित प्रहार करके शिशु राजकुमार को अपने अधिकार में कर लेना चाहिए। जब बाँस ही नहीं रहेगा तो बाँसुरी कैसे बजेगी? मागधों के पास शिशु युवराज ही नहीं रहेगा तो वे लड़ेंगे किसके नाम पर?

पाटलीपुत्र में अब चन्द्रगुप्त था। वही सेना का अधिपति था। वास्तविक रूप से देखा जाय तो मगधपति भी था। काचदेव की ओर उसकी राजनीति अभी समझ में नहीं आई थी। वैशाली के साथ उनके सम्बन्धों का स्पष्टीकरण भी नहीं हुआ था। लेकिन जिस तत्परता से उन्होंने सहायता की उससे तो यही लगता था कि देर-अबेर वे अवश्य वैशाली के साथ सहयोग करेंगे। बात केवल समय की थी। प्रतीक्षा करनी होगी। वैशाली और पाटलीपुत्र के एक होने पर ही भारत के महान भविष्य की नींव रखी जा सकती थी।

और फिर अभी सोचने-विचारने के लिए समय ही कहाँ था। अभी तो तत्काल दौड़कर वैशाली पहुँचना था।

जैसे ही अँधेरा हुआ कुमारदेवी, मंत्री हरिषेण और लिच्छवी वैशाली की ओर उड़ चले।

जब वे वैशाली पहुँचे तो रात अभी शेष थी। बाह्य चिह्नों से यही दृष्टिगोचर होता था कि अभी सुगंगप्रासाद के समाचार यहाँ पहुँचे नहीं हैं। पकड़े जाने के भय से मंत्रगुप्त ने वैशाली पहुँचने का लम्बा और चक्करवाला

मार्ग अपनाया था। सीधे मार्ग से आना उसने निरापद नहीं समझा। लेकिन दो-एक दिन में वह पहुँच ही जायेगा और तब पाटलीपुत्र की परिस्थिति के बारे में सेनापति कुंजरक को सब-कुछ मालूम हो जायेगा। उसके आने और कुंजरक के घटनाओं से अवगत होने के पहले ही शिशु राजकुमार को अपने अधिकार में कर लेना होगा।

सीधे से तो सेनापति कुंजरक कभी शिशु राजकुमार को देगा नहीं। उससे ऐसी आशा करना आकाश के तारे तोड़ने के ही समान था।

हरिषेण और कुमारदेवी इस पर विचार करने के लिए बैठे। उन्होंने तिलभट्टक को बुलाया। सेनापति श्रीषेण भी आया। चर्चा और विचार-विनिमय हुआ। यह तय पाया गया कि सेनापति श्रीषेण लिच्छवी सैनिकों को लेकर मगध के सैन्य शिविर को चारों ओर से घेर ले। घेरा इतना मजबूत हो कि न तो शिविर के अन्दर से कोई बाहर निकलने पाये और न कोई बाहर से भीतर प्रवेश कर सके।

निर्णय के अनुसार श्रीषेण अपने सैनिकों के साथ चल पड़ा। आधी-रात के बादवाला यामघोष उसने सुना। रात्रि की नीरवता में लिच्छवी सैनिक परछाईं की भाँति उसके पीछे चल रहे थे। मगध सैन्य शिविर के समीप पहुँचकर उसने लिच्छवी सैनिकों की टुकड़ियों को शिविर के चारों ओर फैला दिया। फिर मुख्य-मुख्य द्वारों पर विशेष सैनिकों का प्रबन्ध किया।

अब कुंजरक का शिविर चारों ओर लिच्छवी सैनिकों से घिर गया था। शिविर से बाहर जाने या शिविर में प्रवेश करनेवाला कोई भी लिच्छवी सैनिकों की दृष्टि से बच नहीं सकता था।

सवेरा होते-होते तो कुंजरक का पूरा शिविर बिना दीवालों के कारागार में बन्द हो गया।

सवेरा होने पर कुंजरक ने यह देखा तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। शिविर के चारों ओर लिच्छवी सैनिकों की चौकियाँ पड़ी हुई थीं। यह किसने और क्यों किया? लिच्छवी तो युद्ध करना नहीं चाहते थे। और अभी हरिषेण मंत्री का प्रत्युत्तर भी उसे नहीं मिला था। फिर इन चौकियों का मतलब क्या? बहुत सोचने पर भी बात उसकी समझ में नहीं आई। सबसे बड़ी

मुश्किल तो यह थी कि वह अब पाटलीपुत्र के साथ अपना गुप्त व्यवहार भी नहीं बनाये रख सकता था। उसकी प्रत्येक हलचल पर लिच्छवी सैनिकों की कड़ी दृष्टि का पहरा लग गया था।

वह सशंक हो उठा। इसमें उसे महामंत्री हरिषेण की कोई गहरी चाल दिखाई दी। उसने उसी समय कवयित्री विज्जका को बुला भेजा। क्या यही महामंत्री हरिषेण का प्रत्युत्तर है? कवयित्री को शीघ्र पता लगाना होगा। और यह घेरा तो इसी समय उठ जाना चाहिए, नहीं तो युद्ध अनिवार्य हो जायेगा।

सेनापति का आदेश पाकर कवयित्री विज्जका मगध के सैन्य शिविर से बाहर निकली। अपने आने का सन्देश उसने पहले ही भेज दिया था। महामंत्री हरिषेण ने उसे आने की अनुमति दे दी। कवयित्री जब वहाँ पहुँची तो मंत्री हरिषेण था, कुमारदेवी थी और तिलभट्टक भी था।

सब का अभिवादन करके विज्जका आसन पर बैठते ही बोली महामंत्री, इसे हम क्या समझें? लिच्छवी युद्ध चाहते हैं या शान्ति? आपने प्रत्युत्तर देने का वचन दिया। हम विश्वास किये प्रतीक्षा करते रहे। आज देखते हैं तो हमारे शिविर के चारों ओर लिच्छवी घेरा डाले पड़े हैं। इसे हम क्या समझें?

'कवयित्री, मैंने आपसे कहा नहीं था कि प्रत्युत्तर तो वैशाली नगरी देगी? उसने प्रत्युत्तर दे दिया है।'

'क्या प्रत्युत्तर दिया है? हमें तो कुछ पता नहीं चला।'

'कवयित्री, पाटलीपुत्र दुर्बलों के हाथ में रहे, यह वैशाली को स्वीकार नहीं। हमारे पड़ोस में किसी दुर्बल का होना स्वयं हमारे लिए भी हानिकारक है। पाटलीपुत्र या तो शक्तिशाली बने या वैशाली के साथ मिल जाये। तीसरा कोई मार्ग हमें दिखाई नहीं देता। यदि आपको दिखाई देता हो तो बताइए।'

'महामंत्री हरिषेण, आपके इस कथन का क्या यह अभिप्राय है कि पाटलीपुत्र वैशाली को अपने से श्रेष्ठ और समर्थ स्वीकार करे?'

'किसी में सामर्थ्य और शक्ति हो तो उसे स्वीकार कर लेना स्वयं अपनी महत्ता की नींव मजबूत करना है।' हरिषेण का उत्तर संदिग्ध होने के साथ ही युद्ध की चुनौती देता हुआ-सा था। 'शक्ति शक्ति को प्रेरित करती है।

सामर्थ्य सामर्थ्य को अनुप्राणित करता है। शक्ति और सामर्थ्य की स्वीकृति व्यक्तित्व का निर्माण करती है। हानि तो तब होती है जब शक्ति और सामर्थ्य का अकारण विरोध और द्वेष किया जाता है।'

'तो क्या मैं यह समझूँ कि वैशाली पाटलीपुत्र के युवराज का निवास-स्थान बनने को प्रस्तुत नहीं ?'

'मैं आपकी अर्थग्राहिणी बुद्धि की सराहना करता हूँ विज्जका देवी। प्रायः ऐसा होता है कि जिस बात को कवि समझते हैं उसे सामान्यजन नहीं समझ पाते और जिसे सामान्यजन समझते हैं उसे कविगण नहीं समझ पाते। लेकिन आप एक ही साथ सामान्यजन-सुलभ और कविजन-सुलभ दोनों ही अर्थों को ग्रहण कर लेती हैं। यह देखकर मुझे परम आनन्द हुआ। इसके लिए मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ।'

'लेकिन इसका परिणाम क्या होगा, यह भी जानते हैं ?'

'मैं तो जानता ही हूँ; लेकिन यदि आप साफ-साफ समझा सकें तो और भी अच्छी तरह से जान जाऊँगा।'

'मंत्रीश्वर, इसका अर्थ होता है युद्ध !'

'जिससे केवल निर्बल डरते हैं।'

'यही आपका अन्तिम निर्णय है ?'

'कवयित्री, हम पहले निर्णय कर लेते हैं, शब्दों में व्यक्त उसे बाद में ही करते हैं। निर्णय करने से पहले शब्दों के उच्चारण को हम निरी बकवास कहते हैं।'

'तो मैं जाती हूँ। अब हमें युद्ध करना ही होगा।'

'लेकिन यदि आप एक काम करें तो युद्ध रुक सकता है।'

'वह क्या ?'

'शिशु राजकुमार को आप हमारे संरक्षण में छोड़ दीजिए।'

'शिशु राजकुमार को आपके संरक्षण में छोड़ दें ? क्यों ? क्या पाटलीपुत्र का अजेय दुर्ग धराशायी हो गया ? क्या मगध के सैनिक निर्वीर्य हो गए ? क्या महाराज मगधपति जीवित नहीं रहे ?'

'कवयित्री, महाराज मगधपति जीवित थे, परन्तु मगधपति निर्जीव हैं।'

जीवित थे और निर्जीव हैं—इन शब्दों का अर्थ विज्जका की समझ में नहीं आया। वह सोचने लगी कि हरिषेण का वास्तविक अभिप्राय क्या है ? निर्जीव से उसका अभिप्राय असमर्थ से है अथवा मृतक से ? और यदि मृतक से है तो क्या मगधपति मर गए ? कैसे मरे ? किसी ने विश्वासघात तो नहीं किया ? पाटलीपुत्र पर आक्रमण तो नहीं हुआ ? आक्रमण हुआ तो किसने किया ? विश्वासघात किया तो विश्वासघाती कौन है ? अवश्य उस नापित-जैसे चन्द्रगुप्त ने ही विश्वासघात किया होगा !

सही बात जानने के लिए हरिषेण से पूछना होगा। परन्तु पूछा इस भाँति जाये कि वह पाटलीपुत्र के सम्बन्ध में विज्जका की अज्ञता को ताड़ न सके। उस पर यही प्रकट होना चाहिए कि विज्जका पाटलीपुत्र के बारे में राई-रत्ती समाचारों से अभिज्ञ है।

परन्तु हरिषेण तो जानता था कि विज्जका कितने गहरे पानी में है। 'जीवित थे, परन्तु निर्जीव हैं' शब्दों को सुनकर वह जिस भाँति चौंक पड़ी उससे यह सिद्ध हो गया कि वह पाटलीपुत्र के बारे में कुछ नहीं जानती। इससे पता चलता है कि मंत्रगुप्त अभी तक यहाँ नहीं पहुँचा। हो सकता है कि वह प्रवरसेन के पास चला गया हो। परन्तु राजकुमार को साथ लिये बिना तो वह प्रवरसेन के पास कदापि नहीं जायेगा।

'मगधपति निर्जीव हैं, यह आप कैसे कह सकते हैं मंत्रीश्वर !' विज्जका ने कहा, वैशाली की सामर्थ्य और शक्ति को वह जानते हैं; इसी लिए तो वह वैशाली को इतना महत्त्व प्रदान कर रहे हैं। उसे मगध राज्य का दूसरा महान नगर बना रहे हैं और इसी उद्देश्य से उन्होंने हमें यहाँ भेजा है। वैशाली को चाहिए कि वह पाटलीपुत्र की शक्ति और महत्ता को अपनी शक्ति और महत्ता बनाये। लेकिन यह आपको स्वीकार नहीं। उलटे आप मगधपति को निर्जीव कहकर उनकी निन्दा कर रहे हैं। वह निर्जीव कैसे जो वैशाली को महत्ता का मार्ग सुझाये ! आइए, हम मिलकर एक हो जायें। एक होने का अर्थ है समर्थ और शक्तिशाली होना।'

आपको अधिक समझाना मेरे बूते की बात नहीं कवयित्री ! अब मंत्रीश्वर मंत्रगुप्त ही आपको सारी बातें विस्तार से समझायेंगे। लगता है वह अभी

यहाँ पहुँचे नहीं, परन्तु आयेंगे अवश्य। उनके आने पर सब-कुछ आपकी समझ में आ जायेगा।'

'मंत्रीश्वर आनेवाले हैं ? यहाँ आ रहे हैं ? आपसे यह किसने कहा ?'

'पाटलीपुत्र के मागधजनों ने। यहाँ के श्रेष्ठियों के सम्बन्धियों ने।'

'लेकिन अभी तक तो वह आये नहीं !' विज्जका ने कहा।

'तो अब आ जायेंगे। आते ही होंगे।' हरिषेण समझ गया कि मंत्रगुप्त अभी तक यहाँ पहुँचा नहीं है।

'अच्छा, तो मैं अब चलती हूँ। आपका प्रत्युत्तर बिलकुल स्पष्ट है। उसके अनुसार युद्ध अनिवार्य है।'

'बहुत-सी अनिवार्यताएँ हमारे मन की भ्रान्तियों से उत्पन्न होती हैं, विज्जकादेवी ! पाटलीपुत्र अकेला टिका नहीं रह सकता, इसे आप भी जानती हैं और हम भी; सारे पड़ोसी राज्य भी इसे जानते हैं। यह जानते हुए भी युद्ध को अनिवार्य मानना मन की भ्रान्ति नहीं तो और क्या है ? युद्ध अनिवार्य नहीं है; और जिस दिन वह अनिवार्य होगा उस दिन आपमें लड़ने की शक्ति नहीं होगी। बस, इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।'

'युद्ध तो होगा ही....' कवयित्री ने खड़े होते हुए कहा।

'भले ही हो !' हरिषेण ने उत्तर दिया।

'होगा नहीं कवयित्री !' अब कुमारदेवी ने धनुष की टंकार-जैसे स्वर में कहा। उसके एक ही शब्द ने समस्त भ्रमों का निवारण कर दिया था। 'युद्ध आरम्भ हो भी चुका है। मगधपति नाम का कोई व्यक्ति अब इस धरती पर रह नहीं सकता, रहा भी नहीं; रहेगा भी नहीं। अब यहाँ पर या तो भारत सम्राट् होगा अथवा कोई भी न होगा। तुम यही समझ लो कि मगधपति का अन्तिम क्रिया-कर्म भी हो चुका।'

'मगधपति का अन्तिम क्रिया-कर्म हो चुका है ! यह मैं क्या सुन रही हूँ ?'

'जो सुनना आवयश्क है वही !' कुमारदेवी ने कहा।

'तो क्या मैं यह समझ लूँ कि उस नापित-जैसे चन्द्रगुप्त ने विश्वासघात किया ?'

'इसकी जानकारी तो हमारी अपेक्षा आपको ही अधिक होगी। जब

दुर्बलों के हाथ में शासन होता है तो विदेशी आक्रमणकारियों को आकर्षित करनेवाले वे अनेक कार्य करते हैं। ऐसे समय देश की रक्षा के लिए किसी को तो कुछ-न-कुछ करना ही होगा। बहुत-से लोग ऐसे कार्यों को विश्वासघात कहते हैं।'

'कुमारदेवी, वैशाली और चन्द्रगुप्त का पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़तर हो, आपकी इस राजनीति से मैं परिचित हूँ। परन्तु यह राजनीति नहीं, आत्म-हत्या है। चन्द्रगुप्त नापित से भी निकृष्ट और विश्वासघाती है। वह अपने को गुप्त कहता है, पर है हीन से भी हीनतर। हीनों के साथ सम्बन्ध स्थापित करनेवाले हीन ही नहीं, आत्महन्ता भी होते हैं। वे परम्परा की, संस्कृति की और प्राणदेवता की भी हत्या करते हैं। खेद है कि आप भी यही कर रही हैं।'

'कवयित्री, आपको शब्दों की उपलब्धि होती है कल्पना से और मैं ध्वनि प्राप्त करती हूँ प्राणों से। चन्द्रगुप्त केवल मगधपति ही नहीं, भारत-पति भी है।'

'निरा भ्रम है आपका। इससे अधिक अनिष्ट की बात और कोई हो नहीं सकती।'

'कवयित्री, भावी घटनाओं की गति-विधि को जानने-समझने के लिए निरी कल्पनाप्रवणता से काम नहीं चलता। मैं चन्द्रगुप्त को भारत के भावी सम्राट् के ही रूप में नहीं देख रही, हिमाचल से सेतुबन्ध तक उसकी परम्परा को फलते-फूलते भी देखती हूँ।'

'चन्द्रगुप्त के विश्वासघातों के बारे में जब जानेंगी तो आपको पछताना होगा। लेकिन उस समय केवल हाथ मलना ही शेष रह जायेगा।'

'चन्द्रगुप्त विश्वासघाती नहीं, वीर है।'

'विश्वासघात वीरता है, यह तो मैंने आज ही जाना।'

'जब मनुष्य को ऐसा लगे कि यह काम मेरा है, किसी दूसरे का नहीं और फिर भी वह उस काम को न करे, तो उसकी वह दुर्बलता विश्वासघात कही जाती है।'

'आप अपने भ्रम में सुखी रहें।'

'आप भी अब अपने शिविर में लौट जाइए। मंत्रीश्वर मंत्रगुप्त आ गए होंगे। उनसे जानकारी प्राप्त करने के बाद आपको भी युद्ध अनिवार्य नहीं प्रतीत होगा; मगध और वैशाली को एकता ही अनिवार्य लगेगी। यदि आप लोग इस निर्णय पर पहुँचें तो वैशाली उसका स्वागत करेगी; लिच्छवी आपके होकर रहेंगे और सब तरह से सहयोग करने को प्रस्तुत रहेंगे। तब आपकी शक्ति हमारी शक्ति होगी और हमारी सामर्थ्य आपकी सामर्थ्य। यदि ऐसी बात हो तो कवयित्री, आप अवश्य लौटकर हमारे पास आयें। भारत-सम्राट् की राजसभा में आपका गौरवपूर्ण स्थान सुरक्षित रहेगा।'

विज्जका कुछ न बोली। चुपचाप उठ खड़ी हुई; परन्तु इस तरह मानो उसके घुटने ही टूट गए हों। उसका मन कह रहा था कि पाटलीपुत्र में विश्वासघात हुआ है। उसे यह आशंका हो रही थी कि चन्द्रगुप्त ने कहीं मगधपति का वध न कर डाला हो!

उसने अभिवादन किया और अपने शिविर की ओर चल दी।

२१. मंत्रगुप्त की योजना

कवयित्री विज्जका जब अपने शिविर में पहुँची तो वहाँ का दृश्य देखकर उसे अपनी आशंका सच प्रतीत हुई। उसने देखा कि मंत्रीश्वर मंत्रगुप्त और सेनापति कुंजरक पास-पास बैठे किसी गूढ़ समस्या पर विचार कर रहे हैं। दोनो ही चिन्तित दिखाई दे रहे थे।

दोनो चुप थे। दोनो के चेहरों पर मन की व्यथा अंकित थी।

विज्जका वहाँ आई। उन्होंने उसे देखा। लेकिन कोई जिज्ञासा नहीं की; इस तरह उसकी ओर देखा मानो जो प्रत्युत्तर लेकर वह आई है उसे वे पहले से ही जानते हैं।

कवयित्री दोनो को प्रणाम करके बैठ गई। लगता था जैसे मंत्रगुप्त अभी ही आया हो।

थोड़ी देर बाद सेनापति कुंजरक ने पूछा—कहो विज्जकादेवी, तुम क्या

समाचार लाई हो ? हमें तो यहाँ सर्वनाश के समाचार मिले हैं। लेकिन मुख्य प्रश्न यह है मंत्रीश्वर, कि वे सब सुगंगप्रासाद में पहुँच कैसे गए ? उन्हें अन्दर ले कौन गया ? महल के अन्दर के मार्ग उन्हें किसने दिखाये ? द्वारपालों को चकमा देकर वे महाराज के शयनागार में कैसे पहुँचे ? महाराज की हत्या का षड्यंत्र करनेवाला कौन था ? उसने इस षड्यंत्र की रचना कब की ? हमें तो अभी पता चला, जब आपने बताया। बड़े आश्चर्य की बात है। हमारे लिए तो यह बड़ा ही भयंकर हुआ। अब हमें करना क्या चाहिए ?

सुनकर विज्जकता एकदम उद्विग्न हो उठी। मगधपति मारा गया। जो आशंका थी वह वास्तविकता बन गई। अब तो कोई सन्देह रहा ही नहीं था।

'मुझे तो यह सारा षड्यंत्र उस नापित-जैसे विश्वासघाती चन्द्रगुप्त का लगता है।' कवयित्री ने कहा।

'नहीं ! उस नापित से भी बड़ा नापित और दुष्ट तो है उसका लड़का काचदेव। वह दिखने-भर को छोटा है, बाकी काम सब उसके खोटे ही हैं।' मंत्रगुप्त ने उत्तर दिया।

'अरे, वह छोकरा काचदेव !' सेनापति कुंजरक ने विस्मित होकर कहा, 'उस छोकरे ने यह सब किया ?'

'वह छोकरा नहीं विष की गाँठ है। बड़े-बड़ों के कान कतर दिये हैं उस दुष्ट ने। महाराज ने उसे जो विशिष्ट राजमुद्रा दी थी उसका उसने पूरा-पूरा दुरुपयोग किया। लेकिन सारी गलती तो मेरी थी। खैर, अब बीते पर क्या रोना ! सोचना यह है कि अब क्या किया जाये ? समय हमारे पास जरा भी नहीं है। महाराज के मारे जाने का भी शोक हम नहीं कर सकते। इस समय भी हम बन्धन में ही हैं। चारों ओर से घिरे हुए हैं। शिविर छोड़कर कहीं जा नहीं सकते। निकलना भी मुश्किल है। मुझे तो लगता है कि शिशु युवराज को अपने अधिकार में करने के ही लिए हरिषेण ने इस तरह घेरा डाला है। विगत पर सोचना छोड़कर वर्तमान और आगत के बारे में ही हमें सोचना चाहिए। अब प्रश्न यह है कि लड़ाई कहाँ से छेड़ी जाये ?'

'लड़ाई तो हम प्रवरसेन के यहीं से छेड़ सकते हैं। लेकिन सबसे पहले तो यह तय करना है कि यहाँ से निकला कैसे जाये। चारों ओर लिच्छवी सैनिक

अपनी चौकियाँ डाले पड़े हैं। इनकी दृष्टि से बचकर निकलना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं दिखाई देता।'

'परन्तु मनुष्य से भूल न हो ऐसा तो कभी देखा नहीं गया।' कवयित्री के शब्दों में आशा की ध्वनि थी।

'अच्छी बात है, अब तुम अपने समाचार सुनाओ। वैशाली क्या करना चाहती है?'

'युद्ध!' कवयित्री ने बिना किसी भूमिका के कहा।

'लगता है कि हमारे इस तरह घिरे रहते ही युद्ध आरम्भ हो जायेगा।' कुंजरक ने कहा।

'हाँ, मेरा भी यही खयाल है। और हमारे सहायतार्थ कहीं से कोई आ नहीं सकेगा, पाटलीपुत्र से भी कोई नहीं आने पायेगा।' मंत्रगुप्त ने कहा।

'क्या सेना भी नहीं आयेगी? सेनानायकों को तो, जैसा आप कहते हैं, कुमारदेवी ने कार्षापणों से खरीद लिया होगा। लेकिन सैनिक तो मगधपति के भक्त थे, उनके लिए प्राण देने को सदैव तत्पर रहते थे। क्या वे मगधपति के शिशुकुमार के रक्षार्थ इस समय दौड़ नहीं पड़ेंगे?'

'सैनिक कभी भक्त थे। कभी मगधपति के लिए प्राण देने को तत्पर रहते थे। परन्तु इस समय नहीं। मगध का सार्वत्रिक पतन हो गया है। पतन की घुन ने सब लोगों को खोखला कर दिया है। इस समय चरित्र नहीं, कार्षापण मूल्यवान है। मनुष्य का आज मगध में कोई मूल्य नहीं रहा। इसी लिए तो मैं प्रवीर प्रवरसेन की ओर देखता हूँ। नई आशा, नया आलोक, नई प्रेरणा, नया विश्वास, नूतन महत्त्वाकांक्षा सब हमें वहाँ से प्राप्त होगा। यहाँ तो सब-कुछ निष्प्राण हो गया है। मगधपति को मैंने अपनी इन आँखों से मारे जाते देखा है। मुझे विश्वास था कि अपने राजा की रक्षा के लिए सारे द्वारपाल कट मरेंगे। परन्तु मरनेवाले ही मरे। कुछ तलघर में घिर गए और शेष भाग खड़े हुए। ऐसी स्थिति में प्रवरसेन की कांचनका नगरी और विन्ध्य-पर्वत की छाया ही हमें सहारा दे सकती है। लेकिन असल बात यह है कि यहाँ से निकला कैसे जाये और शिशु युवराज को कैसे निकाला जाये?'

'मेरी समझ में एक उपाय है।' कवयित्री विज्जका ने कहा।

'वह क्या?'

'यदि मनुष्य भूल न करे तो वह हो जायेगा देवता। श्रीषेण ने भी भूल की है। वैशाली जाते हुए मैंने देखा कि एक स्थान अरक्षित, कहना चाहिए कि अर्धरक्षित रह गया है।'

'कहाँ है वह स्थान?'

'महारानी के शिविर के सामने की ओर तो लिच्छवियों के ठट्ठ-के-ठट्ठ जमा हैं, परन्तु पीछे की ओर, जहाँ से घना जंगल आरम्भ होता है, वह स्थान अर्धरक्षित है। यदि किसी प्रकार उस स्थान को पार किया जा सके तो हम निकल सकते हैं।'

'लेकिन निकलेंगे कैसे? शिशु युवराज को उस दिशा से ले कौन जायेगा? भयंकर दुर्गम वन-पथ से उन्हें ले जाने का साहस कौन करेगा? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इसी लिए तो श्रीषेण ने उस दिशा को अर्धरक्षित छोड़ दिया है। उस पथ से ले जाये जाने पर भला वह नन्हा-सा शिशु जीवित भी बचने पायेगा? यह तो जान-बूझकर मौत के मुँह मे पाँव डालना होगा। हाँ, यदि कोई विश्वस्त वनचर, आटविक, व्याध, किरात या भील मिल जाये और राजकुमार को सुरक्षित निकाल ले जाने का वचन दे तो काम बन सकता है। है कोई ऐसा व्यक्ति तुम्हारे खयाल में? लेकिन आदमी एकदम खरा और विश्वसनीय होना चाहिए। नहीं तो हम बन जायेंगे मूर्ख और मगध के भावी राजा की हत्या का पातक होगा हमारे सिर। और फिर युद्ध तो हम छेड़ ही नहीं सकेंगे।'

बात बिलकुल सही थी। समस्या वास्तव में बड़ी जटिल थी। उस वन-पथ से राजकुमार को ले जाना उसकी हत्या ही करवाना था। सेनापति और मंत्रगुप्त बड़ी देर तक बैठे सोचते रहे।

अन्त में मंत्रगुप्त ने कहा—मैं स्वयं उसी वन-पथ से होकर आया हूँ। राजमाता के शिविर का पिछला भाग अर्धरक्षित न होता तो मैं कभी सकुशल यहाँ न पहुँच पाता। लेकिन मेरा आना और बात है और एक नन्हें शिशु का ले जाया जाना बिलकुल दूसरी बात। बाकी तो चारों ओर इतना

कड़ा प्रबन्ध है कि एक चिड़िया भी पर नहीं मार सकती। रह जाता है एक यही वन-पथ!

'लेकिन वह कितना भयंकर है मंत्रीश्वर! हिंस्र पशुओं और आखेटकों का उस पर एकछत्र राज्य है। लुटेरे दिन-दहाड़े घूमते रहते हैं। बड़े-बड़े सार्थवाह भी उस मार्ग से जाने का साहस नहीं करते।'

फिर कुछ देर वे लोग चुप बैठे सोचते रहे। तब कुंजरक सहसा बोल उठा—ऐसा क्यों न करें? पहले हमीं भाग जायें उस मार्ग से और उसके बाद....

'फिर तो युवराज ही हमारे हाथ से निकल जायेगा।' मंत्रगुप्त ने उसकी बात काटते हुए कहा। 'और युवराज के बिना हम लड़ेंगे किसके नाम पर? तब प्रवरसेन हमारी सहायता क्यों करने लगा? क्या वह स्वयं ही मगधपति नहीं बन जायेगा? मैंने महाराज मगधपति को वचन दिया है। उनके अन्तिम काल में दिये हुए अपने इस वचन का मैं प्राण देकर भी पालन करूँगा। मैंने वचन दिया है कि चन्द्रगुप्त का वध करके शिशु युवराज को मगध का राजा बनाऊँगा। प्रवरसेन ने भी ऐसा ही वचन दिया है। हम सबका यह पुनीत कर्त्तव्य है कि हम राजकुमार को उनके परम्परागत सिंहासन पर आसीन करें। मेरा यह कर्त्तव्य है, सेनापति आपका भी यही कर्त्तव्य है और कवयित्री विज्जका देवी का भी....'

'विश्वासघाती चन्द्रगुप्त को कभी मगध का राजा बनने नहीं दिया जायेगा।' कवयित्री बोल उठी, 'वह नापित है और उससे सम्बन्ध रखनेवाले भी नापित हैं। जिस प्रकार नन्दों का नाश किया गया उसी प्रकार इन सब का नाश किया जायेगा। यदि ऐसा नहीं किया गया तो देश की संस्कृति ही विनष्ट हो जायेगी।'

लेकिन सारी बात घूम-फिरकर पुनः वहीं आ गई कि यहाँ से निकला कैसे जाये और राजकुमार को निकाला कैसे जाये? कौन शिशुकुमार का उत्तरदायित्व ले और राजमाता का क्या हो?

वे एक-एक कर अपने परिचित आटविकों, व्याधों, भीलों, किरातों, शिकारियों, नौकापतियों और सार्थवाहपतियों के नाम याद करने लगे। पाटलीपुत्र,

वैशाली और साकेत में जितने भी ऐसे परिचित थे उन सब के नाम वे गिने गए। लेकिन उन्हें एक भी ऐसा नहीं दिखाई दिया, जिस पर वे यह गुरु भार डाल सकें। सारे देश में कोई ऐसा विश्वसनीय था ही नहीं जिसकी अटल राजभक्ति पर निर्भर किया जा सके। श्रद्धालु राजभक्तों की जैसे पीढ़ी ही समाप्त हो गई थी!

स्वयं अपने बारे में वे दो में से एक मार्ग अपना सकते थे—या तो बन्धन को स्वीकार कर लें या आँखों में धूल झोंककर भाग जायें। लेकिन शिशु राजकुमार की समस्या तो फिर भी उलझी ही रह जाती थी। वे किसी भी मार्ग को अपनायें, युवराज का प्रश्न तो फिर भी हल नहीं होता था।

बहुत सोचने-विचारने के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे कि अभी तो स्वयं भाग जायें और फिर आक्रमण करके राजकुमार को छुड़ा ले जायें। बात तो थी हिमालय को लाँघने-जैसी, लेकिन और कोई उपाय समझ में नहीं आता था।

वे खिन्न हो गए। मंत्रगुप्त को भी दूसरा कोई मार्ग दिखाई नहीं देता था। एक क्षण तो उसके मन में आया कि जितनी सेना इस समय साथ है उसे ज़ोड़-बटोरकर लड़ते हुए रणक्षेत्र में मर मिटे। लेकिन ऐसा करके भी वह मगधपति को दिये हुए अपने वचन को तो पूरा कर नहीं सकता था। वचन तो उसका यही था कि संकट कितने ही हों, बाधाएँ कितनी ही आयें, वह शिशु राजकुमार को मगध के सिंहासन पर आसीन करके रहेगा। इसके लिए आवश्यक था कि राजकुमार को जैसे भी बने प्रवरसेन के यहाँ पहुँचाया जाये।

अन्त में उसने कहा—सेनापति कुंजरक, आप मरना जानते हैं, मैं भी मरना जानता हूँ, कवयित्री विज्जका को भी मरना आता है। हमारे सैनिक भी मरना जानते हैं। लेकिन मरने से तो अभी हमारा काम बनता नहीं। हम वैशाली से लड़कर मर सकते हैं, परन्तु उससे होगा क्या? अभी तो हमें ऐसी वीरता चाहिए जो जीकर अपना काम कर दिखाए, जो राजकुमार को यहाँ से छुड़ाकर प्रवरसेन के हाथों सौंप सके। बताइए हम तीनों में से कौन इसके लिए तैयार है?

तीनों में से किसी के भी पास इसका उत्तर नहीं था। तीनों फिर चुप हो गए। लेकिन उनका वह मौन मन की उद्विग्नता और विकलता का ही सूचक था।

अकेला मंत्रगुप्त रह-रहकर कह उठता था—कोई आटविक ऐसा नहीं ? कोई व्याध ऐसा नहीं ? कोई वनवासी, कोई मागध-जन, कोई भील, किरात, क्या कोई भी ऐसा नहीं ? क्या कोई भी मगध के शिशु राजकुमार को यहाँ से छुड़ा नहीं सकता ? क्या मगधपति का युवराज बन्धन में ही मर जायेगा ? न हो तो कल सैनिकों से पूछा जाये ! क्या यहाँ ऐसा कोई नहीं जो अपने राजकुमार को छुड़ा कर ले जाये ?

और उसके इन प्रश्नों के उत्तर में ही, मानो धरती फाड़कर, एक नारी उनके सामने आ खड़ी हुई। कुंजरक ने उस नारी की ओर देखा। मंत्रगुप्त ने भी यह जानने के लिए उसकी ओर देखा कि इस नारी के यहाँ आने का प्रयोजन क्या है ? वह नारी राजमाता की दासी थी। वह नारी राजकुमार को अपनी गोद में खिलानेवाली निःसीम श्रद्धा थी। उसी दासी को पाटलीपुत्र की अमात्य परिषद् में देखकर चन्द्रगुप्त को लगा था कि इस नारी की अटल श्रद्धा के आगे किसी की कोई बिसात नहीं। राजमाता की वह खास दासी थी और उसका नाम था परिव्राजिका। यह परिव्राजिका राजकुमार पर प्राण देती थी। वह नन्हा-सा शिशु उसके लिए राजकुमार न होकर अपनी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का प्रतीक बन गया था। वह राजकुमार के लिए जीती थी, उसकी आँख से सोती और उसी की आँख से जागती थी। राजकुमार के बिना वह अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। राजकुमार था तो वह थी, राजकुमार न होगा तो वह भी न होगी—यह था उसके जीवन का संकल्प।

उसने दो डग आगे बढ़कर सेनापति कुंजरक की ओर देखा, महामंत्री मंत्रगुप्त की ओर देखा। कवयित्री की ओर उसने आपाद-मस्तक एक दृष्टि डाली। फिर उसने बोलना आरम्भ किया। अगाध श्रद्धा से भरी, मेघबिन्दु के शान्त स्वर-जैसी उसकी वह वाणी थी।

उसने कहा—महासेनापति, मंत्रीश्वर और देवी विज्जका ! दासी का

अपराध क्षमा हो। लेकिन मैंने आपकी वार्ता सुनी है। मैं हूँ निरी दासी; नितान्त मूर्ख और अपढ़। विद्वत्ता का आलोक मेरे पास नहीं। सत्ता नहीं, शस्त्र नहीं; अधिकार नहीं, अस्त्र नहीं। युक्ति-प्रयुक्ति का विवेक भी मुझमें नहीं। लेकिन फिर भी न जाने क्यों कोई रह-रहकर मेरे मन में पुकार उठता है कि अपने राजकुमार को तू और अकेली तू ही यहाँ से छुड़ा सकती है। महामंत्री मुझे अवसर दें। मेरी परीक्षा भी चाहें तो ले लें। मैं विश्वास दिलाती हूँ कि इस दुर्गम वन-पथ से ले जाकर मैं अपने राजकुमार को सुरक्षित विन्ध्य-प्रदेश में पहुँचा दूँगी। लेकिन यदि आप यह पूछें कि कैसे पहुँचाओगी तो इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। बस, मेरी अन्तरात्मा कहती है कि तू पहुँचा देगी और मैं पहुँचा दूँगी।'

'लेकिन कांचनका नगरी बहुत दूर है और मार्ग बड़ा विकट है।'

'यह सब मैं जानती हूँ; और यह भी जानती हूँ कि मैं ही राजकुमार की रक्षा कर सकती हूँ।'

'बिलकुल अकेले जाना होगा। साथ किसी को ले जाया नहीं जा सकता। एक से दो हुए कि सन्देह होगा और बात फूट जायेगी। फिर भी तू कहती है कि रक्षा कर सकेगी। तो पहले यह बता कि तूने यह जाना कैसे कि रक्षा कर सकेगी?'

'जाननेवाला स्वयं ही नहीं जानता मंत्रीश्वर! मैं भी ऊपर के आकाश के सिवाय और कुछ नहीं जानती। और उस ऊपरवाले के सिवाय और कोई कारण आपको बता नहीं सकती।'

'आकाश को तो सभी कोई देखते हैं।' कवयित्री विज्जका ने कहा।

'देखते सभी हैं, जानते बिरले ही हैं। कई बातें ऐसी होती हैं जिनका कारण नहीं बताया जा सकता, जिनका स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। मैं जानती हूँ और विश्वासपूर्वक कह सकती हूँ कि मैं और अकेली मैं ही इस काम को कर सकती हूँ और कर दिखाऊँगी। आप मुझ पर विश्वास करें।'

'तो बता कि हम में से तू किसे अपने साथ ले जायेगी?'

'किसी को भी नहीं!'

'तब ...'

'कुमार कैसे सुरक्षित रहेंगे ?' परिव्राजिका ने बात काटते हुए कहा, 'आप यही न कहना चाहते हैं मंत्रीश्वर ? आपके लिए राजकुमार भावी मगधपति हैं, मगधपतियों की परम्परा के निर्वाहक; परन्तु मेरे लिए तो वह हैं प्राणों के प्राण। अब आप ही बताइए दोनो में बड़ा कौन है—प्राण अथवा मगध का राज्य ?'

दासी के शब्दों में आत्मस्थ श्रद्धा की दृढ़ता बोल रही थी। सुननेवालों को विश्वास हो गया कि यह राजकुमार को निकाल ले जायेगी और उसका बाल भी बाँका न होने देगी।

'महाबलाधिकृत अब मेरा निवदेन सुनें। मैं जिस अभिप्राय से आई थी उसे बताने की अनुमति चाहती हूँ।' दासी ने आगे कहा, 'राजमाता ने कहलवाया है कि महाबलाधिकृत और यदि आ गए हों तो महामात्य मगध महाराज की राजमुद्रा या उनका कोई भी अवशेष प्रदान करें, जिसे लेकर राजमाता सती हो सकें। वह महाराज का सहगमन करना चाहती हैं। महाराज के बिना उन्हें यह संसार सूना लग रहा है। अब वह यहाँ एक क्षण भी रहना नहीं चाहतीं।'

'अरे-रे, यह राजमाता ने क्या सोचा ? उन्हें ऐसा परामर्श किसने दिया ? हमें तो पाटलीपुत्र के समाचार अभी-अभी मिले हैं, राजमाता को कैसे पता चल गया ? और राजमाता का यह निर्णय उचित भी नहीं। कुमार का क्या होगा ? उनका हाथ कौन थामेगा ?'

'चारों ओर कनबतियाँ हो रही हैं। सैनिकों में विश्रम्भकथा चल रही है। सब कहते हैं कि सुगंगप्रासाद में महाराज का वध हो गया। सुनते ही राजमाता पहले तो स्तम्भित रह गईं, फिर मूर्छित हो गईं। सचेत होने पर बोलीं, मैं सहगमन करूँगी। मैंने बहुत समझाया। यह भी कहा कि तब कुमार किस के सहारे रहेंगे। लेकिन उन्होंने एक न सुनी। यही कहा, मैं महाराज की हूँ, तू कुमार की है।'

सुनकर सभी खिन्न हो उठे। किसी ने सोचा भी नहीं था कि ऐसा होगा। लेकिन खिन्न होने और खेद करने का समय भी उनके पास नहीं था। राजमाता को समझाया और मनाया जा सकता था। लेकिन इसके लिए भी समय

कहाँ था ? राजमाता के सती होने के समाचार जैसे ही सैनिकों को मालूम होंगे, सब उनके दर्शनों के लिए दौड़ पड़ेंगे। थोड़े समय के लिए तो घोर अव्यवस्था ही शिविर में फैल जायेगी। यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ। उस अव्यवस्था से लाभ उठाकर परिव्राजिका राजकुमार को लेकर भाग सकेगी। लेकिन यह सब एकदम होना चाहिए और किसी को कानोंकान खबर नहीं लगनी चाहिए। क्योंकि जैसे ही वैशालीवालों को राजमाता के सती होने की बात मालूम होगी वे राजकुमार को अपने संरक्षण में लेने का दावा पेश कर देंगे।

सेनापति और मंत्री थोड़ी देर तक बैठे इस नई परिस्थिति के अनुरूप अपनी योजना बनाते रहे। अन्त में सेनापति ने परिव्राजिका को महाराज की राजमुद्रा दे दी। वह उसे लेकर चली गई। लेकिन उसके जाने से पहले ही यह तय हो गया था कि कल सवेरे राजमाता के सती होते ही वह राजकुमार को लेकर चली जायेगी! सवेरे-सवेरे राजमाता के सती होने का घंटाघोष होगा। सैनिक चारों ओर से उनके दर्शनार्थ आयेंगे। उसी समय परिव्राजिका को राजकुमार को लेकर वन-पथ से चल देना होगा। यहाँ से वह सीधे प्रवरसेन के पास जायेगी। जब तक उसके वहाँ सकुशल पहुँच जाने के समाचार मिल नहीं जाते मंत्री और सेनापति यहीं बने रहेंगे और इस भ्रम को बनाये रखेंगे कि राजकुमार यहीं हैं।

२२. विदाई के समय

चारों ओर यह समाचार विद्युत् वेग से प्रसारित हो गया कि मगध की राजमाता सवेरे-सवेरे सती होंगी। सवेरा होते ही सैनिकों की टोलियाँ आने लगीं। वैशाली से भी सैकड़ों नगरजन आये थे। राजमाता की चिता के समीप हजारों की भीड़ जमा हो गई। लेकिन उस समय वहाँ खड़े चार व्यक्तियों के लिए वह जीवन-मरण का अवसर था।

वे वहाँ अधिक देर तक रुक नहीं सकते थे। राजमाता से बातें भी नहीं

कर सकते थे। आये, क्षण-भर रुके, दो-एक बातें कीं, उनका आशीर्वाद प्राप्त किया और तत्काल अलोप हो गए। वे भागे चले गए अपना काम पूरा करने। उन्हें विदा करना था शिशु राजकुमार को। ये कुछ क्षण ही तो मिले थे उन्हें अपना काम करने के लिए।

उनके लिए एक-एक क्षण अनमोल था। जीवन और मरण की बाजी ही लगी हुई थी। उधर हजारों लोग राजमाता के दर्शन करने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए खड़े थे। परन्तु इन चार लोगों के पास इस सबके लिए समय नहीं था। ये चार व्यक्ति थे—सेनापति कुंजरक, महामंत्री मंत्रगुप्त, कवयित्री विज्जका और दासी परिव्राजिका। वे राजकुमार को भगा ले जाने के लिए आकाश-पाताल एक किये हुए थे। उन्हें अपना सारा काम इन्हीं दो-चार क्षणों में पूरा कर डालना था। इसलिए वे आये और आने के साथ ही पुनः सैनिक शिविर में लौट गए।

उन्होंने एक शिविर में प्रवेश किया। चारों उदास थे, दुःखी थे, म्लान-मुख थे। कोई किसी से कुछ बोल नहीं रहा था। कुंजरक, मंत्रगुप्त और विज्जका को शिविर के बाहरी भाग में छोड़कर दासी ~~[illegible]~~ ने अन्दर के भाग में प्रवेश किया। तीनों यहाँ चुप बैठे थे। उनका समय काटे नहीं कट रहा था। एक-एक क्षण उन्हें युग के समान लग रहा था। चिन्ता और व्यथा के मारे उनके प्राण नहों में समाये जा रहे थे।

अन्दर परिव्राजिका ने राजकुमार को तैयार किया। दासी की अपार श्रद्धा और उसका वज्रोपम साहस सबको आशान्वित किये हुए था। बाकी संकट बड़ा भारी था और परिणाम अदृष्ट के गर्भ में छिपा हुआ था। लेकिन दूसरा कोई मार्ग भी नहीं था। इसलिए संकट को सिर पर लेकर भी उन्हें इस मार्ग का अवलम्बन करना पड़ रहा था।

अन्त में परिव्राजिका बाहर आती दिखाई दी। वह राजकुमार को अपनी गोद में लिये थी। शिशु-सुलभ चपलता के स्थान पर राजकुमार इस समय गम्भीर था। उसे कुछ पता नहीं था और न वह समझ ही सकता था कि उसे कहाँ जाना है और क्या हो रहा है। परन्तु अवसर की गम्भीरता ने जैसे उसे भी प्रभावित कर दिया था। लगता था जैसे वह भी सब समझता हो।

दासी के वहाँ आते ही महामंत्री, सेनापति और कवयित्री तीनों उठकर खड़े हो गए। उन्होंने चुपचाप शिशु राजकुमार का अभिवादन किया।

परिव्राजिका ने बारी-बारी से सबकी ओर देखा। उसके चेहरे पर अपार व्यथा थी। वह अपनी व्यथा को दबाने और छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी।

परिव्राजिका तो उसका उपनाम था। लोग उसे इसी नाम से पुकारते थे; क्योंकि उसमें स्वार्थ का लेश भी नहीं था। वह हमेशा अपने स्वार्थ को परे रखकर सेवा-धर्म को प्रधानता देती थी। वैसे उसका वास्तविक नाम धरा था। और थी भी वह धरा के समान चिर क्षमाशील और उदार। सहनशीलता तो उसकी गजब की थी। उसे बड़े-से-बड़ा उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता था और वह उसको पूरा कर दिखाती थी।

इस समय उसके चेहरे पर अपार व्यथा थी। मंत्रगुप्त ने उसकी व्यथा को लक्ष्य किया और वह स्वयं व्यथित हो गया। क्योंकि अकेला वही जानता था कि राजकुमार को वहाँ से सही-सलामत निकाल ले जाने में दासी धरा कितना बड़ा त्याग कर रही थी।

क्षण-भर सब चुप खड़े रहे। बोलने का तो उनके पास समय भी नहीं था। और आखिर बोलते भी क्या? राजकुमार के सम्बन्ध में कुछ कहने का किसी को साहस नहीं हो रहा था। उस बेचारे बालक को पता ही क्या था कि वह कहाँ जा रहा है? महारानी के सम्बन्ध में भी कुछ कहने की किसी की हिम्मत न होती थी। शब्द जैसे उनके अन्तर में ठिठुरकर रह गए थे। स्वर्गस्थ महाराज के सम्बन्ध में बातचीत करने का भी यह समय नहीं था। ऐसा लगता था मानो महाराज कभी रहे ही नहीं, यद्यपि उनको मरे अभी दूसरा या तीसरा ही दिन हुआ था। आदमी आदमी को कितना जल्दी भूल जाता है, विशेष रूप से विपत्ति के समय; और यदि पीछेवालों को जीवित रहना हो तब तो विस्मरण की प्रक्रिया और भी तेज हो जाती है। इसलिए क्षण-भर तो सब चुप ही खड़े रह गए!

फिर दासी धरा आगे बढ़ी। उसकी चाल में गम्भीरता थी। मुँह पर अवर्णनीय शोक था। नेत्रों में आँसुओं का सागर छलक रहा था। लेकिन

मजाल नहीं कि कोई उन उमड़ते हुए आँसुओं को देख सके। छाती को वज्र किये, आँसुओं को वज्र की उस गुफा में समाये हुए वह आगे बढ़ी।

उसने बिना कुछ कहे-सुने दोनो हाथ जोड़कर वहाँ उपस्थित उन तीनों को प्रणाम किया। फिर आगे बढ़ने के लिए पाँव बढ़ाया। मंत्रीश्वर के समीप पहुँचकर वह एक क्षण के लिए ठिठकी। उसने मुँह उठाकर मंत्रगुप्त की ओर देखा। मंत्री को उन नेत्रों में हजारों अनकही कहानियाँ लिखी दिखाई दीं। अत्यन्त मन्द स्वर में सबसे विदा लेते हुए उसने कहा :

'महामंत्री, यदि इस कुमार को हम सुगंगप्रासाद के सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित न कर सके तो व्यर्थ होगा हमारा जीना, धिक्कार होगा हमारे जीने को! लेकिन मैं जानती हूँ कि हमारा अभीप्सित होकर रहेगा। वर्ष, दो वर्ष पाँच या पच्चीस वर्ष में यह होगा और अवश्य होगा। मुझे पूरा विश्वास है। लेकिन यहाँ कल से, अथवा आज से ही, वैशालीवालों के सन्देश आने लगेंगे। वन-पथ से होकर जाना है। मार्ग कैसा है यह कोई नहीं जानता। मेरे आगे नन्दक गया अवश्य है, लेकिन वह भी पहली ही बार जा रहा है। उस घनघोर वन में कौन कहाँ है इसे केवल ईश्वर ही जानता है। लेकिन मैं जैसे ही कांचनका पहुँचूँगी राजकुमार को महाराज प्रवरसेन के चरणों में रख दूँगी। फिर आप यही समझना कि वह प्रवरसेन की नहीं साक्षात् इन्द्रदेव की गोद में है। लेकिन इस बीच यदि वैशालीवालों ने राजकुमार को माँगा तो आप क्या उत्तर देंगे?'

'युद्ध!' सेनापति कुंजरक ने कहा, 'ऐसा युद्ध जो क्रमशः लम्बा होता चला जाये।'

'सेनापतिराज, युद्ध करना तो बहुत सरल है।' दासी धरा ने उत्तर दिया, 'लेकिन कठिन है युद्ध को टालना। जब युद्ध करना अनुकूल नहीं होता उस समय युद्ध करनेवाले पराजित ही नहीं होते, उनके भाल पर सदा के लिए कलंक की कालिमा पुत जाती है। आप युद्ध करेंगे तो लिच्छवियों के आगे टिकेंगे कै दिन? सिंह की माँद में घुसकर भी कहीं सिंह से लड़ा गया है? पहले उसे खदेड़कर मैदान में तो लाइए। युद्ध किया तब तो बात तुरत फूट जायेगी। सबको पता चल जायेगा कि राजकुमार यहाँ नहीं है, भाग गया है।

चारों ओर सैनिक दौड़ाये जायेंगे। हम संकट में पड़ जायेंगे, एक कदम भी आगे बढ़ न सकेंगे। इसलिए तो मैं कह रही हूँ कि युद्ध से काम बनेगा नहीं।' वह दासी एक राजरानी की शान से बात कर रही थी और वे राजपुरुष एक भृत्य की विनम्रता से खड़े सुन रहे थे।

'हम कह देंगे राजकुमार रुग्ण हैं। कोई उन्हें देख नहीं सकता। रोग बढ़ जाने का अन्देशा है। दो-चार दिन के बाद....' मंत्रगुप्त ने कहा।

'क्या आप मंत्री हरिषेण को नहीं जानते ?' दासी ने सिर हिलाते हुए मंत्रगुप्त की बात काटी, 'वह पत्थर के पार भी देख लेता है। फिर उसके साथ कुमारदेवी है। मान लीजिए कि कुमारदेवी स्वयं रोगी राजकुमार को देखना चाहें, तब आप क्या करेंगे ?'

'हाँ, तब क्या करेंगे ?' यह बड़ी विषम समस्या थी। यदि कहीं ऐसा हो गया तो भागना-न भागना सब बराबर हो जायेगा।

कुमारदेवी को एक बार टाला जा सकता है, दो बार टाला जा सकता है, लेकिन बार-बार तो टाला नहीं जा सकता। भागना ही काफी नहीं था, जब तक राजकुमार कांचनका नहीं पहुँच जाता शत्रु को बहलाये रखना होगा। इसी लिए तो मंत्री और सेनापति स्वयं कांचनका नहीं ज़ा रहे थे; इसीलिए तो वे यहाँ रुक रहे थे।

मंत्री और सेनापति उद्विग्न होकर सोचने लगे। यह तो उनकी समझ में आ गया था कि लड़ मरने से कोई लाभ न होगा, उलटे हानि ही हो जायेगी। तो फिर क्या जवाब दिया जाये ? यदि वैशालीवाले राजकुमार को देखना ही चाहें तो उन्हें क्या उत्तर देना ठीक होगा ?

समय पवन की पाँखों पर चढ़कर बीता जा रहा था और वे सब खड़े सोच रहे थे। इस नई समस्या का कोई हल उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

अन्त में दासी धरा ही बोली। उसका स्वर आकाश के मेघ-गर्जन की भाँति घना और गूँज-भरा था। उसने कहा—महाबलाधिकृत, युद्ध का मार्ग सही नहीं है। समझौते का मार्ग भी सही नहीं है। उन्हें भ्रम में रखना और बहाने बनाना भी सही नहीं होगा। ये सब सन्देह को बढ़ानेवाली बातें हैं।

मुझे केवल एक ही बात समझ में आती है, केवल एक ही मार्ग दिखाई देता है। कुमार की वय का, कुमार से मिलता-जुलता, कुमार-जैसा ही कोई कुमार हो तो उसे शिशु युवराज बनाकर रखा जाये। और इस बीच हम प्रवीर प्रवरसेन के पास पहुँच जायेंगे। एक यही उपाय है जो शत्रु के समस्त सन्देहों को निर्मूल कर सकता है और वह भ्रम में पड़ा रहेगा। और संयोग से यहाँ ऐसा एक कुमार है भी....'

'कौन है वह और कहाँ है?' सब एक साथ बोल उठे।

'स्वयं मेरा अपना पुत्र....' दासी धरा ने कहा। लेकिन उसके स्वर में जितनी दृढ़ता थी उतना ही दर्द भी था। सुननेवालों के सिर उस देवी के समक्ष आप ही श्रद्धा से अवनत हो गए।

'मेरा पुत्र कृषक यहाँ राजकुमार बनकर रहेगा। दासी नन्दा उसकी देख-भाल करेगी। बस यही एक उपाय है और हमें इसी का अवलम्बन करना होगा। फिर उसे देखने के लिए कुमारदेवी आये या हरिषेण आये या सारा वैशाली नगर ही चला आए। उनके लिए वही राजकुमार होगा।'

दासी के इस महान त्याग और आत्म-बलिदान के आगे वे राजपुरुष विस्मित खड़े रह गए। उसका वह आत्म-बलिदान अतुलित था। बड़ा-से-बड़ा राजनीतिज्ञ भी इस समय उस सामान्य दासी की तुलना में ठहर नहीं सकता था। वाणी से उसके त्याग की प्रशंसा की नहीं जा सकती थी। मुँह से कुछ कहना उस महान त्याग का अपमान करना था। सब मौन खड़े उस दासी और उसके अपौरुषेय त्याग की वन्दना करते रहे।

इतने में दासी नन्दा धरा के पुत्र कृषक को लेकर वहाँ आई। मा ने अपने लाल का अन्तिम बार चुम्बन किया। प्रेमपूर्वक उसके सिर, आँखों और सारे शरीर पर हाथ फिराया। उसे दोनों हाथों में लेकर छाती से लगाया। फिर उसने उसे एक नजर देखा और देखती ही रह गई।

आज मा बेटे से और बेटा मा से बिछुड़ रहा था। पता नहीं फिर कब मिलना होगा, और मिलेंगे भी या नहीं?

मा अपने बेटे को भर-नजर देख रही थी।

मगध का महामंत्री, मगध का महासेनापति और मगध की कवयित्री उस

अकिंचन मा के सामने हीन बने इस प्रकार खड़े थे जैसे विराट के आगे वामन खड़े हों। अपनी हीनता के बोध से उन तीनों के नेत्र आप ही मुँद ए

पुत्र को अन्तिम बार छाती से लगाकर दासी धरा ने उसे नन्दा के हाथ में दे दिया। फिर राजकुमार को अपनी गोद में ले वह शीघ्रता से चल पड़ी। मा का कातर हृदय क्रन्दन कर रहा था, परन्तु कर्तव्यपरायण दासी के अडिग पाँव वन-पथ की ओर बढ़े जा रहे थे।

२३. राजकुमार गायब हो गया !

महारानी के सती होने के समाचारों ने वैशाली में भी जबर्दस्त क्षोभ उत्पन्न किया। सैकड़ों और हजारों के दिल में मगधपति के शिशु युवराज के लिए सहानुभूति पैदा हो गई। वैशाली को उसकी रक्षा करनी चाहिए; चाहे उसे वैशाली में रखा जाये, चाहे पाटलीपुत्र में, लेकिन रक्षा का दायित्व वैशाली को ही वहन करना चाहिए—यह थी लोगों के मन की भावना।

शिशु राजकुमार को वैशाली के संरक्षण में देने के लिए हरिषेण मंत्री ने कुछ समय के पश्चात् सेनापति कुंजरक के नाम सन्देश भेजा। तिलभट्टक स्वयं सन्देश लेकर गया।

उसने कहा—सेनापतिजी, महारानी के सहगमन के समाचारों को सुनकर वैशाली में सभी को दुःख हुआ है। हमने सुना है कि महारानी को आप लोगों ने बहुत समझाया, परन्तु महाराज-विहीन इस दुनिया में रहना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उनका पातिव्रत और पति-भक्ति विरल थी। लेकिन अब हमें मगध को शक्तिशाली बनाना है, उसकी अस्थिरता का अन्त करना है। जहाँ तक शिशु राजकुमार की रक्षा का प्रश्न है वैशाली इस दायित्व को वहन करने के लिए प्रस्तुत है। यदि आप कहें तो पाटलीपुत्र चलकर वहाँ भी हम इस काम को करने के लिए तैयार हैं। किसी भी प्रकार का शासन और शासक तो अवश्य होना चाहिए। इसलिए शीघ्र निर्णय कीजिए।

यदि प्रवीर प्रवरसेन दौड़ा आया तो वह हम दोनो के लिए बुरी और भयंकर बात होगी। यदि वैशाली और पाटलीपुत्र एक हो गए तो आने से पहले उसे हजार बार सोचना होगा। हमारी तो यही राजनीति है। आप जब यहाँ आये तब परिस्थिति भिन्न थी, अब परिस्थिति भिन्न है। मैं इसी लिए आया हूँ। हमारे महामात्य हरिषेण महोदय तुरत किसी निर्णय पर पहुँचना चाहते हैं। उन्होंने इसी लिए मुझे आपके पास भेजा है।

कांचनका नगरी दूर थी। दासी धरा को राजकुमार सहित वहाँ पहुँचने में समय लगेगा। तब तक सेनापति कुंजरक को इन लोगों को बहलाये रखना होगा।

उसने कहा—शिशुकुमार इस समय दासी नन्दा के हाथ में हैं। उसे डर है कि जिस प्रकार मगधपति का वध हुआ उसी प्रकार कोई हत्यारा शिशु युवराज को भी मार डालेगा। इसलिए वह किसी का विश्वास नहीं करती, यहाँ तक कि मेरा भी नहीं।

'हम गंगाजल लेकर वचन दें और उसे विश्वास दिलायें....'

'यह तो मैंने भी कहलवाया है। लेकिन पाटलीपुत्र की घटना ने उसे इतना आतंकित कर दिया है कि वह किसी का विश्वास करने को तैयार नहीं। राजकुमार को वह बहुत चाहती है; और कोई ऐसी-वैसी बात हुई तो डर है कि प्राण ही दे देगी।'

'तो फिर बताइए क्या किया जाये ? राजकुमार को तो उसे देना ही होगा। हम भी शिशुकुमार की रक्षा के लिए उत्सुक हैं। उसे चाहिए कि वह राजकुमार को दे दे।'

'देना तो उसे होगा ही। न देगी तो जायेगी कहाँ ? परन्तु तिलभट्टक-जी, आप तो जानते ही हैं कि वह औरत की जाति ठहरी; फिर महारानी की अत्यन्त विश्वसनीय दासी। राजमाता ने चिता पर चढ़ते-चढ़ते अपना शिशु-कुमार उसी को सौंपा। सोचने की बात है, मुझे नहीं सौंपा, मेरे किसी सेना-नायक को नहीं सौंप गईं। सेना तक का विश्वास नहीं किया। विश्वास किया तो उस दासी का। उन्होंने उस दासी को ही इस कार्य के उपयुक्त समझा।'

'तो आप उसे समझाइए। दासी की हठ के कारण पाटलीपुत्र को बिना शासक के तो रहने नहीं दिया जा सकता। ऐसे तो सारा देश ही नष्ट हो जायेगा। हमें अविलम्ब शिशु मगधपति के नाम की घोषणा कर देनी चाहिए। सब लोगों को मालूम हो जाना चाहिए कि वैशाली और पाटलीपुत्र अब एक हो गए हैं।'

'बात तो आपकी सही है। मैं भी इसे मानता हूँ। हर समझदार आदमी को मानना चाहिए; क्योंकि आज की परिस्थिति में सही मार्ग भी यही है। परन्तु यह दासी है बड़ी विचित्र। राजकुमार की बात निकलते ही अपना गला घोंटकर मर जाने की धमकी देने लगती है। इसलिए मैं कुछ कहता नहीं। सोचता हूँ, थोड़े दिन में आप ही समझ जायेगी। चार-छह दिन में ऐसा बनता-बिगड़ता भी क्या है?'

'हाँ, यह तो ठीक है। लेकिन यदि अपने हठ से पराङ्मुख न हो तो उसको बन्दीगृह में डाल दीजिए। आप ही होश ठिकाने आ जायेंगे।'

'अजी तिलभट्टकजी, आप भी कैसी बात करते हैं! उस मुर्दार को बन्दीगृह में डालने से लाभ क्या होगा? उलटे जगहँसाई होगी। बन्दी तो उसे बनाया जाये जो जीये और सामना करे; जो मरे पहले और बात बाद में करे उसे कोई क्या बन्दी बनायेगा! प्रेम के ऐसे बावलों को जीते-जी तो बन्दी किया नहीं जा सकता; हाँ, उनके शव को आप भले ही बन्दीगृह में डाल दीजिए।'

'लेकिन सेनापतिजी, यह बात है अवश्य आपत्तिजनक। एक अकिंचन दासी यों राजकुमार को लेकर बैठ जाये और देने से इनकार करे! तो आप ही बताइए, हम मगध का शासन किसके नाम पर करेंगे? हमें कुमार ही नहीं मिलेंगे तो घोषणा किसके नाम की की जायेगी? और सोचिए, लोगों पर तथा दूसरे राज्यों पर इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी?'

'जी हाँ, मैं भी यही सोचता हूँ। उसे बन्दीगृह में डाल दिया जाये और राजकुमार को उससे छीन लिया जाये। लेकिन यह काम शान्ति से और समझा-बुझाकर करना होगा। वह मरना चाहे तो भले ही मरे, उसके मरने से हमारी कोई हानि नहीं। परन्तु भय यह है कि कहीं वह राजकुमार को ही

न मार डाले ! यदि उसने पहले राजकुमार को मारा और फिर स्वयं मरी तो हम अच्छी-खासी विपत्ति में पड़ जायेंगे। और मान लीजिए कि वह राजकुमार को कहीं छिपा ही दे तो हम क्या करेंगे ? लोग तो यही कहेंगे कि वैशाली ने मगधपति के शिशु राजकुमार का वध कर डाला। दासी को कौन जानता है। चारों ओर शोर मच जायेगा कि वैशाली ने भयंकर अनाचार किया है और लोग लिच्छवियों को अनार्य कहकर निन्दा करने लगेंगे।

'तिलभट्टकजी, सत्य की छान-बीन तो कोई करता नहीं, जो लोकापवाद प्रचलित हो जाता है लोग उसी को मानकर चलने लगते हैं। सारा भारतवर्ष आपके इस नगर के नाम पर थूकने लगेगा। लिच्छवियों के शत्रु तो अभी ही कहते हैं कि लिच्छवी-गण आर्य नहीं; फिर तो सब डंके की चोट कहेंगे कि वैशालीवाले अनार्य हैं। आप और हम किस-किसका मुँह पकड़ेंगे ? जरा-सी बात का बतंगड़ बन जायेगा और उसके दूरव्यापी राजनीतिक परिणाम होंगे।

'यही सोचकर मैं चुप बैठा हूँ। मेरी जरा-सी जल्दबाजी से वैशाली का घोर अनिष्ट हो सकता है। वह भला मैं कैसे कर सकता हूँ। दासी आज नहीं मानेगी तो दो दिन बाद मानेगी। आखिर जायेगी कहाँ ? यों आप कहें तो मैं राजकुमार को अभी ले आऊँ। मगध की शक्तिशाली सेना के सामने एक दासी कितना जोर मारेगी ? लेकिन डर यही है कि कहीं राजकुमार के बदले उनका शव ही मिला तो क्या होगा ? आपकी तो बित्ता-भर की कटेगी, हमारी तो हाथ-भर की कट जायेगी ! राजकुमार के नाम की घोषणा सुनने के लिए स्वयं मैं भी कुछ कम उत्सुक नहीं हूँ; परन्तु यही सब सोचकर रह जाना पड़ता है।'

सेनापति की बातों ने तिलभट्टक को विचारों के वर्तुल में फँसा दिया। न उसके कथन को असत्य माना जा सकता था, न सत्य। राजकुमारों का लालन-पालन करनेवाली दासियाँ प्रायः ही स्वामिभक्त होती थीं। मगध के राजकुमारों की दासियाँ तो इसके लिए और भी प्रसिद्ध थीं। सुन्दर वर्मा को बुढ़ापे में बड़ी मनौतियों के बाद पुत्र की प्राप्ति हुई थी। उन्होंने अपने पुत्र के लिए कभी ऐसी-वैसी दासी नियुक्त नहीं की होगी। हजारों में से चुनकर किसी एक निष्ठावान दासी के हाथ में अपने पुत्र को दिया होगा।

थोड़ी देर तक तिलभट्टक कुछ सोचता रहा। फिर उसने कहा—तो चलिए, हम राजकुमार को देख तो लें। बिलकुल निःशस्त्र चलेंगे। सैनिक भी कोई साथ न होगा। इसमें तो उसे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

'इसमें भला उसे क्या आपत्ति होगी? आपके आने से पहले मैंने भी उसके पास इसी आशय का सन्देश भिजवाया था। लेकिन इस समय राजकुमार सहसा रुग्ण हो गए हैं। माता के आकस्मिक विछोह को वह बालक सह नहीं सका। और इधर हमारे सैनिक भी अपने राजकुमार को देखने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। यह सब सुनकर उस दासी ने कहा है कि जैसे ही राजकुमार स्वस्थ हुए मैं स्वयं उन्हें लेकर सेना के समक्ष आऊँगी। मैंने छान-बीन की तो उसकी बात को सत्य पाया। भिषग्वरों का भी कहना है कि राजकुमार का रोग माता के आकस्मिक विछोह का ही परिणाम है; अभी पुरुषों का उन्हें देखने जाना ठीक न होगा, इससे रोग के बढ़ने की ही सम्भावना है।'

इन सब बातों से तिलभट्टक ने यह अनुमान लगाया कि राजकुमार अभी यहीं है। परन्तु वह पूरी तरह आश्वस्त हो लेना चाहता था। इसलिए उसने कहा—तो ऐसा हो सकता है कि कुमारदेवी राजकुमार को देखने जायें। मातृ-स्वरूपा देवी को देखकर कुमार की व्यथा भी नहीं बढ़ेगी और हम भी आश्वस्त हो जायेंगे। अब तो राजकुमार पर ही देश का भविष्य निर्भर करता है। वैशाली राजकुमार को मगधपति का गौरव प्रदान करना चाहती है। वैशाली पाटलीपुत्र के महत्त्व को बढ़ाना चाहती है। इसलिए उचित यही है कि कुमारदेवी स्वयं राजकुमार को देखने जायें।

कुंजरक ने इसका उत्तर भी पहले से ही सोच रखा था। असल में वह और मित्रगुप्त रात-भर बैठे कुमार के देखे जाने-सम्बन्धी सभी सम्भावनाओं पर विचार करते रहे थे। दासी धरा ने पहले ही कह दिया था कि कुमारदेवी स्वयं राजकुमार को देखना चाहेगी। जो सोचा गया था ठीक उसी प्रकार हो रहा था। यदि कुंजरक और मित्रगुप्त ने सब सम्भावनाओं पर पहले से विचार न कर लिया होता तो अभी सेनापति को जवाब देना मुश्किल पड़ जाता। तिलभट्टक की हर बात का उत्तर देने के पहले उसे रुक-रुककर सोचना पड़ता, जिससे सन्देहों की वृद्धि होती। अब वह सहज भाव से उत्तर

देता जा रहा था और इस बात का भी उसने उतनी ही सहजता से उत्तर दे दिया।

वह बोला—वाह, यह तो आपने मेरे मुँह से बात छीन ली। इससे उत्तम बात और क्या हो सकती है। यों तो विज्जकादेवी भी यहीं हैं और भिषग्वर भी यही कहते हैं कि किसी प्रकार राजकुमार का मातृ-वियोग का आघात कम हो। कुमार के लिए माता से मिलने का वातावरण निर्मित हो, और मातृ-मिलन की अनुभूतियाँ उनमें जाग्रत हो सकें तो उनका रोग बहुत-कुछ कम हो जायेगा। इसके लिए आवश्यक है कि राजवंश की कोई महिला उनसे मिले। इस प्रकार राजकुमार अपने आघात को सहने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। तो आप ऐसा ही कीजिए। महादेवी को लेकर आइए। उन्हें साथ लेकर हम कुमार से मिलने जायेंगे। दासी को भी इसमें कोई आपत्ति न होगी क्योंकि यह सारा उपाय राजकुमार के रोग-निवारण में सहायक होगा। वैसे मैं स्वयं बड़ा चिन्तित हूँ और जल्दी-से-जल्दी पाटलीपुत्र लौट जाना चाहता हूँ। सुगंगप्रासाद के हत्याकांड के बाद मैं यहाँ एक क्षण भी रुकना नहीं चाहता। हम भी यही चाहते हैं कि राजकुमार के नाम की शीघ्र घोषणा की जाये। वैशाली इससे सहमत है ही। यह हमारे लिए परम सन्तोष की बात है। लेकिन जल्दी मैं कर नहीं सकता। मेरे हाथ इस प्रकार बँध गए हैं कि आपसे क्या कहूँ! दासी का दुराग्रह तो है ही, भिषग्वर भी धमकी देते हैं कि यदि जल्दी की तो राजकुमार के प्राणों पर बन आयेगी और यदि राजकुमार को कुछ हो गया तो वे भी अपने प्राण दे देंगे। ऐसे में आप ही बताइए, मैं क्या कर सकता हूँ?

तिलभट्टक को जो कहना-सुनना था वह कह चुका था। अब अधिक देर यहाँ रुकना निरर्थक ही था। वह जाने के लिए उठा। लेकिन उसके उठते ही एक त्रिपुंडधारी दाढ़ीवाले व्यक्ति ने वहाँ प्रवेश किया। वह वेश-भूषा और हाव-भाव से भिषग्वर प्रतीत होता था। आते ही उसने तीखे स्वर में पूछा—सेनापतिजी, आप कुमार के शिविर में जाना चाहते हैं?

'हाँ, जाना तो चाहते हैं। क्यों, क्या बात है?' कुंजरक ने कहा, 'हमें यहाँ से शीघ्र पाटलीपुत्र लौटना है।'

'हत्यारे दो प्रकार के होते हैं सेनापतिजी !' वह भिषग्वर झल्ला उठा, 'यदि शस्त्र लेकर राजकुमार को मारने जाते तो मैं आपको कंस कहता; लेकिन आप तो अश्वत्थामा का कार्य कर रहे हैं। गर्भस्थ शिशु की हत्या करने के समान यह पातक होगा। आपको रोकने का एक ही उपाय है और वह यह कि हम स्वयं अपने प्राण दे दें। और हम अवश्य ऐसा करेंगे। आपके कुकृत्य के विरोध में हमें अपने प्राण देने ही होंगे। आप जाना चाहते हैं न; तो जाइए। सारी सेना को साथ ले जाइए। मगध में मनुष्य रहे ही कहाँ हैं ! मानवता के उद्धार के लिए, शिशुकुमार की रक्षा के लिए किसी को तो मरना ही होगा और हम खुशी-खुशी मरेंगे ! आप जाना चाहते हैं तो जाइए, रास्ता खुला हुआ है।'

'अरे, अरे, भिषग्वर, यह आप क्या कह रहे हैं ! इतने कुपित क्यों हो रहे हैं ? पागल की तरह प्रलाप क्यों कर रहे हैं ?'

'पागल का प्रलाप भले ही हो, लेकिन दुष्टता और सुविचारित क्रूरता तो इसमें नहीं है ! क्या चार दिन आप रुक नहीं सकते ? चार दिन में हम कुमार को भला-चंगा कर देंगे। उनके मानसिक आघात का प्रथम आवेग शान्त हो चुकेगा। तब आप उन्हें खुशी से देख सकेंगे। लेकिन अभी नहीं !'

अब तिलभट्टक को सन्देह होने लगा कि इन लोगों के द्वारा इस प्रकार बात के बढ़ाये जाने में कोई रहस्य अवश्य होना चाहिए। हो सकता है कि इस प्रकार समय लेकर ये राजकुमार को पाटलीपुत्र ले जाना चाहते हों। इस लिए उसने वैद्य द्वारा निर्धारित अवधि को पत्थर की लकीर बनाने के उद्देश्य से कहा—देखो भिषग्वर, हम तुम्हारे कर्त्तव्य में बाधा नहीं पहुँचाते और तुम हमारे कर्त्तव्य में बाधक मत बनो। दर्द कितना नाज़ुक है, इसे तुम जानते हो। समय कितना नाज़ुक है, इसे हम जानते हैं। हम शीघ्रातिशीघ्र पाटलीपुत्र पहुँच जाना चाहते हैं। वहाँ कोई शासक नहीं, कोई शासन नहीं। यह स्थिति कइयों को लुभा रही होगी। हमें देखना है कि वे अपने लोभ को कार्यान्वित न करने पायें। भगवती कुमारदेवी की भी यही इच्छा है। वह पाटलीपुत्र के साथ हैं। यह तथ्य सेनापति कुंजरक को धैर्य बँधाये हुए है। यद्यपि शीघ्रता

आवश्यक है, फिर भी जैसा तुम कहते हो वैसा ही हो। आज न सही, राजकुमार को तीन दिन के बाद ही देखेंगे।

तिलभट्टक के मन में सन्देह अवश्य घर कर गया था। वह जानता था कि राजमाता के सहगमन के बाद सेनापति और महामंत्री राजकुमार को पाटलीपुत्र अवश्य ले जाना चाहेंगे। हो सकता है कि इसी लिए इस प्रकार समय ले रहे हों। यह भी सम्भव है कि मंत्रगुप्त आ गया हो और वही पर्दे के पीछे बैठा सारे सूत्रों का संचालन कर रहा हो। मंत्रगुप्त और कुंजरक की योजना के सम्बन्ध में तिलभट्टक को कुछ भी पता नहीं चलने पाया था। वह केवल इतना जानता था कि वे प्रवरसेन के यहाँ जाना चाहते थे; क्या अब भी जाना चाहेंगे? यदि वैशाली उनकी सहायता करे तो क्या वे चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र से निकाल बाहर करने की बात पहले नहीं सोचेंगे? वैशाली का उन्हें कोई खास डर नहीं भी हो सकता है। वे सोच सकते हैं कि वैशाली से तो बाद में भी, मथुरा, पद्मावती, अहिछत्र और कांचनका की सहायता से, निपटा जा सकता है।

लेकिन उनकी जो भी योजना हो, अभी तो राजकुमार को अपने अधिकार में कर लेना चाहिए। ऐसा करके ही उनका प्रवरसेन के यहाँ जाना रोका जा सकता है।

सेनापति की बातों से मंत्रगुप्त की योजना के बारे में तिलभट्टक को कुछ भी मालूम नहीं हुआ। हाँ, इतना अवश्य निश्चित हो गया कि अभी कुछ समय प्रतीक्षा करनी होगी। वह लौट गया।

नियमानुसार तीसरे दिन तिलभट्टक पुनः मगध के सैन्य शिविर में आया।

इस बार सेनापति ने स्वयं तत्परता दिखलाई। वह बोला—तिलभट्टकजी, कुमार के मन में भय पैठा हुआ है। भगवती कुमारदेवी के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए हम रुके हुए हैं। हमें पाटलीपुत्र लौट जाने की जल्दी है। हमने अब अपनी नीति भी निर्धारित कर ली है। इस सम्बन्ध में मैं महामंत्री हरिषेण महोदय से भी मिलना चाहता हूँ।

'लेकिन महामात्य मंत्रगुप्त कहाँ हैं? वह क्यों नहीं दिखाई दिये?'

'तिलभट्टकजी, हम ठहरे सैनिक। सैनिकों का मार्ग भिन्न होता है और

राजनीतिज्ञों का भिन्न। महामंत्री अभी तक तो दिखे नहीं, और अब दिखाई दें, इसकी कोई सम्भावना भी नहीं। वह अवश्य वहीं चले गए होंगे।'

'कहाँ?'

'जायेंगे कहाँ और दूसरा इस समय है भी कौन? गए होंगे या तो गणपतिनाग के यहाँ अथवा प्रवरसेन के यहाँ। अधिक सम्भावना प्रवरसेन के यहीं जाने की है।'

कुंजरक को इतनी साफ-साफ बातें करते देख तिलभट्टक को बड़ा आश्चर्य हुआ।

कुंजरक ने तिलभट्टक के विस्मय को लक्ष्य किया और निर्णयात्मक स्वर में बोला, 'लेकिन वह कहीं भी जायें, हमें तो अब पाटलीपुत्र जाना है। भगवती कुमारदेवी शिशु युवराज को अपने संरक्षण में ले लें तो हम उपकृत हुए। बाल मगधपति की घोषणा हो जानी चाहिए। राजरक्षक भगवती कुमारदेवी बनें... '

'अथवा चन्द्रगुप्त....'

'चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में यह कवयित्री विज्जकादेवी आपको विस्तार से बतलायेंगी। सम्भवतः आप नहीं जानते कि चन्द्रगुप्त कौन है?'

'कौन है?'

'वह क्षत्रिय नहीं, न गुप्त-वंश का ही है!' विज्जकादेवी बोली, 'हम उसे पाटलीपुत्र में से निकाल बाहर करना चाहते हैं। आप और हम वर्षों पुराने पड़ोसी हैं। हम सैकड़ों बार लड़े और सैकड़ों बार एक हुए। आप ही बताइए, कभी किसी ने ऐसा भयंकर विश्वासघात किया है? अजातशत्रु ने आपको लूटा, पराजित किया, आपके नगर को ध्वंस कर डाला; लेकिन सब कुछ आमने-सामने की लड़ाई में किया। परन्तु इस पापी ने तो पीठ पीछे वार किया। बूढ़े राजा को मारनेवाला मेरे मन तो कारस्कर (हीनातिहीन कुल का) ही है। मैं तो उसे सौ जन्म भी क्षत्रिय मानने को तैयार नहीं।'

चन्द्रगुप्त की बात छिड़ते ही विज्जका का पारा एकदम गरम हो गया था।

तिलभट्टक ने कवयित्री की बात पर तो विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु

सेनापति की बात ने उसे अवश्य भ्रम में डाल दिया। वह यही समझा कि मंत्रगुप्त यहाँ आया नहीं है और सेनापति अकेला पड़ गया है और इसी लिए चाहता है कि शिशु राजकुमार को मगधपति घोषित कर दिया जाये।

तिलभट्टक ने सोचा, हो सकता है कि सेनापति की बात सच हो। मंत्रगुप्त यहाँ आने के बदले प्रवरसेन के ही पास चला गया हो। यदि उसने पाटलीपुत्र पर आक्रमण किया तो वैशाली की जागरूकता और पाटलीपुत्र के सहयोग से ही उस आक्रमण का निवारण हो सकेगा। लेकिन यह तभी सम्भव है जब राजकुमार यहाँ हो।

उसने कहा—मंत्रीश्वर वहाँ गए हैं, लेकिन राजकुमार तो यहीं हैं न ?

'जी हाँ, राजकुमार तो यहीं हैं। भगवती कुमारदेवी उनका हाथ थाम लें तो हम यही समझेंगे कि उन्हें अभय मिल गया, वे इन्द्र की गोद में बैठ गए। वैशाली और पाटलीपुत्र की एकता हमारी समझ में आती है। यह उचित ही है कि भगवती कुमारदेवी अपने पड़ोसी राज्य की रक्षा करें। लेकिन एक हीनकुलोत्पन्न, नापित नन्द-जैसा विश्वासघाती पाटलीपुत्र का राजा हो, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। हम भगवती कुमारदेवी से भी यही कहना चाहते हैं कि आप शिशु युवराज की रक्षा करें, वह आपके पड़ोसी हैं। यह मेरी, मगध के सेनापति की राय है, साथ ही मेरी सेना की भी राय है। मंत्रगुप्त की बात न्यारी है। उनकी प्रतीक्षा में बैठे रहे तो पाटलीपुत्र को खोने की नौबत आ जायेगी। हमें यहाँ से शीघ्र जाना है। जल्दी ही हम अपना शिविर भी उठा लेंगे।'

सेनापति के इस कथन के बाद, दूसरे दिन स्वयं कुमारदेवी राजकुमार को देखने आई। राजकुमार वहीं था। सेनापति उसके प्रति असीम श्रद्धा और भक्तिभाव प्रकट करता रहा।

कुमारदेवी को भी विश्वास हो गया कि मंत्रगुप्त यहाँ आया ही नहीं, वह पाटलीपुत्र से सीधे प्रवरसेन के यहाँ चला गया होगा। राजकुमार के रुग्ण होने की बात भी कुमारदेवी को सच लगी। उसे भी लगा कि सेनापति के कथनानुसार कुछ दिन प्रतीक्षा करने में कोई हर्ज नहीं। स्वयं उसे भी वैशाली की अपनी सेना को तैयार करना था। उसने बातों-ही-बातों में यह भी बतला

दिया कि गणपतिनाग इधर से जा रहे थे और सहसा रोगाक्रान्त हो गए, इसलिए वैशाली में इस समय उनकी चिकित्सा हो रही है। यह उसने इस उद्देश्य से कहा कि यदि सेनापति गणपतिनाग के आसरे हो तो चौंक जाये। लेकिन कुंजरक पर गणपतिनाग के उल्लेख का कोई स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित नहीं हुआ।

उधर वैशाली के लिच्छवी तैयारियों में संलग्न थे। सैनिकों में इस विचार से बड़ी उमंग थी कि वर्षों बाद पाटलीपुत्र पर अधिकार करने का स्वप्न पूरा होगा।

थोड़े ही दिनों में वैशाली की सारी सेना कूच के लिए तैयार हो गई। अब केवल कुमारदेवी के आदेश की प्रतीक्षा की जा रही थी।

इधर सेनापति कुंजरक को भी जल्दी पड़ी थी। लेकिन जब तक टोह में निकले हुए वैशाली के सत्री और गुप्तचर लौटकर सूचना न दे दें प्रतीक्षा करते रहने के सिवा और कोई चारा नहीं था।

मगध के महामंत्री मंत्रगुप्त का अभी तक कोई पता नहीं चला था। वह तो ऐसा अलोप हुआ कि यह बताना ही मुश्किल हो गया कि जीवित है अथवा मर गया।

इस बीच पाटलीपुत्र में चन्द्रगुप्त की स्थिति दृढ़ होती जा रही थी। कुंजरक यह सुन-सुनकर अकुला उठा था। अन्त में एक दिन उसने महामात्य हरिषेण के समक्ष अपने प्रयाण की बात छेड़ ही दी।

उसने कहा—महामात्य, अब हमें अपनी सेना के साथ पाटलीपुत्र चले ही जाने दीजिए। आशंका यही है कि मगध की सेना के एक भाग को दूसरे भाग से कहीं लड़ना न पड़े। इतने दिन हो गए, पता नहीं अब चन्द्रगुप्त किस तरह का आचरण करे! वह भला पाटलीपुत्र के अजेय दुर्ग को छोड़ने के लिए राजी क्यों होगा? इसी लिए हम वैशाली की सेना के साथ जाना चाहते हैं। मगध की सेना का आपस में लड़ना तो किसी भी प्रकार उचित न होगा। यदि ऐसा हुआ तो देश का सर्वनाश ही हो जायेगा। आप साथ हों और वैशाली की सेना साथ रहे तो चन्द्रगुप्त का साहस सामना करने का न होगा और न वह महादेवी के आदेश की अवहेलना कर सकेगा। इस

प्रकार जो कुमार का है वह कुमार को मिल जायेगा।

मंत्रगुप्त ने एक नई ही योजना बनाई थी। उसने सेनापति को समझाया कि यदि कुमारदेवी राजकुमार की रक्षा करने का वचन दे और उसकी संरक्षक बन जाये तो चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र से भगाना अपेक्षाकृत सरल हो जायेगा। इस बीच प्रवरसेन पहुँच जायेगा, और शिशुकुमार को पाटलीपुत्र के सिंहासन पर आसीन कर दिया जायेगा। यदि वैशाली ने इसका समर्थन नहीं किया तो उसे घेर लिया जायेगा। मगर यह योजना पाटलीपुत्र में बैठकर ही पूरी की जा सकती थी। यही कारण था कि सेनापति कुंजरक पाटलीपुत्र पहुँचने के लिए इतना उतावला हो रहा था।

राजकुमार के सम्बन्ध में उनकी चाल सोलहों आने सफल रही थी। उस सफलता से उत्साहित होकर अब वे पाटलीपुत्र में जाकर अपना डेरा जमाना चाहते थे।

कुमारदेवी भी इसके लिए प्रस्तुत हो गई। वैशाली और मगध की दोनो सेनाएँ एक संयुक्त कमान के नीचे पाटलीपुत्र की ओर चल पड़ीं। सब को ऐसा लग रहा था कि युद्ध के बिना ही वैशाली ने पाटलीपुत्र को और पाटलीपुत्र ने वैशाली को स्वीकार कर लिया है। यद्यपि दोनो के पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्टीकरण नहीं हुआ था, परन्तु इस समय किसी को स्पष्टीकरण करने की चिन्ता भी नहीं थी।

दोनो सेनाओं ने पाटलीपुत्र के बाहर आकर पड़ाव डाल दिया।

तिलभट्टक सन्देश लेकर भीतर गया : चन्द्रगुप्त बाहर आये और भगवती कुमारदेवी से मिले जिसमें वैशाली और पाटलीपुत्र के पारस्परिक सम्बन्धों का एवं चन्द्रगुप्त की स्थिति और स्थान का भी निर्णय हो जाये।

चन्द्रगुप्त के उत्तर और आचरण से उसके रुख का पता चल जायेगा। बात बड़ी महत्त्वपूर्ण थी और उसी पर सारे भविष्य का दारोमदार था। यदि चन्द्रगुप्त को वैशाली से सम्बन्ध रखना स्वीकार न हुआ तो कुमारदेवी को ही पाटलीपुत्र में बैठना होगा।

तिलभट्टक सन्देश लेकर गया और चन्द्रगुप्त के आने की प्रतीक्षा की जाने लगी।

इस बीच मंत्रगुप्त की जान मुसीबत में फँसी हुई थी। अभी तक तो सर्व-कुछ उसकी योजनानुसार ही होता आया था। परन्तु अब उसके वहाँ होने की बात फूटने का भय बहुत बढ़ गया था। यदि बात फूट गई तो क्या होगा? इस भय ने उसकी रात की नींद औ दिन का चैन ही हर लिया था। वह प्रकट नहीं होना चाहता था, पर गुप्त रहने में संकट भी कम नहीं था। यथा-सम्भव वह बाहर निकलता ही नहीं था। सेनापति के शिविर के ठीक पीछे एक गड्हे में वह दिन-रात छिपा बैठा रहता था। गड्हे को ऊपर शस्त्रास्त्रों से इस प्रकार ढक दिया गया था कि वह साँस भी कठिनाई से ले पाता था। यों समझना चाहिए कि किसी हठयोगी की भाँति वह उग्र तपस्या में ही रत था। अन्तर केवल इतना था कि योगी का मन शान्त और निराकुल होता है और मंत्रगुप्त का मन अशान्त और व्याकुल था।

अपने गड्हे के समीप उसने तीन अश्वों के सतत खड़े रखे जाने की व्यवस्था भी की थी। तीनो घोड़े मरुत वेगी थे। सवार के पीठ पर बैठते ही वे हवा से बातें करने लगते और कोई उन्हें पकड़ न पाता। मंत्रगुप्त ने अपने लिए गड्हे और घोड़े की व्यवस्था वैशाली में भी करवाई थी ~~और ...~~। व्यवस्था उसके लिए यहाँ पाटलीपुत्र में भी की गई थी।

कुमारदेवी का सन्देश चन्द्रगुप्त को प्राप्त हुआ। लेकिन इस समय कुमारदेवी अकेली नहीं थी, कुंजरक उसके साथ था, मगध की सेना भी थी, पता नहीं इतने दिनों में क्या हुआ, इसलिए वह तत्काल किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाया।

वह सोचने-विचारने के लिए समय चाहता था। उसे सबसे बड़ा डर मंत्र-गुप्त का था! उसकी वाक्शक्ति का परिचय चन्द्रगुप्त को अनेक बार मिल चुका था। अपनी चतुर वाणी के द्वारा मंत्रगुप्त किसी को भी अपने जाल में फँसा सकता था।

उसने पता लगाने के लिए अपने गुप्तचरों को भेजा। उन्होंने आकर बताया कि सेनापति कुंजरक है, उसके साथ शिशु राजकुमार है 'और राज-कुमार को मगधपति घोषित करने के ही लिए कुमारदेवी इस समय आई है; इस प्रकार वैशाली और पाटलीपुत्र को एक किया जायेगा।

सुनकर चन्द्रगुप्त के कान खड़े हो गए। उसकी समझ में नहीं आया कि इस व्यवस्था में मेरा अपना स्थान कहाँ और कौन-सा है ?

उसे कृतक-तनय बनाकर सुन्दर वर्मा ने स्थानभ्रष्ट किया था। यह काम मंत्रगुप्त का था। अब पुनः वह स्थानभ्रष्ट किया जा रहा था। यह काम भी मंत्रगुप्त का ही होना चाहिए।

उसने निश्चय किया कि अब मगध में कोई दूसरा आने नहीं पायेगा, कुमारदेवी भी नहीं।

दूसरा निर्णय उसने यह किया कि वैशाली और पाटलीपुत्र एक होंगे और एक रहेंगे।

तीसरा निर्णय उसने यह किया कि देश का नेतृत्व और नवनिर्माण करने की शक्ति अकेले कुमारदेवी में है, इसलिए यदि उसके मन में किसी प्रकार का सन्देह हो तो उसका निवारण करना चाहिए; और स्वयं मगधपति बन सके इस रूप में वैशाली का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार सोच-विचार कर निर्णय करने के बाद एक दिन वह अकेला और निहत्था ही कुमारदेवी से मिलने के लिए चल पड़ा। अपने पहुँचने की सूचना उसने पहले ही भेज दी थी। सबसे पहले वह कुमारदेवी से ही मिलना चाहता था।

जब वह शिविर में पहुँचा तो रात हो चुकी थी। चारों ओर अन्धकार फैल गया था। कहीं-कहीं अलाव जलने लगे थे। दीये जल चुके थे। वह अकेला ही कुमारदेवी के शिविर-स्थान को ओर चल पड़ा।

उसे पता चल गया था कि विज्जका ने वैशाली में बैठकर उसके हीन-कुलोत्पन्न होने के सम्बन्ध में खूब मिथ्या प्रचार किया है। मगध में तो वह पहले ही इस प्रवाद को प्रचारित कर चुकी थी; वैशाली का एक-एक नर इस प्रवाद से परिचित हो चुका था। यहाँ तक कि मथुरा और विन्ध्यप्रदेश तक यह बात फैल चुकी थी। प्रवीर प्रवरसेन तो इस मिथ्या प्रवाद से लाभ उठाने को भी तैयार हो गया था। अवश्य कुमारदेवी पर भी इस बात का प्रभाव हुआ होगा। तभी न वह शिशुकुमार को मगधपति घोषित करने के लिए यहाँ आई है!

मगध की नाममात्र की परिषद् ने उसे हीन माना था। पाटलीपुत्र में वह अपना गौरवपूर्ण स्थान गँवा बैठा था। इसलिए रह-रहकर महाभारत के कर्ण की भाँति उसके मन में यही बात गूँज रही थी—देवायत्तं कुले जन्म, ममायत्तं तु पौरुषम्।

अपने पौरुष को प्रदर्शित कर दैव के द्वारा दिये हुए कुल को वह मेट देना चाहता था। एक बार कुमारदेवी से मिलकर अपनी बात कह दे और उसकी बात सुन ले। फिर उसे कोई चिन्ता नहीं रह जायेगी। वह अकेला ही पाटलीपुत्र के अजेय दुर्ग में बैठकर सारे विश्व की चुनौती को स्वीकार कर लेगा और अपने पौरुष से उन्हें दिखा देगा कि वह क्या है। मगधपति तो वह स्वयं ही होगा। विश्व की कोई शक्ति उसे इस पद से उखाड़ न सकेगी। वह अकेला प्रवरसेन, गणपतिनाग, अहिछत्र और मथुरा के यादवों का सामना करेगा। एक युग तक, पूरे बारह वर्षों तक शोणित-तर्पण करके अपने कुल को पवित्र और उज्ज्वल करेगा।

इस समय, जब वह कुमारदेवी के पास जा रहा था, उसके मन में अपने हीनकुल के होने की बात को लेकर रोप की होलियाँ सुलग रही थीं।

'हुँः, हीनकुल, कुछ भी हुआ कि हीनकुल! एक नगण्य नागरिक भी हीनकुल की तुलना में अपने को उच्च कुल का समझकर मूँछों पर ताव दे सकता है। हीनकुल न हुआ कोढ़ हो गई!'

उसने निश्चय कर लिया था कि कुल हीन हो या हीनतर मगधपति तो वही बनेगा और इस दृढ़ निश्चय के साथ उसने कुमारदेवी के शिविर में प्रवेश किया।

कुमारदेवी का अभिवादन कर वह वहाँ रखे हुए एक आसन पर बैठ गया। उसका मुख-मण्डल तमतमाया हुआ था और अपने व्यक्तित्व के अपमान की वेदना उसके चेहरे पर स्पष्ट रूप से अंकित थी।

कुछ खिन्न स्वर में वह बोला—देवी, मुझे याद करने की ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई? सेना मेरे पास नहीं—सैनिक हैं, पर केवल साकेत के। मगध की सेना है, पर उस पर मुझे विश्वास नहीं। ये सब यहीं थे और सुन्दर वर्मा मारा गया। लेकिन मारनेवाला मैं, मानो रौरव नरक का अधिकारी

हूँ, इस भाँति सबके द्वारा तिरस्कृत और निन्दित किया जा रहा हूँ। लोग मुझे विश्वासघाती, कृतघ्न, चांडाल, हीनकुलोत्पन्न, नापित—जिसके जो जी में आता है, कहकर कोसते फिरते हैं। लगता है कि स्वयं देवी की राय भी मेरे बारे में बदल गई है। आप शिशु राजकुमार को यहाँ मगधपति के रूप में प्रतिष्ठित करने आई हैं, इसका मैं यही अर्थ लगाता हूँ। यदि आप भी मुझे हीनकुलोत्पन्न समझती हों तो स्पष्ट कह दें। जब तक पाटलीपुत्र का अजेय दुर्ग खड़ा है उसके पत्थर मेरे कुल का निर्णय करेंगे—वे ही बतायेंगे कि मैं हीनकुल का हूँ या उच्च कुल का? देवी क्या चाहती हैं:? वैशाली पाटलीपुत्र की सहायता किस रूप में करने के लिए आई है? इस व्यवस्था में मेरा स्थान और भविष्य क्या है?

कुमारदेवी से उसका गहन शोक और खिन्नता छिपे न रहे। उसने स्नेह कोमल स्वर में कहा—कुमार चन्द्रगुप्त, आप मुझे देवी कहकर सम्बोधित करते हैं, यह कदापि उचित नहीं। मैं तो हूँ लिच्छवीकुमारी और लिच्छवीकुमारी की तुलना में देवी का बिरुद मुझे बिलकुल हीन और ओछा प्रतीत होता है। जब तक लिच्छवियों में स्वाभिमान है एक लिच्छवीकुमारी देवी कहलाने की अपेक्षा लिच्छवीकुमारी कहलाने में ही गौरव का अनुभव करेगी। मैं लिच्छवियों के घर जनमी हूँ, लिच्छवी वातावरण में पल-पुसकर बड़ी हुई हूँ और मैं ही आपके साथ अन्याय करूँगी? यह विचार आपके मन में उत्पन्न ही कैसे हुआ? मगधपति के शिशु राजकुमार की रक्षा का दायित्व तो हमें विवश होकर ग्रहण करना पड़ा है। उसके पिता का वध हुआ, माता ने सहगमन किया, वह अकेला रह गया, वैशाली और पाटलीपुत्र में सबकी सहानुभूति उसकी ओर उमड़ पड़ी। ऐसी स्थिति में उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व ग्रहण करके वैशाली ने अपनी महानता और उच्चाशयता का ही परिचय दिया है। सब लोग वैशाली की इस उदारता से प्रभावित हुए हैं। सुरक्षा का भार लिया है हमने, परन्तु रक्षक तो रहेंगे आप ही।

'कौन, मैं रक्षक रहूँगा? नहीं, ऐसा कभी हो नहीं सकता; कोई इसे अब स्वीकार करेगा ही नहीं। मंत्रगुप्त ने सारा वातावरण ही बदल डाला है। जो कमी रह गई थी उसे विज्जका ने पूरा कर दिया। स्थिति यहाँ तक बिगड़

चुकी है कि यदि प्रवरसेन आया तो सभी प्रादेशिक उसकी सहायता करेंगे। ऐसी दशा में मैं उसकी रक्षा क्या कर पाऊँगा। बिलकुल असम्भव है यह। और फिर मैं ठहरा हीनकुलोत्पन्न....

'जिसने हमारी सहायता की, जिसने सुरंगप्रासाद में हमें मार्ग दिखाया, जिसने मगध की रक्षा की, जिसने पाटलीपुत्र को बचाया, जिसने हमारा स्वप्न अपना स्वप्न बनाया, वह हीनकुलोत्पन्न कैसे हो सकता है? किसी के बकने से तो कोई हीनकुल का हो नहीं जाता। हीनकुलोत्पन्न तो वह है जो निर्बल है, जो निर्बलों को शासक बनाये रखता है। यदि आप हीनकुल के हैं तो मेरे लिए, मुझ लिच्छवीकुमारी के लिए तो कोई कुल ही नहीं रह जायेगा। बहुत-से तोजोद्वेषी हम लिच्छवियों को हीनकुलोत्पन्न मानते हैं, तो क्या उनके मानने से हम हीनकुल के हो गए? अपने को उच्च कुल का कहनेवाले युवक, अधिक नहीं, केवल तीन ही दिन काठ का सिरहाना लगाकर तो देखें! सारी अकड़ धरी रह जायेगी और हफ्तों ऐंठी हुई गर्दन की मालिश करानी पड़ेगी। जिस नगर में हल चला दिये गए थे, जहाँ की भूमि में बबूल बो दिये गए थे वहाँ आम्र वृक्षों को उगाना हँसी-ठट्ठा नहीं है। हीनकुल के तो वे हैं जो गिरने के बाद उठ नहीं सकते। मैं आपको हीनकुलोत्पन्न नहीं समझती। जो आपको हीनकुल का कहते हैं वे स्वयं हीनातिहीन कुल के हैं। वैसे तो मैं भी हीनकुल की हूँ, क्योंकि लिच्छवियों को अनेक लोग हीनकुलोत्पन्न ही मानते हैं। मेरे लेखे यह भी एक ईश्वरीय संकेत है। मैं आपको भारतपति बनाऊँगी, आप अखंड भारतवर्ष का मेरा स्वप्न सार्थक कीजिए। हम दोनो मिलकर अपने स्वप्नों को सार्थक करें। जिसके पास स्वप्न नहीं, आदर्श नहीं, महत्त्वाकांक्षा नहीं; हीन और दीन तो वह है। इसलिए आप इस बात को अपने मन से निकाल दीजिए और तब मुझे अपने हृदय को बात बताइए।'

यह सुनना था कि चन्द्रगुप्त का मन आशा, उल्लास और आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उसे एक नूतन दृष्टि प्राप्त हुई। लिच्छवीकुमारी ने उसे एक नई ही प्रेरणा प्रदान की थी। वह केवल मगधपति बनने के लिए नहीं भारतपति बनने के लिए जन्मा है।

उसने प्रेम-भरे शब्दों में कहा—देवी, आपने तो आज मुझे हिमालय के उत्तुंग शिखर पर बिठा दिया।

'आपने मेरे संकेत को ग्रहण किया यह मेरे प्रति आपके अगाध विश्वास का द्योतक है। जो एक-दूसरे के लिए निर्मित हुए हैं, एक-दूसरे के लिए ही हैं उनमें पारस्परिक विश्वास, श्रद्धा और प्रेम ही मुख्य बात है। मुझे लगता है कि ईश्वरीय संकेत हम दोनो को एक ही दिशा में प्रेरित कर रहा है।'

'देवी....' चन्द्रगुप्त को सहसा शिशु राजकुमार की बात याद हो आई।

'नहीं, देवी नहीं। मैं देवी नहीं। मैं इस समय लिच्छवीकुमारी हूँ।'

'लिच्छवीकुमारी, आपने कहा कि शिशु राजकुमार इस समय यहीं है?'

'हाँ।'

'मैं मान नहीं सकता। शिशु राजकुमार यहाँ हो नहीं सकता। और मंत्री मंत्रगुप्त भी यहाँ नहीं हो सकता।'

'फिर कहाँ हो सकता है?'

'मुझे लगता है कि वह इस समय कांचनका नगरी में होगा—हीरा-माणिक की खानोंवाले प्रदेश में। वह बैठा होगा प्रवीर प्रवरसेन के अतिथि-गृह में। वहाँ इस समय पाटलीपुत्र को घेरने की योजनाएँ बन रही होंगी। वह बड़ा विलक्षण पुरुष है, साथ ही बड़ा विचित्र भी। वक्र भी वह कम नहीं। इस समय वह यहाँ हो नहीं सकता। राजकुमार भी नहीं होगा। क्या आपने स्वयं राजकुमार को देखा है?'

'देखा क्यों नहीं है!'

'मैं मान नहीं सकता।'

'तो चलिए मेरे साथ। हाथ कंगन को आरसी क्या? स्वयं देखकर विश्वास कर लीजिए। शेष बातें हम उसके बाद करेंगे, क्योंकि वही तो सब बातों का आधार है।'

कुमारदेवी उठ खड़ी हुई। चन्द्रगुप्त भी खड़ा हो गया। दोनो राज-कुमार के शिविर में जाने के लिए बाहर आये।

जैसे ही वे बाहर आये उन्हें ऐसा आभास हुआ मानो कोई कुमारदेवी के शिविर-स्थान के पीछे से भागता हुआ चला गया।

मन के सन्देह को लिये हुए वे अभी वहाँ खड़े ही थे कि एक द्वारपाल दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया।

उन्होंने सोचा कि इस द्वारपाल के कारण ही ऐसा आभास हुआ होगा। अवश्य कोई महत्त्वपूर्ण संवाद होने चाहिए। इतने में द्वारपाल ने वहाँ आ-कर प्रणाम करते हुए जल्दी-जल्दी कहा—देवी की जय हो! महाराज प्रवर-सेन का सन्देशवाहक आया है। द्वार पर खड़ा है। देवी से मिलना चाहता है।

'इस समय?'

'जी हाँ, कहता है कि सन्देश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।'

'क्या हो सकता है गुप्तकुमार? लेकिन चलिए, पहले हम राजकुमार को देख आयें। द्वारपाल, सन्देशवाहक को कक्ष में बिठाओ। कौन है, तुम पहचानते हो?'

'देवी, वह अपना नाम सेनापति ग्रामबल बतलाता है।'

'सेनापति ग्रामबल?'

कुमारदेवी को बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रवरसेन की ओर से सेनापति के पद-वाला व्यक्ति सन्देशवाहक बनकर क्यों आया? अवश्य ही कोई बहुत महत्त्व-पूर्ण बात होनी चाहिए। लेकिन सबसे पहले शिशु राजकुमारवाले विवाद का निपटारा हो जाना चाहिए।

उसने कहा—जो भी हो। द्वारपाल, उन्हें थोड़ी देर यहाँ बिठाओ!

फिर वे दोनो राजकुमार के शयनागार में गये। उन्हें आते देखकर दासी नन्दा एक क्षण के लिए बाहर गई और पुनः लौट आई। जब उन्होंने राज-कुमार के शयनकक्ष में प्रवेश किया तो नन्दा वहाँ थी। वह अन्दर जाकर राजकुमार को अपनी गोद में ले आई।

चन्द्रगुप्त ने राजकुमार को देखा और एक भी शब्द बोले बिना लौट पड़ा। उसके इस व्यवहार से कुमारदेवी सशंक हो गई। लौटते समय चन्द्र-गुप्त ने अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—देवी, यह बालक तो दासी धरा का है। कुमार का लालन-पालन दासी धरा ही करती थी। उसे मैंने देखा है। राज-कुमार को भी मैंने देखा है। अवश्य बालकों की अदला-बदली की गई है।

इसका अर्थ यह है कि दासी धरा राजकुमार को लेकर प्रवरसेन के यहाँ पहुँच गई। मंत्रगुप्त भी वहीं होना चाहिए। प्रवरसेन का सन्देशवाहक यही समाचार लाया होगा। खैर, चलिए। अभी आप मौन रहें। कल सवेरा होते ही कुंजरक को बन्दी बना लें।....परिस्थिति एकदम बदल गई है।

कुमारदेवी के काटो तो खून नहीं। मंत्रगुप्त भयंकर चाल चल गया था। आँखों में धूल झोंककर वह राजकुमार को निकाल ले गया था। अब प्रवरसेन यहाँ चढ़ आयेगा। युद्ध अनिवार्य हो गया है। सम्भवतः यही सन्देश उसने भेजा हो!

उसने उत्तेजित स्वर में कहा—मंत्रगुप्त राजकुमार को ले गया, कोई चिन्ता नहीं; उसने सारी बाजी ही उलट दी, कोई चिन्ता नहीं; वह प्रवरसेन के आश्रय में जा बैठा, कोई चिन्ता नहीं! हमारी नीति अब बिलकुल स्पष्ट और निश्चित है। यहाँ इस समय कोई मगधपति नहीं, भविष्य की बात भविष्य में देखी जायेगी। कल आप स्वयं सेना लेकर बाहर निकलेंगे। वैशाली और पाटलीपुत्र एक होते हैं। चलिए, प्रवरसेन का सन्देश भी सुन ही लिया जाए। प्रकृति ही कह रही है कि आगे बढ़ो, मगध को अपने अधिकार में करो, भारतवर्ष को एक और अखंड बनाओ, देश का नवनिर्माण करो। जो युद्ध चाहते हैं हम उन्हें युद्ध देंगे।

और प्रवरसेन का सन्देश सुनने के लिए उन्होंने शीघ्रता से शिविर में प्रवेश किया।

२४. सेनापति और मंत्री भी भागे!

कुमारदेवी को यह आभास हुआ था जैसे कोई उसके शिविर-स्थान के पीछे से भागकर चला गया हो। द्वारपाल को आते देख उसका ध्यान बँट गया। वह प्रवरसेन के सन्देशवाहक के आगमन की सूचना देने के लिए आया था। इसलिए उस समय यह बात आई-गई हो गई।

परन्तु वह कुमारदेवी का निरा आभास नहीं था। बात बिलकुल सही

थी। वह कवयित्री विज्जका थी, जो उन दोनों की बातों को सुनने के लिए वहाँ छिपी बैठी थी। जब दोनो उठे तो वह वहाँ से भागकर चलती बनी।

चन्द्रगुप्त अकेला कुमारदेवी से मिलने आ रहा है, इसका पता उसे चल गया था। उसने छिपकर दोनो की बात सुनने का निश्चय किया। वह जानना चाहती थी कि चन्द्रगुप्त की बात का कुमारदेवी पर क्या असर होता है।

सैन्य शिविर में उसका बड़ा मान था। लोग उसे कवयित्री के अतिरिक्त मगध के शान्ति दूत के रूप में भी जानते थे। शिविर में कहीं भी आने-जाने की उसे पूरी स्वतंत्रता थी। इस स्वतंत्रता का उपयोग कर वह रात में कुमार-देवी के शिविर के पीछे, एकान्त में छिपकर खड़ी हो गई। उसने दोनो की बातचीत सुनी। जब राजकुमार का प्रश्न उठा तो वह सतर्क हो गई।

दोनो इसी समय राजकुमार को देखने जा रहे हैं। चन्द्रगुप्त दासी धरा के पुत्र को अवश्य पहचान लेगा। इसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा। तुरत सेनापति और मंत्रगुप्त की गति-विधि पर अंकुश लग जायेगा। वे अवश्य बन्दी बना लिये जायेंगे।

विज्जका ने निश्चय किया, उसे तत्काल भागकर मंत्री और सेनापति को इसकी सूचना देनी चाहिए और उन्हें सचेत कर देना चाहिए। आगे की बात सुनने के लिए वह रुकी नही। रुके रहने का समय ही नहीं था। उसे दोनो के सिर पर नंगी तलवार लटकती दिखाई दी।

वह दौड़कर सीधे मंत्रीश्वर के गड़हे की ओर गई। संयोग से सेनापति भी वहीं मिल गया। दोनो इस समय पाटलीपुत्र के भावी संघर्ष के बारे में विचार-विनिमय कर रहे थे। उनकी चर्चा का मुख्य प्रश्न यह था कि चन्द्र-गुप्त को पाटलीपुत्र से भगाया कैसे जाये। किसी तरह लोगों में यह प्रचारित कर देना चाहिए कि वृद्ध मगधपति का हत्यारा वही है। राजकुमार को चुरा ले जाने का कलंक भी उसी के माथे थोपना चाहिए। ये दो संगीन आरोप लगाकर उसे बन्दी बना लिया जाये और फिर राज्य से निर्वासित कर दिया जाये।

दोनो बैठे यह योजना बना रहे थे कि कवयित्री विज्जका सहसा अन्धड़

की भाँति वहाँ दौड़ी आई। उसे रोकने के प्रयत्न में साथ घिसटता हुआ द्वारपाल भी वहाँ चला आया। मंत्रीश्वर ने संकेत से द्वारापाल को रोका। वह तत्काल वहाँ से दूर चला गया।

'भागो, मंत्रीश्वर, भागो!' विज्जका ने जल्दी-जल्दी कहा, 'भागो! भाग जाओ! प्राण बचाना हो तो यहाँ एक क्षण भी मत रुको। बन्दी बनानेवाले आते ही होंगे। अपने पवनपंखी घोड़ों का उपयोग करो!'

मंत्रगुप्त और कुंजरक की कुछ भी समझ में नहीं आया। दोनों स्तम्भित होकर विज्जका की ओर देखने लगे।

फिर उन्होंने कहा—लेकिन बात क्या है कवयित्री? तुम इतनी घबराई हुई क्यों हो? कहाँ भागने के लिए कह रही हो? तुम्हारी बात का तो कुछ सिर-पैर ही समझ में नहीं आता!

'बात कुछ ऐसी हो गई है मंत्रीश्वर, कि कन्धों पर सिर ही नहीं रहेगा। इस नापित चन्द्रगुप्त ने सारा गुड़गोबर कर डाला है!'

'लेकिन कुछ समझ में भी तो आये कि ऐसा क्या गुड़गोबर कर डाला?'

'गुड़गोबर किया है अपनी बात का। उसने हमारे सारे रहस्य का ही उद्घाटन कर दिया। उसने कहा है कि राजकुमार यहाँ है ही नहीं। वह तो होना चाहिए प्रवरसेन के पास। प्रवरसेन का सन्देशवाहक भी आया हुआ है। सम्भवतः वह भी यही सन्देश लाया होगा।'

'अच्छा, प्रवरसेन का सन्देशवाहक आ गया? सच?' मंत्री ने उत्सुक होकर पूछा।

'हाँ, आ गया। मैंने स्वयं अपने कानों सुना है। द्वारपाल ने अभी इसकी घोषणा की है। कुमारदेवी और चन्द्रगुप्त राजकुमार को देखने गये हैं। अब आप लोगों के बन्दी बनाये जाने में कोई कसर नहीं। इसी लिए कह रही हूँ कि भागिए, एक क्षण भी मत खोइए।'

मंत्रीश्वर ने फुर्ती से सेनापति की ओर देखा। वह इस सन्देश की प्रतीक्षा ही कर रहा था। लेकिन कुंजरक असमंजस में पड़ गया था। वह अपनी सेना को छोड़कर जाना नहीं चाहता था। उसके सैनिक मन को यह स्वीकार नहीं

था कि अपने सैनिकों को जलती आग में छोड़कर स्वयं पलायन कर जाये। भला किस सेनापति ने ऐसा किया है?

लेकिन अधिक सोचने के लिए उनके पास समय ही कहाँ था? केवल दो क्षण उनके पास थे। या तो भागने का निर्णय करें या जीवन-भर की बन्धन-यातना को स्वीकार करें! कुमारदेवी, सचाई जानने के बाद, एक क्षण भी रुकेगी नहीं।

मंत्रगुप्त ने तत्काल निर्णय किया। वह उठकर खड़ा हो गया। सेनापति के पास आया। उसके असमंजस को वह ताड़ गया था। कन्धे पर हाथ रखकर उसने सेनापति से कहा—भाई कुंजरक, जान है तो जहान है। मर गए तो सारी दुनिया ही खत्म हो जायेगी। और राजबन्दी बनकर आज तक कोई जीवित नहीं रहा है। कवयित्री सच कह रही हैं। समय बिलकुल नहीं है। धरा अवश्य पहुँच गई है। सन्देशवाहक का आना यही सिद्ध करता है। अब हमें भी यहाँ से चल देना चाहिए। नहीं तो सारी योजना पर पानी फिर जायेगा।

'लेकिन सेना का क्या होगा?'

'अरे भलेमानुस, सेना को बनाते हैं सेनापति; सेनापति को सेना नहीं बनाती। सेनापति को भला सेना नहीं मिलेगी? कैसी बात करते हो! प्रवरसेन की सेना किसकी है? मथुरा के यादव की सेना किसकी है? अहिछत्र और गणपतिनाग की सेनाएँ किसकी हैं? ये सारी सेनाएँ हमारी ही तो हैं। हम होंगे, शिशु राजकुमार होगा तो सेना धरती फाड़कर निकल आयेगी। पाटलीपुत्र फिर हमारा होगा। परन्तु अभी समय नहीं है। भाई कुंजरक, उठो; अपने पवनपंखी घोड़े पर सवार होकर भाग चलो! इस समय दूसरा कोई मार्ग हमारे सामने नहीं है। वह देखो, कुछ सैनिक मुझे इसी ओर आते दिखाई देते हैं। हो सकता है कि वे हमें बन्दी बनाने के ही लिए आ रहे हों। क्या जानते नहीं कि कुमारदेवी बिजली है, वह सब काम विद्युत् वेग से करती है! भागो, विज्जकादेवी, दौड़ चलो!'

और तीनों व्यक्ति वहाँ से भागते हुए अदृश्य हो गए।

थोड़ी देर बाद वे अपने घोड़ों की पीठ पर थे। घोड़े भी उनके पवनपंखी

थे। उनकी गति और वेग में उनका विश्वास था।

यदि दो क्षण की भी देर हो जाती तो वे घिर जाते। फिर निकलना संभव न होता।

मंत्री की आशंका सच थी। सैनिक चले आ रहे थे। लेकिन इस समय वे उन्हें बन्दी बनाने के लिए नहीं आये थे। आये थे उनके चारों ओर घेरा डालने के लिए। बन्दी तो वे सवेरे बनाये जाने को थे।

सैनिकों ने चुपचाप अपना काम किया। चारों ओर घेरा डाल दिया। तभी उन्हें ऐसा आभास हुआ मानो पंछी उड़ चुके हैं और नीड़ खाली पड़ा है।

पता लगाने पर उन्हें अपनी आशंका सच प्रतीत हुई। वे कुमारदेवी को इसकी सूचना देने के लिए दौड़ पड़े।

२५. नगर की अधिष्ठात्री

समाचार मिलते ही कुमारदेवी ने सैनिकों को उनके पीछे दौड़ाया। परन्तु वह यह भी जानती थी कि अपने अश्वों पर भरोसा करके ही वे भागे हैं और पकड़े जाने के नहीं। अब उसके सामने एक ही मार्ग शेष था। डिंडिमिका-घोष करवा दे कि पाटलीपुत्र पर आक्रमण होनेवाला है, पाटलीपुत्र और वैशाली एक हो गए हैं और सम्प्रति कोई भी मगधपति नहीं है।

उनका पीछा करने के सम्बन्ध में जो उसने सोचा था वही हुआ। पीछा करने के लिए गए हुए सैनिक असफल लौट आये। भागते अश्व ही नहीं दिखाई दिये तो उनका पीछा कैसे किया जाता।

अब कुमारदेवी ने अपना ध्यान सैनिक तैयारियों की ओर लगाया। मगध सेना के चारों ओर उसने लिच्छवी सैनिकों की मोरचेबन्दी कर दी। रातोंरात सारी तैयारियाँ हो गईं और दुर्ग के सभी द्वारों पर लिच्छवी सैनिक खड़े कर दिये गए।

इसके तत्काल बाद डिंडिमिका-घोषणा की गई। उसमें कहा गया कि

पाटलीपुत्र पर आक्रमण होनेवाला है। प्रवीरसेन से सन्देशा प्राप्त हुआ है। सवेरा होते ही मगध परिषद् का अधिवेशन होगा। सब उसमें सम्मिलित हों।

इस घोषणा ने सब लोगों को भय-विकम्पित कर दिया। वर्तमान अनिश्चित शासन से तो जो भी आयेगा अच्छा ही होगा, इस प्रकार का तटस्थ और उदासीन भाव लोगों के मन में घर कर गया था। परन्तु कुमारदेवी की जागरूकता और सन्नद्धता लोगों के लुप्त विश्वास को पुनः प्रेरित भी कर रही थी और वे मानने लगे थे कि नगर की रक्षक और अधिष्ठात्री वही है।

सवेरा हुआ और सारे शहर में हलचल मच गई।

यद्यपि घोषणा में कहा गया था कि प्रवीर प्रवरसेन से सन्देश मिला है, फिर भी लोगों की समझ में नहीं आया था कि आक्रमण कौन कर रहा है! लोग सिर्फ इतना जान सके कि आक्रमण होनेवाला है और नगर इस समय संकट में है। उन्होंने चारों ओर वैशाली के सैनिकों को घूमते हुए देखा। हाट-बाट, गली-मार्ग, कोट-कंगूरे, खाई-परकोटे सर्वत्र सैनिक खड़े या चलते-फिरते दिखाई देते थे। सभी प्रमुख द्वारों पर सशस्त्र लिच्छवी भट खड़े हो गए थे! लोगों को विश्वास हो गया कि नगर पर आक्रमण होनेवाला है। सभी चिन्तित हो उठे।

डिंडिमिका-घोषणा का लोगों पर अपेक्षित परिणाम हुआ था। वैशाली और पाटलीपुत्र एक हो गए हैं, इस घोषणा ने दोनो नगरों के परम्परागत वैर को बहुत-कुछ कम कर दिया था।

सवेरा होते ही कुमारदेवी अपने श्वेत उत्तुंग अश्व पर आरूढ़ होकर सुगंगप्रासाद से नगर में घूमने के लिए निकली।

उसके पीछे कुछ दूर पर सशस्त्र यवनियाँ चल रही थीं। यवनियों के पीछे पंक्तिबद्ध लिच्छवी सैनिक आठों आयुध धारण किये चले आते थे। पाटलीपुत्र ने ऐसा दृश्य इधर वर्षों से नहीं देखा था। जिसने भी देखा वह संभ्रमपूर्वक देखता ही रह गया। प्रायः सभी को हर्ष हुआ। सामान्यजन, राजकर्मचारी, मागध सेना के सेनानी, सभी बिना कहे ही उनका अनुसरण करने लगे। सबके मुँह पर यही बात थी कि यदि पाटलीपुत्र को कोई बचा सकता है तो वह यही देवी है; वैशाली ने आज हमारी बाँह थामी है, हमारी रक्षा के लिए

लिच्छवी मैदान में उतर आये हैं; इसे कहते हैं पड़ोसी-धर्म। इस प्रकार वर्षों से चले आते परम्परागत वैर की जड़ें हिलती गईं और वह उन्मूलित होता गया!

लोगों की उमंग, उत्साह और सद्भावना धीरे-धीरे जयघोष का रूप धारण करती गई और जनसमुदाय स्वतः ही पुकारने लगा : 'पाटलीपुत्र की राजरानी भगवती कुमारदेवी की जय हो! मगध सम्राज्ञी का उत्कर्ष हो! नगरी की महाशक्ति, अधिष्ठात्री देवी और रक्षिका भगवती कुमारदेवी की जय हो!'

इस जय-जयकार ने मगध के सैनिकों को भी संक्रमित किया। वे भी जोश में आकर जयकारे लगाने लगे।

और जब लोगों को पता चला कि मंत्रीश्वर और सेनापति इस संकट की घड़ी में नगर को छोड़कर भाग गए हैं तब तो उनके रोष का पार न रहा। शिशु युवराज भी नगर में नहीं है, इस जानकारी ने लोगों को निराश कर दिया। अब उन्हें विश्वास हो गया कि अकेली कुमारदेवी ही नगर की रक्षा कर सकती है।

परिषद् में लगभग सारा नगर उपस्थित था। सुन्दर वर्मा के सभी राजकर्मचारी वहाँ आये थे। नगर का श्रेष्ठी सम्प्रदाय था, सार्थवाहपति थे, प्रथम कुलिक थे, कुंजरक की सेना के सेनापति और नायक भी थे। सामान्य नगरजन तो आये ही थे।

परिषद् में इतनी विशाल उपस्थिति आज वर्षों बाद पहली बार दिखाई देती थी। यह उपस्थिति लोगों में एकता और उत्साह को प्रेरित करनेवाली थी। मन में डर के रहते हुए भी लोग आक्रमण का प्रतिरोध करने की बातें करने लगे थे। अकेले कुमारदेवी के व्यक्तित्व ने सबको अनुप्राणित कर दिया था।

जब परिषद् में सब सभासद आ गए तो महामंत्री हरिषेण विज्ञापना करने के लिए खड़ा हुआ। उसका गौर कान्तिवाला तेजस्वी मुखमण्डल लोगों के हृदय में समा गया। सब को वह अपना आप्तजन प्रतीत हुआ। कई मंत्रगुप्त के साथ उसकी तुलना करने में रत हो गए। सब को विश्वास हो गया कि मगध में परिवर्तन हो गया है, यद्यपि यह कोई नहीं जानता था कि राजा कौन

है और मंत्री कौन है। शायद कोई जानना चाहता भी नहीं था। हाँ, सब इस बात को अवश्य जान चुके थे कि कुमारदेवी हमारी रक्षा करेगी और हमें बचा लेगी।

मंत्री हरिषेण उद्घोषक के स्थान पर आया और उसने अपने घन गहन स्वर में निर्णयात्मक शब्दों में कहना आरम्भ किया : 'पाटलीपुत्र के नागरिको....'

उसके बोलना आरम्भ करते ही चारों ओर इतनी शान्ति छा गई कि यदि सुई भी गिरती तो उसकी आवाज सुनाई दे जाती।

उसने कहा—पाटलीपुत्र के नागरिको, आप ध्यान देकर मेरी बात सुनें। प्रश्न हमारे जीवन-मरण का है, देश पर आनेवाली भयंकर विपत्ति का है। ऐसे समय यदि हम एक नहीं हुए, विभक्त बने रहे तो हमारा विनाश निश्चित है।

'हम पर आक्रमण होनेवाला है, यों समझिए कि हो ही गया है....'

'कौन है हम पर आक्रमण करनेवाला ?'

'कौन है पाटलीपुत्र के वज्रदुर्ग से टकरानेवाला ?'

'कौन है यह आक्रान्ता ? पाटलीपुत्र को देश की भूख नहीं, लेकिन हम किसी को भूख के लिए सिर कटानेवाले भी नहीं। बताओ, कौन है आक्रमण करनेवाला ?'

चारों ओर से प्रश्न पूछे जाने लगे।

'नागरिको, आक्रमण होता तो है एक ही दिशा से, लेकिन निर्बल नगरी को लूटनेवाले दौड़े आते हैं हजार दिशाओं से। कुशानों के आने की आशंका है, गान्धारों के आने का भय है। पार्शव शासानुशास भी ताक लगाये बैठा है। तक्षशिला की ओर से भी अवश्य कोई लपका चला आयेगा। मथुरा के यादव भी आ सकते हैं। नागराज अपनी गृद्ध-दृष्टि लगाये बैठे ही हैं। गणपतिनाग की महत्त्वाकांक्षा भी कम नहीं। कांचनका का प्रवरसेन तो अपने को भारतवर्ष का चक्रवर्ती ही माने बैठा है; लेकिन वह जानता है कि मगधपति बने बिना कोई भारत का चक्रवर्ती नहीं बन सकता, इसलिए वह भी यहाँ आना चाहता है। सब पाटलीपुत्र पर चढ़ना चाहते हैं। आप पूछेंगे क्यों ?

इसलिए कि भारत में यही एक ऐसा नगर है जिसका नाम देश-विदेश में भारत के चक्रवर्ती सम्राट् के नाम के साथ जुड़ता आया है। आज ही हमें एक सन्देश प्राप्त हुआ है....'

'किसका सन्देश है? कैसा सन्देश है? कौन सन्देश लाया है?'

'सब अभी आपको विदित हो जायेगा। प्रवीर प्रवरसेन के सेनापति ग्राम-बल स्वयं सन्देश लेकर आये हैं। सन्देश भेजा है महाराज प्रवरसेन ने। आप उनके सन्देश को सुनें। या तो आप उन्हें प्रत्युत्तर दें पाटलीपुत्र की ओर से, नहीं तो हम देंगे वैशाली की ओर से। वास्तविक उत्तर तो यह होगा कि दोनो नगर मिलकर संयुक्त रूप से जवाब दें। सब से अच्छा जवाब वही होगा। सेनापति ग्रामबल अपना सन्देश सुनाने के लिए आगे आयें।'

यह कहकर हरिषेण कुछ पीछे हट गया।

सेनापति ग्रामबल आगे आया। वह कुछ नाटे कद का बड़ा ही चपल और तेजस्वी पुरुष था। उसकी चपलता और तेजस्विता के आगे जैसे उसका नाटापन छिप-सा जाता था। उसके नेत्रों मे हीरे की चमक थी। शरीर गठा हुआ था। लगता था जैसे कुश्ती लड़नेवाला कोई मल्ल खड़ा हो। अपनी लम्बी कृपाण को, जो उसकी कमर में बँधी थी, सँभलता हुआ वह आगे बढ़ा। उसका स्वर गहरा, मोटा और दृढ़ था।

उसने कहा—पाटलीपुत्र के नागरिको, आपके शिशु राजकुमार हमारे यहाँ आये हुए हैं। उन्हें आप अपने यहाँ आदरपूर्वक बुला लें, इसी लिए मैं यहाँ आया हूँ। वह शिशु हैं। हमारे महाराज प्रवरसेन आपके दिवंगत महाराज मगधपति सुन्दर वर्मा के मित्र हैं। महाराज प्रवरसेन अपने देश का विस्तार करना नहीं चाहते। उनका नाम प्रत्येक भारतवासी के हृदय में अंकित है। वह मैत्री चाहते हैं, मैत्री को निबाहना चाहते हैं, यही उनका चक्रवर्तीत्व है। उन्हें मगध के शिशु युवराज के नाम पर आप मगध का रक्षक स्वीकार करें, जिसमें वह युवराज की शिशु अवस्था में रक्षा करने के लिए यहाँ आकर रह सकें। इस प्रकार आप अपने दिवंगत महाराज मगधपति के प्रति सम्मान प्रदर्शित कर सकते हैं। इसी लिए मैं यहाँ आया हूँ। यदि आपका उत्तर "हाँ" में हुआ तो महाराज प्रवरसेन यहाँ आयेंगे, "न" में हुआ तो....

'निषेधात्मक ही हुआ, तो ?' लोगों ने रोषपूर्वक पूछा।

ग्रामबल हँस दिया, मानो कोई सबल निर्बल के रोष पर हँस दे। फिर वह बोला—नागरिको, आप उत्तेजित न हों, रोष भी न करें। यदि आपका उत्तर निषेधात्मक हुआ तो मैं आऊँगा शिशु राजकुमार को लेकर और मेरे साथ राजकुमार के रक्षणार्थ वाकाटकराज की शक्तिशाली सेना भी होगी। कांचनका यहाँ से बहुत दूर है, हर समय रक्षणार्थ दौड़कर आया नहीं जा सकता, इसलिए मुझे आपका राजकीय अतिथि बनकर रहना होगा। शिशु राजकुमार को अकेलापन अखरे नहीं और उन्हें समवयस्क का सौख्य प्राप्त हो सके इसलिए वाकाटकराज के पौत्र कुमार रुद्रसेन भी हमारे साथ यहीं रहेंगे....मैं अभी यहाँ के हाल-चाल जानने के लिए अकेला आया हूँ। वैशाली नगरी पाटलीपुत्र के साथ है, यह जानकर परम सन्तोष हुआ। वैशाली की राजकुमारी के लिए भी मैं महाराज प्रवरसेन का एक विशिष्ट सन्देश लाया हूँ....

'क्या है वह सन्देश ? कह ही डालो उसे, जिसमें तुम्हें सब प्रत्युत्तर एक साथ दिये जा सकें।' लोगों का स्वर सुनाई दिया। ग्रामबल ने देखा कि मगधपति तो मारा गया है; और वैशाली की कुमारी का वर्चस्व स्थापित हो गया है।

उसने कहा—उनके लिए सन्देश बिलकुल ही संक्षिप्त है : मगधपति का वध करनेवाला विश्वासघाती चन्द्रगुप्त यहाँ है। वैशाली उसका साथ तत्काल छोड़ दे। उसे हमें सौंप दे अथवा निर्वासित कर दे। नीति के अनुसार विश्वासघाती किसी भी शासकीय पद पर रह नहीं सकता। और हमारे अत्यन्त आदरणीय महान और वृद्ध मित्र महाराज धाराधीश गणपतिनाग भी यहीं हैं।

'यहाँ हैं ? यहाँ कहाँ ? यहाँ तो हैं नहीं !'

'उन्हें रोककर रखा गया है वैशाली में। उन्हें तत्काल मुक्त किया जाये। यह कथन है स्वयं महाराज प्रवरसेन का, जिसे वह मेरे द्वारा विज्ञापित करते हैं। मैं इसी लिए यहाँ आया हूँ। अभी मैं ही आया हूँ। महाराज को स्वयं आना पड़ा तो फिर आप लोगों के लिए बहुत देर हो जायेगी। महाराज

प्रवरसेन के विरुद को कौन नहीं जानता ? उन्होंने कुशानों को यहाँ से निकाल बहार किया। शक, यवन आदि सभी विदेशियों को मार भगाया। भारत-चक्रवर्ती का पद उन्हें यहाँ से प्राप्त नहीं हुआ; वह उन्हें प्राप्त हुआ है विदेशी आक्रान्ताओं को विनष्ट करनेवाली रणकीर्ति से। जिन्होंने भी उनकी सेना को देखा बिनकहे ही भारतचक्रवर्ती के उनके विरुद को स्वीकार कर लिया। इस विरुद को बनाये रखने के लिए हमें तुम्हारे मगध की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, तुम्हें मगधराज की रक्षा के लिए हमारी और महाराज के प्रताप की अवश्य आवश्यकता है। इस दायित्व को वहन करने के लिए हम सहर्ष प्रस्तुत हैं। यदि हमने इस भार को वहन नहीं किया तो तुम्हारा पाटलीपुत्र नष्ट हो जायेगा, विदेशियों के आक्रमण यहाँ पुनः होने लगेंगे, देश तबाह हो जायेगा। जनता त्राहि-त्राहि कर उठेगी। स्थिति यह है, इसलिए तुम चाहो या न चाहो हमें यहाँ आना ही होगा। अब वैशाली की राजकुमारी अपना प्रत्युत्तर दें; लेकिन सबसे पहले महाराज गणपतिनाग को मुक्त किया जाये....'

ग्रामबल मानो अपनी सैनिक शक्ति के बल पर, सारी परिषद् पर छा गया हो, इस प्रकार निर्भयतापूर्वक बोलता रहा। अपना वक्तव्य समाप्त करके वह चुप हो गया और गर्व-भरी निःशंक दृष्टि से परिषद् के सदस्यों की ओर देखता खड़ा रहा।

उसे प्रत्युत्तर देना था। लेकिन वह सामान्य प्रत्युत्तर नहीं था। प्रत्युत्तर था लम्बा, भयंकर और विकट युद्ध। ऐसा प्रत्युत्तर केवल कुमारदेवी ही दे सकती थी। और किसी में ऐसी सामर्थ्य नहीं थी। सारी परिषद्—समस्त राज-कर्मचारी, श्रेष्ठी, सार्थवाहपति और निगम—सभी कुमारदेवी की ओर देखने लगे। सब यह जानने के लिए उत्सुक हो उठे कि देखें कुमारदेवी अब क्या प्रत्युत्तर देती है।

२६. कुमारदेवी का प्रवरसेन को प्रत्युत्तर

कुमारदेवी का प्रत्युत्तर सुनने के लिए परिषद् के सभी सदस्य और जनसमूह सावधान होकर बैठ गए। सब को यही लग रहा था कि कुमारदेवी का उत्तर स्वयं उनका अपना उत्तर होगा।

ग्रामबल का वक्तव्य बिलकुल स्पष्ट था। यदि शिशु राजकुमार को मगधपति नहीं बनाया गया तो महाराज प्रवीर प्रवरसेन पाटलीपुत्र पर आक्रमण करेंगे। उसके इस कथन में किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश नहीं थी।

सब यह भी समझ गए थे कि आक्रमण होगा, युद्ध छिड़ेगा और भयंकर रक्तपात होगा। यदि यही संवाद कुछ समय पहले मिला होता, तो लोग मारे भय के स्तम्भित हो जाते। परन्तु इस समय स्थिति बदल गई थी। लोगों को यह संवाद घोर रूप से अपमानजनक लग रहा था। वे उत्तेजित भी हो उठे थे।

स्थिति को बदलने का सारा श्रेय कुमारदेवी को था। वह लोगों के हृदयों पर बैठी राज्य कर रही थी। वह वहाँ थी, इसलिए लोग-बाग अपनी उत्तेजना के बावजूद चुप बैठे रहे। न होती तो ग्रामबल को प्रत्युत्तर दे भी दिया जाता। उससे शायद कहा जाता कि मगधपति नहीं है तो क्या हुआ, जो पाटलीपुत्र का रक्षक है, वही मगधपति है। यदि तुम रक्षा करने को तैयार हो तो हम तुम्हीं को मगधपति मान लेते हैं। हमें आम खाने से काम है, पेड़ गिनना हमारा प्रयोजन नहीं। ऐसा ही दुर्बलजनोचित उत्तर उसे दिया जाता और वह मूछों पर ताव देता लौट भी जाता।

लेकिन कुमारदेवी ने सारा वातावरण बदल डाला था। उसने पाटलीपुत्र और वैशाली को एक कर दिया था। उसने लोगों के मन में यह भाव जागृत कर दिया था कि वैशाली और पाटलीपुत्र समस्त भारत के केन्द्रीय नगर हैं। उसने लोगों के मन में सोये सुप्त आत्मगौरव को पुनः जगा दिया था; वैशाली की शक्तिशाली सेना में मगधवासियों के विश्वास को उसने जाग्रत किया था।

सब उसका प्रत्युत्तर सुनने के लिए उत्सुक थे।

कुमारदेवी आगे आई। उसकी तेजोपूर्ण मुखमुद्रा को देखकर, जिनके मन ढुलमुल हो रहे थे, वे भी दृढ़ हो गए। चारों ओर गाढ़ निःस्तब्धता छा गई। लोगों का उत्साह और आत्मविश्वास उनके नेत्रों में जगमगाने लगा।

उद्घोषक के स्थान पर आकर यह खड़ी हो गई। उसने सारी सभा पर एक दृष्टि डाली—आरम्भ की पंक्ति से लेकर अन्तिम छोर तक उसकी दृष्टि घूम गई। उस दृष्टि ने क्षण-भर में वहाँ उपस्थित लोगों का और परिस्थिति की गम्भीरता का मूल्यांकन कर लिया। उसकी उत्तुंग, विद्युल्लहरी-जैसी देह-लता अनोखी शोभा को धारण किये क्षण-भर खड़ी रही। फिर उसने अपनी शान्त और गरिमामयी वाणी में कहना आरम्भ किया :

'मगध परिषद् के सदस्यजन, आप मेरे वक्तव्य को ध्यानपूर्वक सुनें। आपको एक ऐसा निश्चयात्मक प्रत्युत्तर देना है जिसे सुनकर महाराज प्रवीर प्रवरसेन के सेनापति ग्रामबल को यह विश्वास हो जाये कि वह पाटलीपुत्र नगर के परम्परागत गौरव के अनुरूप है। आप किसी ऐसे-वैसे राज्य के नागरिक नहीं। भारतव्यापी साम्राज्य का अभ्युदय यहीं से हुआ था। आज भी इस नगर की कीर्ति दिगन्तव्यापी है। देश-विदेश में इस शहर का नाम और आदर-मान है। विदेशों में इस पाटलीपुत्र को ही भारत माना जाता है। सारा भारत इसे अपना केन्द्र मानता है। आज भी इस नगर की महत्त्वाकांक्षा यही है। इसी नगर में भगवान कौटिल्य, महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य और देवानां-प्रिय अशोक-जैसे नररत्न हो गए। यहीं से सेनापति पुष्यमित्र ने देश का नवनिर्माण किया था। आज भी सभी यही मानते हैं कि पाटलीपुत्र ही भारत-वर्ष है। जब तक कोई राजा यहाँ का अधिपति नहीं बन जाता वह स्वयं को भारत का चक्रवर्ती मनवा नहीं सकता, लोग उसे स्वीकार ही नहीं करेंगे। इसलिए विभिन्न राजा लोग इस नगर पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए आज भी प्रयत्नशील हैं। यह नगर नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष है। आप ऐसी नगरी के नागरिक हैं। और यह हमारा परम सौभाग्य है कि हम आपके पड़ोसी हैं, आपसे केवल एक हाथ-भर के अन्तर पर बैठे हुए हैं।

'नगरजनो, आज भले ही आप में आत्मविश्वास की कमी हो, परन्तु इस

नगर के दुर्ग का निर्माता सामान्य कोटि का पुरुष नहीं था। इस दुर्ग की रचना की है स्वयं भगवान कौटिल्य ने। उन्होंने दुर्ग के एक-एक पत्थर में प्राण की प्रतिष्ठा की और उसे इतना दृढ़ बना दिया कि आक्रमण करनेवाले का पूरा जीवन समाप्त हो जाये, परन्तु वह यहाँ की किसी भी ईंट को खिसका न सके!

'इस दुर्ग की दृढ़ता से आकर्षित होकर ही आज प्रवीर प्रवरसेन-जैसे राजा शिशु राजकुमार के रक्षक बनकर यहाँ आना चाहते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या वैशाली और पाटलीपुत्र में आत्मीयता नहीं, एकता नहीं कि ठेठ कांचनका से महाराज प्रवीरसेन को अपनी सेना लेकर यहाँ आना पड़े? क्या पाटलीपुत्र का दुर्ग इतना शक्तिहीन हो गया है कि उसे अपने शिशु राजकुमार की रक्षा के लिए बाहरवालों का मुँह ताकना पड़े?

'यथार्थ बात यह है कि आपके मंत्रीश्वर ने प्रवंचना की है। आपके सेनापति ने मगध के साथ विश्वासघात किया है। हम शिशु राजकुमार की रक्षा के लिए प्रस्तुत थे, लेकिन वे लोग उन्हें यहाँ से भगा ले गए। वे भगा ले गए हैं तो अब सारी परिस्थिति ही बदल गई। सब कान खोलकर सुन लें कि उन तीनों भगोड़ों के लिए अब यहाँ कोई स्थान नहीं। यह हम लिच्छवियों का दृढ़ निश्चय है।

'यहाँ से पलायन करने का उनका हेतु बिलकुल स्पष्ट है। वे हैं निर्बल और कायर, परन्तु दिखावा करना चाहते हैं वीरता और सबलता का। अपने इस झूठे दावे को वे महाराज प्रवरसेन की सेना के सहारे सत्य प्रमाणित करना चाहते हैं। यह मगध की दुर्बलता नहीं, मगध की आत्महत्या ही होगी। इसके बाद मगध रह ही कहाँ जायेगा? न रहेगा मगध और न रहने पायेगा पाटलीपुत्र। मगधपति भी नहीं रह जायेगा। भारतवर्ष में मगधपति का जो गौरवपूर्ण स्थान था वह भी समाप्त हो जायेगा। आज जैसे साकेत, मथुरा, विदर्भ, मालव, कामरूप और बंग आदि प्रदेश हैं वैसा ही एक सामान्य प्रदेश यह मगध भी होगा। लोगों की दृष्टि में यह एक साधारण और क्षुद्र प्रदेश ही रह जायेगा।

'नागरिको, प्रश्न यह है कि आप क्या चाहते हैं? मगध का पतन चाहते

हैं या अपने प्राण देकर भी मगध के गौरव की रक्षा करना चाहते हैं ? सबसे पहले आपको इस बात का निर्णय करना होगा। मगधपति की बात उसके बाद आती है। शिशु राजकुमार की बात भी उसके बाद आती है। आपको स्पष्ट और निर्णयात्मक उत्तर देना होगा। लेकिन यह भी समझ लीजिए कि आपके प्रत्युत्तर के पीछे एक भयंकर, विकट और रक्तरंजित युद्ध खड़ा है। आप जो भी उत्तर दें इस सत्य को समझकर ही दें।

'वैशाली तो इस प्रकार के युद्ध के लिए तैयार है। आप हैं या नहीं, यह आपको कहना है। मैं यहाँ ऐसे युद्ध के ही लिए आई हूँ। लेकिन आप सब की सहमति के बिना, आप सब के समर्थन के बिना इतना बड़ा युद्ध केवल सैनिक बल के भरोसे कभी लड़ा नहीं जा सकता। इसलिए तैयारी तो आप की भी होनी ही चाहिए।

'प्रत्युत्तर आपको देना है। अपनी शक्ति को समझकर, अपने बल को तौलकर आप उत्तर दें। यहाँ इस समय कोई मगधपति नहीं है। इस तथ्य को हृदयंगम करके आपको उत्तर देना चाहिए। उत्तर ऐसा हो जिसे सेनापति ग्रामबल अच्छी तरह समझ सकें।

'उत्तर आप देंगे, मैं नहीं। मैंने तो वैशाली की ओर से बहुत पहले ही उत्तर दे दिया है। मेरा उत्तर यह है कि वैशाली चाहे नष्ट हो जाये, चाहे उसकी ईंट-से-ईंट बज जाये, लेकिन वह किसी के आगे झुकेगी नहीं। झुकानेवाला कोई भी क्यों न हो, चाहे महाराज प्रवरसेन स्वयं आ जायें, चाहे गणपतिनाग आयें, चाहे अहिछत्र आये, चाहे मथुरा के यादव आयें और चाहे पार्शव शासानुशास ही चला आये, वैशाली कभी किसी के आगे झुकेगी नहीं।

'मगध परिषद् के सदस्यगण, आप मेरी इस बात को अच्छी तरह समझ लीजिए—जो झुकता है वह जीवनपर्यन्त झुकता ही चला जाता है और अन्त में नष्ट हो जाता है। वैशाली कभी नहीं झुकेगी।'

इतना कहकर कुमारदेवी चुप हो गई और वहाँ उपस्थित जन-समुदाय की ओर देखने लगी।

उसकी उस दृष्टि में बिजली भरी थी। उसकी उस बिजली से संक्रमित

होकर वहाँ उपस्थित सब लोग उच्च स्वर में घोषणा कर उठे :

'पाटलीपुत्र-वैशाली की जय हो ! दोनों नगरों की अधिष्ठात्री देवी भगवती कुमारदेवी की जय हो !

'पाटलीपुत्र का नगर भी कभी झुका नहीं, कभी झुकेगा नहीं; झुकाने की ओर ले जानेवाले इसके शत्रु हैं। यहाँ अभी कोई मगधपति नहीं। मगध की अधिष्ठात्री देवी हैं भगवती कुमारदेवी। कुमारदेवी की जय हो !'

जन-समुदाय की इस घोषणा से प्रेरित होकर परिषद् के सदस्यों ने भी घोषणा की :

'भगवती कुमारदेवी की जय हो ! नगर की अधिष्ठात्री देवी की जय हो ! मगध कभी झुका नहीं और झुकेगा भी नहीं। झुकाने की ओर ले जानेवाले इसके शत्रु हैं। यहाँ इस समय कोई मगधपति नहीं। मगध क अधिष्ठात्री देवी हैं कुमारदेवी ! भगवती कुमारदेवी की जय हो !'

इस घोषणा की प्रतिध्वनि दूर-दूर तक गूँजती सुनाई दी। आकाश में गूँजती हुई इस ध्वनि ने मगध के मैदानों और पहाड़ों को निनादित कर दिया। देर तक घोषणा होती रही।

थोड़ी देर के बाद जब शान्ति स्थापित हुई तो ग्रामबल आगे आया और बोला :

'नगरजनो ! मगध में राजहत्या हुई है। विश्वासघात किया गया है। इस राज-हत्या और विश्वासघात का प्रतिशोध लेने के लिए महाराज प्रवीर प्रवरसेन आयेंगे। जब वह आयेंगे तो उनकी शक्तिशाली सेना को घोषणाओं, प्रतिध्वनियों और हो-हल्ले से रोका नहीं जा सकेगा। गर्जन-तर्जन से सैनिक-शूरमा रुकते नहीं हैं। यह नगर भस्मीभूत हो जायेगा, इसकी ईंट-से-ईंट बज जायेगी। इसलिए जो कहना हो, खूब अच्छी तरह सोच-समझकर....'

'जो प्राणों को हथेलियों पर लिये हों उन्हें ईंट-से-ईंट बजने का कोई भय नहीं होता सेनापति !' मगध का महाबलाधिकृत लोगों के जोश से उत्साहित होकर खड़ा हो गया था। वह अपने स्थान से आगे बढ़ आया और बोला, 'हम महाराज प्रवरसेन का यथोचित स्वागत करने के लिए प्रस्तुत हैं। यहाँ मगध की सेना है, साकेत की सेना है, वैशाली की सेना है।'

'संख्या संख्या है सेनापति धनुर्धर, और शक्ति शक्ति !'

'जब तक परीक्षा नहीं हो जाती बहुत-सी अशक्तियाँ शक्ति ही बनी बैठी रहती हैं, सेनापति ग्रामबल !'

कुमारदेवी के इस मुँहतोड़ जवाब ने सेनापति ग्रामबल को निरुत्तर कर दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने कहा—अब आपको उत्तर देना है महादेवी ! क्या यह सच है कि पद्मावती के गणपतिनाग महाराज यहीं हैं ?

'हाँ !' कुमारदेवी का उत्तर एकदम संक्षिप्त था।

'कहाँ हैं ? यहाँ ?'

'नहीं, वैशाली में !'

'क्या यह सच है कि आपने उन्हें बन्दी बनाया ?'

'न हमने बन्दी बनाया, न बन्दीगृह में रखा।' कुमारदेवी का स्वर लोहे की खनक की तरह गूँज गया, 'वह स्वयं बन्दी बनने के लिए चले आये।'

'स्वयं चले आये ? भला कौन मानेगा कि कोई स्वयं होकर आपके यहाँ बन्दी बनने के लिए चला आया ? और आनेवाला दूसरा कोई नहीं पद्मावती का महान योद्धा गणपतिनाग था ! वह गणपतिनाग जिसे विद्वान विद्वान कहते हैं, कवि कवि और योद्धा वीरश्रेष्ठ। जो स्वर्णबिन्दु शिव का प्यारा है, जिसके माथे पर शेषनाग का छत्र है, जिससे मिलकर राजाओं को श्रेष्ठ नृपति से मिलने का सुख प्राप्त होता है। वह गणपतिनाग महाराज स्वयं होकर आपके यहाँ बन्दी बनने के लिए चले आये ? आपने कभी पद्मावती के गगनभेदी प्रासादों के स्वर्ण-शिखरों को देखा भी है, उन स्वर्ण-शिखरों को जिनके सामने आपकी वैशली के स्वर्ण-शिखर निरे ताँबे के प्रतीत होंगे; या बिना कुछ देखे-भाले ही नागराज का नाम ले दिया ?'

'न देखा है तो अब देख लेंगे सेनापति ग्रामबल ! बाकी जो स्वयं होकर हमें यह कहने आये कि तुम महाराज प्रवरसेन को वैशाली और पाटलीपुत्र तथा सब-कुछ सौंप दो, क्योंकि भारत के चक्रवर्ती सम्राट वही हैं, तो हम उसे उन्मत्त के सिवा और क्या समझें ! हमने उन्हें उन्माद रोग से ग्रस्त समझा और मनोरोगी के रूप में रोककर रख लिया। न बन्दी बनाया, न बन्दीगृह में डाला। उन्माद ठीक होने तक ही हम उन्हें रोककर रखनेवाले थे। वैद्यों का कहना

है कि अब वह ठीक हो गए। आप चाहें तो उन्हें अपने साथ ले जा सकते हैं। जब हम उन्हें बन्दी बनाना चाहेंगे तो अपने साथ मगध, वैशाली और साकेत की संयुक्त सेना लेकर आयेंगे। हम किसी को इस तरह बन्दी नहीं बनाया करते! महाराज प्रवरसेन से आप इतना अवश्य कह दें कि वह प्रवीर हैं, लोगों ने उन्हें प्रवीर माना है, उनका यह विरुद तभी तक है जब तक वह वैशाली पर आक्रमण नहीं करते, पाटलीपुत्र की ओर रुख नहीं करते। आपने यह तो सुन ही लिया होगा कि यहाँ इस समय कोई मगधपति नहीं है....अच्छा, महाराज गणपतिनाग को बुलाने के लिए कोई इसी समय जाये। तिलभट्टक तुम्हीं....'

कुमारदेवी ने तिलभट्टक की ओर देखा।

'तिलभट्टक, जाओ और महाराज गणपतिनाग को यहाँ ससम्मान ले आओ। जो उत्तर ग्रामबल सेनापति को दिया गया है उसे वह भी सुन लें....

'यहाँ कोई मगधपति नहीं। पाटलीपुत्र और वैशाली एक हो गए हैं। भारत के चक्रवर्ती साम्राज्य का ये केन्द्र हैं। गणपतिनाग भी इस तथ्य को हृदयंगम कर लें।

'अब दोनो को यहाँ से साथ ही जाना है, इसलिए मार्ग में चर्चा का यह विषय उनके आनन्द का कारण होगा और रास्ता भी आसानी से कट जायेगा....'

२७. मैं स्वयं भी नहीं जानती !

तिलभट्टक वैशाली जाने के लिए तैयार हुआ। मगधपति की राजकीय नौका को उसने गंगा के किनारे तैयार रखने का आदेश भी दे दिया। परन्तु मन में उसके घोर द्वन्द्व मचा हुआ था। गणपतिनाग को वह यहाँ ले तो आयेगा, लेकिन उसके बाद क्या होगा? परम विक्रमशाली गणपतिनाग सामान्य व्यक्ति नहीं था कि वैशाली उसे चुनौती देकर पराजित कर देती और वह सरलता से पराजित हो जाता! उसकी समझ में, इस समय यह एक दुस्साहस

ही था। माना कि पाटलीपुत्र और वैशाली एक हो गए, दोनों शक्तिशाली भी हैं, परन्तु प्रवीर प्रवरसेन और नागराज गणपतिनाग-जैसे अनुभवी, भारत-प्रसिद्ध वीरवरों को पराजित करना हँसी-खेल तो था नहीं। कहीं यह आत्म-विनाश ही न बन जाये! कुमारदेवी जिस नवनिर्माण की बात करती हैं कहीं वह विनष्ट न हो जाये! माना कि नई परिस्थिति में चन्द्रगुप्त वैशाली का साथ देगा, परन्तु अकेले उसके साथ देने से क्या होगा? इतने जल्दी एक साथ दो-दो वीरों को चुनौती देना उसे सही नहीं लग रहा था। इसलिए वैशाली जाने से पहले वह हरिषेण से मिलने गया और उसे उसने अपने मन के सारे सन्देह कह सुनाये।

हरिषेण ने उसके सन्देहों का निवारण नहीं किया। केवल इतना ही कहा—तिलभट्टक, जो तुम कहते हो वही मुझे भी लगता है। दुस्साहस और जल्दबाजी ही है। परन्तु कई बार कुमारदेवी की बातों का कार्य-कारण सम्बन्ध समझ में नहीं आता। मैंने बहुत सोचा, परन्तु किसी परिणाम पर नहीं पहुँच पाता। मुझे तो यही लगता है कि कुमारदेवी कभी सैनिक-शक्ति, भौतिक परिस्थिति और बुद्धि को प्रधानता देकर काम नहीं करतीं। वह जो भी करना होता है अपनी अन्तर्प्रेरणा के अनुसार करती हैं। यही कारण है कि वह इतना शीघ्र निर्णय कर डालती हैं और फिर भी उनका कोई निर्णय गलत नहीं होता। इसलिए मेरी तो यही सम्मति है कि देवी को उनकी अन्तर्प्रेरणा के अनुसार काम करने दो। यदि स्वयं उनसे पूछा जाये तो वह भी कोई कारण नहीं बता सकेंगी। जो उन्हें दीखता है वह हमें नहीं दिखाई देता। जहाँ वह सूर्य का आलोक देखती हैं वहाँ हम निरा अन्धकार देखते हैं। प्रवीर प्रवरसेन को चुनौती देना बच्चों का खेल नहीं, परन्तु उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के और पूर्ण आत्मविश्वास के साथ उसे चुनौती दे दी। न दें तो करें भी क्या? लगता है कि मंत्रगुप्त भी वहाँ पहुँच गया है।

परन्तु तिलभट्टक की शंकाओं का समाधान नहीं हुआ। उसने हाथ जोड़-कर कहा—महामंत्री, कुमारदेवी की महत्त्वाकांक्षाओं को आपने ही जगाया है। भारत के चक्रवर्ती साम्राज्य का महान स्वप्न आपने ही उन्हें दिया है। हर क्षण आप ही उन्हें अनुप्राणित करते रहते हैं। लेकिन यह मार्ग कितना

कंटकाकीर्ण है सो भी आपसे छिपा नहीं है। मगधपति का आज कोई गौरव ही नहीं रह गया। पुष्यमित्र के बाद, वर्षों बीत गए, कोई ऐसा नहीं हुआ जो मगध की सेना को दिग्विजय के लिए पाटलीपुत्र के किले से बाहर ले जाता। मगध की सेना में न रही है शक्ति और न रही है व्यवस्था। अनुशासन नाम को भी नहीं है। ऐसी सेना को प्रवरसेन के मुकाबले खड़ाकर क्या हम विजयी हो सकेंगे? मेरे विचार में तो अभी हमें ऐसा कोई भी दुस्साहसपूर्ण कदम उठाना नहीं चाहिए। वैशाली और पाटलीपुत्र को हमने एक किया, इस एकता को अधिक दृढ़ बनाना चाहिए, कुछ समय लेना चाहिए और उसके बाद ही किसी को चुनौती दी जा सकती है। सही राजनीति यह होगी कि मंत्रगुप्त, राजकुमार और सेनापति को यहाँ आने के लिए कहा जाये। युद्ध का नहीं, चर्चा का मार्ग अपनाना ठीक होगा। जल्दबाजी में कुछ करने का समय यह नहीं है। कहीं पराजित हो गए तो हमारा सर्वनाश ही हो जायेगा। आपको कुमारदेवी को रोकना चाहिए। मेरे कहने का यह अर्थ कदापि न लगाया जाये कि देवी में मेरी श्रद्धा नहीं। श्रद्धा तो अपार है; परन्तु ऐसा लग रहा है कि अभी जो किया जा रहा है वह अनुचित है, दुस्साहसपूर्ण है, जल्दबाजी है! हम वैशाली और पाटलीपुत्र को एक करना चाहते थे, वह हमने किया। हम मगधपति को पद-भ्रष्ट करना चाहते थे, वह भी हुआ। इन सफलताओं से हमें बौरा नहीं जाना चाहिए। रुककर थोड़ा आत्मचिन्तन कर लेना चाहिए। अपने बलाबल का आकलन कर लेना इस समय हमारे लिए नितान्त आवश्यक हो गया है! वैसे मैं गणपतिनाग को लेने जा तो रहा हूँ; उचित आदर-मान से उन्हें यहाँ ले भी आऊँगा। परन्तु क्या हमारा उन्हें चुनौती देना ठीक होगा? और वह भी इस समय? क्या नागवंश के सब राजा हम पर चढ़ नहीं दौड़ेंगे? क्या हम चारों ओर शत्रु से घिर नहीं जायेंगे? वैशाली राजकुमार की रक्षा करे और प्रवरसेन भी भले ही उनके संरक्षक हों, क्या कोई ऐसा बीच का मार्ग नहीं? चन्द्रगुप्त को हमने अपनी महत्त्वाकांक्षाओं से अनुप्राणित अवश्य किया है, लेकिन लोग अभी उसका साथ नहीं देंगे। इस दृष्टि से भी हमें कुछ समय प्रतीक्षा करनी चाहिए। मंत्रीश्वर, मेरी तो यही मान्यता है; आपकी क्या है?

तिलभट्टक के इन तर्कों को सुनकर मंत्री हरिषेण भी सोच-विचार में पड़ गया। कई बार कुमारदेवी के त्वरित निर्णय उसकी समझ में नहीं आ पाते थे। लेकिन इस अन्तिम निर्णय को तो वह बिलकुल ही नहीं समझ पाया था। एक साथ दो राजाओं को युद्ध के लिए ललकारना असम्भव ही था। तिलभट्टक के तर्क उसे सारपूर्ण प्रतीत हुए। अभी वैशाली और पाटलीपुत्र की एकता स्थापित हुई ही थी। दोनो स्थानों की संयुक्त सेना का संचालन करनेवाला कोई वीर सेनापति दिखाई नहीं देता था, अभी चन्द्रगुप्त को मगधवालों ने स्वीकार नहीं किया था, स्वीकार किये जाने की केवल आशा ही आशा थी। अभी यह विश्वासपूर्वक कहा नहीं जा सकता था कि पाटलीपुत्र और वैशाली का परम्परागत वैर सर्वथा निर्मूल हो गया है! ऐसे समय एक साथ दो वीरवरों को युद्ध के लिए ललकार बैठना क्या समझदारी होगी? यदि कहीं पराजय हो गई तो फिर उठना असम्भव हो जायेगा। तब न होगी वैशाली, न होगा पाटलीपुत्र और न होगा भारत का चक्रवर्ती साम्राज्य! सच ही, यह तो आत्महत्या हो जायेगी!

'हमारा कर्त्तव्य है देव,' तिलभट्टक ने हाथ जोड़कर कहा, 'विनाश के मार्ग पर दौड़ी जाती कुमारदेवी को रोकना। जितना हमने प्राप्त किया अभी वही बहुत है। हम पाटलीपुत्र में आ बैठे हैं। अब हमें समय लेना चाहिए। गणपतिनाग के यहाँ पहुँचने से पहले ही इस बात का निपटारा हो जाना चाहिए। हमें नागराज को छेड़ना नहीं चाहिए। उन्हें आदरपूर्वक उनके राज्य में लौटा देना चाहिए। अभी हमें उनकी मैत्री की आवश्यकता है। दो दिशाओं से दो प्रबल शत्रुओं का चढ़कर आना अभी हमारे हित में नहीं, न हमारी इतनी शक्ति ही है। लेकिन जो कुछ करना हो अभी कीजिए। गणपतिनाग के आ जाने के बाद कुछ भी नहीं किया जा सकेगा। फिर समय ही कहाँ होगा?'

हरिषेण को तिलभट्टक की बात यथार्थ प्रतीत हुई। उसे विश्वास हो गया कि कुमारदेवी सच ही सर्वनाश के मार्ग पर दौड़ी जा रही है। उसे रोकना चाहिए।

दोनो कुमारदेवी से मिलने के लिए सुगंगप्रासाद में गये। वहाँ उन्होंने

देखा कि सारी व्यवस्था ही बदल गई है। नेतृत्व अब वैशाली का ही होगा, पाटलीपुत्र का नहीं—इसके चिह्न स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर हो रहे थे।

राजमुद्राएँ वैशाली की थीं। राजपताका वैशाली की थी। सिह पर आरूढ़ लक्ष्मी की मूर्तियाँ तैयार की जा रही थीं। कुमारदेवी ने पुराने सब प्रतीकों को हटा दिया था। सभी क्षेत्रों में नये प्रतीक स्थापित किये जा रहे थे! मगध में गरुड़ध्वज की स्थापना की जा रही थी।

नाग राजाओं के भगवान शंकर को विदा किया जा रहा था। पाटली-पुत्र में परमभागवत की स्थापना हो रही थी।

मगधपति भारतपति था। वह परमभागवत था। यह भूमिका तैयार की जा रही थी।

तिलभट्टक और हरिषेण मंत्रणाकक्ष में पहुँचे। कुमारदेवी उस समय वहाँ अकेली ही थी। एक कोने में कुछ शिल्पी मूर्तियों को अन्तिम रूप दे रहे थे। हरिषेण और तिलभट्टक को आता देख वे भी चले गए।

दोनो व्यक्ति कुमारदेवी के सामने बैठ गए। दोनो उसके स्वभाव से परिचित थे। वे जानते थे कि कुमारदेवी सहसा कुछ नहीं करती और एक बार जो निर्णय कर लेती है, फिर उससे हटती भी नहीं, चाहे वह निर्णय उसने सहसा ही क्यों न किया हो! बढ़े हुए पाँव लौटाने में उसका तनिक भी विश्वास नहीं था। परन्तु वे दोनो यह भी जानते थे कि त्वरित निर्णय ही उसकी शक्ति और उसके व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य है।

'देवी!' हरिषेण ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, 'तिलभट्टक मगधपति की स्वर्णखचित राजकीय नौका को लेकर गणपतिनाग को बुलाने जा रहे हैं। उन्हें उचित आदर-मान देकर एक मित्र के रूप में पद्मावती लौटाना चाहिए। उन्हें हमने रोका था, लेकिन उस समय पाटलीपुत्र और वैशाली युद्धरत थे और युद्ध-काल में हमारा वैसा कृत्य अनिवार्य था। बाकी वह वैशाली के मित्र हैं, पाटलीपुत्र के मित्र हैं और हमारे मित्र भी हैं—उनके यहाँ आने पर हमें उन पर यही छाप डालनी चाहिए। मंत्रगुप्त ने इस समय परिस्थिति को एक-दम बदल दिया है। वह प्रवरसेन को लेकर यहाँ अवश्य आयेगा। ऐसे

समय हमें गणपतिनाग से विगाड़ नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह अतुलित बलशाली है।'

'मंत्रीश्वर हरिषेण !' कुमारदेवी ने अपने आत्मविश्वासपूर्ण दृढ़ निश्चयात्मक स्वर में कहा। हरिषेण उसके स्वर की इस ध्वनि से परिचित था। जब कुमारदेवी के स्वर में यह ध्वनि होती तो उसका स्पष्ट अर्थ यह होता था कि वह अपने निर्णय से डिगेगी नहीं। वह सुनता रहा।

'प्रश्न बल का नहीं, श्रद्धा का है। महत्त्व अतुलित बल का नहीं, अपार श्रद्धा का है। और वह हमारे पास है। हमें प्रयत्न केवल यह करना है कि गणपतिनाग और प्रवरसेन आपस में मिलने न पायें, एक न हो सकें। दोनो के सामने सिवा इसके कोई मार्ग नहीं है कि वे या तो वैशाली और पाटलीपुत्र की एकता के महत्त्व को स्वीकार कर जीवित रहें या अस्वीकार कर नष्ट हो जायें। जितना जल्दी इस तथ्य को वे स्वीकार करेंगे उनका महत्त्व और मान उतना ही बढ़ेगा !'

हरिषेण सुनता रहा। उसे कुमारदेवी के इस कथन में लम्बे, भयंकर, रक्तरंजित युद्ध की प्रतिध्वनि सुनाई दी।

उसने कहा—जिस प्रकार यह आवश्यक है कि वे एक न होने पायें उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि हम वैशाली और पाटलीपुत्र की एकता को दृढ़ करने के लिए पूरा-पूरा समय लें। समय ही इस समय हमारी सबसे बड़ी जटिल समस्या है।

'मेरे पास उसका समाधान भी है मंत्रीश्वर।'

'क्या समाधान है ? कहीं जल्दी में हम भटक न जायें, पथ-विभ्रान्त न हो जायें !'

'समाधान तो आपको थोड़ी देर बाद स्वयं ही ज्ञात हो जायेगा। लेकिन जहाँ तक शीघ्रता करने का प्रश्न है, मैं यही कहूँगी कि कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें मैं नहीं करती, कोई मुझसे करवा लेता है। मैं तो केवल निमित्त हूँ। दौड़ती मैं हूँ, पर दौड़ानेवाला कोई और है। आप पूछेंगे कि वह कौन है तो मैं यही कह सकती हूँ कि मैं स्वयं नहीं जानती, वह कौन है ?'

'देवी, आपकी बहुत-सी बातें बहुत-सी बार समझ में नहीं आतीं; केवल अनुमान से ही हम उनमें निहित अभिप्राय को ग्रहण करते हैं। आपके कथन के वास्तविक अभिप्राय को ग्रहण करना ही हमारा कार्य है। देवी मुझे शंकालु न समझें। लेकिन इस समय मुझे आपकी जल्दबाजी घातक प्रतीत हो रही है। राजकुमार इस समय प्रवरसेन के यहाँ है। वह उसके बहाने यहाँ दौड़ा आ सकता है। हमने मगध को तैयार किया है; लेकिन मगध की वर्षों पुरानी निर्बलता अभी शेष है। आक्रान्ता का स्वागत करने लिए अभी कल तक यहाँ के लोग प्रस्तुत थे। आज उसमें परिवर्तन अवश्य हुआ है। लेकिन यह परिवर्तन कितना गहन और व्यापक है, इसे तो समय ही बतायेगा। यदि मगध ने प्रवरसेन की ओर एकता के हाथ बढ़ा दिये तो आप ही सोचिए हम कितने संकट में पड़ जायेंगे! पाटलीपुत्र और वैशाली की एकता को दृढ़ करने के लिए समय चाहिए, क्योंकि यह एकता समय-साध्य है।'

'तुम्हारा क्या खयाल है, तिलभट्टक ?'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है देवी! मंत्रगुप्त राजकुमार को लेकर वहाँ पहुँच गया। उसके इस कृत्य से सारी परिस्थिति ही बदल गई। गणपतिनाग की शक्ति अतुलित है। उनकी वीरता और पद-मर्यादा भी अद्वितीय है। दस अश्वमेध उन्होंने किये हैं। वाराणसी उनके इस यश और कीर्ति की साक्षी है। भगवान शंकर के वह उपासक हैं। उनकी घोर उपासना ने लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया है। यवनों को भारत से निकालने की पहल उन्हीं ने की। गणपतिनाग का सभी आदर करते हैं। अहिछत्र, मथुरा, चम्पावती, कान्तिपुरी और प्रवरसेन—सभी उनको आदर देते हैं। वाकाटकराज प्रवरसेन का पौत्र रुद्रसेन कौन है, यह तो आपसे भी छिपा हुआ नहीं। वह भवनाग का दौहित्र है। इस सम्बन्ध के कारण वे जब चाहें पाटलीपुत्र पर अधिकार कर सकते हैं। इस समय दोनो मिल गए तो समझ लीजिए कि हमारी कुशल नहीं। अकेले नागराज को यहाँ रोक रखने का भी कोई अर्थ नहीं। अभी तो हमें समय चाहिए स्थिर होने के लिए, व्यवस्थित होने के लिए, वैशाली और पाटलीपुत्र की एकता को दृढ़ करने के लिए। दीर्घकालीन युद्ध के लिए हमें पाटलीपुत्र को तैयार करना चाहिए। यदि कहीं हम पराजित हो गए तो फिर

कभी उठ न पायेंगे। इसलिए अभी तो गणपतिनाग को अपने अनुकूल करना ही मुझे समय-धर्म प्रतीत होता है।'

'समय-धर्म तो मुझे भी यही लगता है तिलभट्टक, परन्तु मेरा व्यक्ति-धर्म पुकार-पुकारकर कहता है कि तेरे लिए कोई समय नहीं, कोई असमय नहीं। मैं स्वयं नहीं जानती कि मुझे ऐसा करने के लिए कौन प्रेरित करता है, क्यों प्रेरित करता है? परन्तु भारत के महान भविष्य को मैं अनेक बार अपनी गोद में शिशु बनकर खेलता हुआ देखती हूँ। मैं देखती हूँ और देखती रह जाती हूँ। क्यों देखती हूँ, यह स्वयं मेरी ही समझ मे नहीं आता तो तुम्हें कैसे समझाऊँ? लेकिन तिलभट्टक, जिसे तुम मेरा दुस्साहस कहते हो, विनाश के मार्ग पर अन्धी दौड़ कहते हो वह मुझे निर्मित होते हुए इतिहास का भागता हुआ क्षण प्रतीत होता है। और मुझे बरबस दौड़ना होता है उस क्षण को पकड़ने के लिए, उस क्षण का त्वरित उपयोग करने के लिए। समय मुझे कुछ नहीं कहता, समय से ही मुझे कुछ कहना रहता है। कई बार महाकाल स्वयं रुदन करता है। हाँ, मंत्री हरिषेण, महाकाल स्वयं रोता है, केवल हमे इसकी जानकारी नहीं होती। जिस प्रकार विशाल वृक्ष ठूँठ रह जाता है, फूलता-फलता नहीं और मन-ही-मन क्रन्दन कर उठता है, जिस प्रकार नारी वन्ध्या होकर हाहाकार कर उठती है उसी प्रकार महाकाल रोता है जब युग-विशेष में किसी नरपुंगव का जन्म नहीं होता। मैं महाकाल के उस रुदन को सुनती हूँ। जो महाकाल के इस रुदन को सुनते हैं वे धीरे-धीरे नहीं चल सकते, उन्हें सरपट दौड़ना होता है। प्रवरसेन और गणपतिनाग सामने हैं, इसलिए महाकाल की दौड़ रुक नहीं सकती। वे वीर पुरुष हैं, परन्तु नरपुंगव नहीं। नरपुंगव वह है जो धरती और आकाश, पवन और पानी, प्रजा और प्राण, भाषा और संस्कृति सब को बदल देता है। तुम गणपतिनाग को यहाँ ले आओ। हम उससे कहेंगे, शिशु राजकुमार को हमें सौंप दो; उसके रक्षक हम होंगे, तुम नहीं। वह मान ले तो ठीक, न माने तो जो उसकी समझ में आये करे; हम उसे मुक्त तो कर ही देंगे। हमें जो करना है उसका निर्णय मैं बहुत पहले कर चुकी हूँ।'

कुमारदेवी अपने पथ का अपने ढंग से अनुसरण करना चाहती थी।

किसी के रोके वह रुकनेवाली नहीं थी। हरिषेण और तिलभट्टक इस बात को समझ गए। उन्हें एक ही महान युद्ध नहीं, अनेक महान युद्ध आते और देश तहस-नहस होता दिखाई दिया।

उनके विचारों की थाह पा गई हो इस प्रकार कुमारदेवी ने आगे कहा, 'युद्ध तो तब किये जाते हैं मंत्री हरिषेण, जब सारे देश को अग्नि-स्नान कराकर शुद्ध करना होता है। आज के पतन से, इस घोर किल्मिष से, भाषा, संस्कृति और चरित्र के चतुर्दिक ह्रास से, कला और व्यवसाय के स्खलन से, चारित्रिक दुर्गति से, आर्थिक गिरावट से तुम्हारा उद्धार कैसे होगा? बातों से उद्धार होगा अथवा भारतव्यापी दृढ़ शासन से? बातों से नहीं, शासन से ही उद्धार होगा। लेकिन शासन की स्थापना होगी कैसे? वैशाली के बिना शासन की स्थापना कर ही कौन सकता है? इसी लिए मैं दौड़ रही हूँ, इसी लिए त्वरित निर्णय करती हूँ। मेरी दौड़ अन्धी नहीं, अज्ञेय हो सकती, रहस्यपूर्ण हो सकती है। तुमने पूछा था मंत्रीश्वर, हमारी संयुक्त सेना का महाबलाधिकृत कौन होगा? मैंने उसे भी खोज लिया है।

'खोज लिया है? कौन है वह सेनापति?'

'गुप्तकुमार चन्द्रगुप्त। वही सेना का संचालन करेंगे।'

'दोनों के विरुद्ध?'

'इसे तो आप स्वयं देखेंगे। हमें अवश्य व्यवस्था करनी होगी, प्रबन्ध करना होगा, तैयारियाँ करनी होंगी। परन्तु मेरा विश्वास है त्वरा में, तत्काल कार्य कर गुजरने में और आप लोगों का विश्वास है प्रतीक्षा करने में। लेकिन प्रतीक्षा हम इस समय कर नहीं सकते। प्रतीक्षा करते बैठे रहे तो धीरे-धीरे जो है उसे भी गँवा देंगे! चारों ओर से लोग नोचने-खसोटने के लिए दौड़े आयेंगे। अभी तो तड़ित् प्रहार ही हमें बचा सकता है और बचायेगा और वही युद्ध की सम्भावना का इस समय अन्त भी करेगा। बस!'

हरिषेण और तिलभट्टक जाने के लिए उठ खड़े हुए। कुमारदेवी की सारी बातों को वे ध्यानपूर्वक सुनते रहे थे। स्वयं कुमारदेवी ने इस बात को माना था कि प्रवरसेन और गणपतिनाग को एक नहीं होने देना चाहिए; क्योंकि यदि वे एक हो गए तो वैशाली और पाटलीपुत्र की संयुक्त शक्ति भी

उनके आगे टिक न सकेगी। इसलिए उनके मन का समाधान नहीं हुआ था।

कुमारदेवी इस बात को जान गई। इसलिए जैसे ही उन्होंने जाने के लिए कदम बढ़ाया, वह बोली—मैं जानती हूँ हरिषेण, कि तुम्हारा समाधान नहीं हुआ। तुम्हें मेरा यह कदम आत्महत्या के समान घातक लग रहा है। लेकिन प्रवरसेन और गणपतिनाग एक होकर पाटलीपुत्र पर आक्रमण करें—यह कभी होने का नहीं, न कभी होने दिया जायेगा। दोनों एक साथ होने पर अवश्य अतुलित बलशाली हैं, लेकिन अलग-अलग उनमें कोई शक्ति नहीं। एक-एक कर हम उन दोनों से निपट सकते हैं। गणपतिनाग के सम्बन्ध में एक बात और भी विचारणीय है। सच पूछो तो भारतवर्ष का चक्रवर्ती उसी को बनना चाहिए था। यवन-शकों को उसी ने सबसे पहले भारत से निष्कासित किया। उसकी महत्त्वाकांक्षा यही रही होगी और आज भी यह बात उसके मन में जड़ जमाये बैठी होगी। आज भी वह नागवंश के सभी राजाओं में प्रमुख है और सब उसे अपना नेता मानते हैं। लेकिन वाकाटक-राज को अपनी कन्या देकर उसने सारी बात बिगाड़ ली। नाग और वाकाटक एक हो गए। गौतमीपुत्र हो उठा सर्वश्रेष्ठ। चक्रवर्ती-पद का दावेदार भी वही हुआ। सबने उसके इस दावे को स्वीकार किया। लेकिन वह मर गया और बात वहीं रह गई। अब प्रवरसेन उसके शिशु रुद्रसेन को मगधपति और आगे चलकर भारतपति बनाना चाहता है। मेरा विश्वास है कि गणपतिनाग को यह बात स्वीकार नहीं। मुँह से वह चाहे कुछ न कहे, परन्तु मन-ही-मन वह इससे रुष्ट है। हम इस बात का उपयोग सम्प्रति अपने लाभ के लिए कर सकते हैं। या तो वह हमसे मिल जाये या हम उसे पराजित कर दें। प्रवरसेन को हराने से पहले इसी को हराना चाहिए। इसकी पराजय से प्रवरसेन के पाँव भी थम जायेंगे। जो सेनापति परम बलशाली गणपतिनाग को पराजित कर सकता है उसका सामना करने से पहले प्रवरसेन को हजार बार सोचना होगा। इस प्रकार हमें समय मिल जायेगा। मेरी योजना के बारे में अब आप स्वयं विचार करके देखिए। गुप्तकुमार....

कुमारदेवी ने धीरे से ताली बजाई। उसने भीतर के प्रकोष्ठ की ओर

देखा। तुरत समीप के प्रकोष्ठ का द्वारा खुल गया। नख-शिख शस्त्रास्त्रों से सज चन्द्रगुप्त ने वहाँ प्रवेश किया। उसके नेत्रों में इस समय एक अनोखी चमक थीं। उसने अपनी कृपाण को जरा-सा सिर से छुआकर पूछा—क्या देवी ने मुझे याद किया है ?

चन्द्रगुप्त को इस नये रूप में देखकर, हरिषेण और तिलभट्टक, दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि चन्द्रगुप्त ने वैशाली के साथ अपने सम्बन्धों को स्थिर कर लिया है।

कुमारदेवी ने कहा—हाँ महाबलाधिकृत, मैंने आपको याद किया है। मंत्रीश्वर हरिषेण महोदय ऐसा समझते हैं कि हमने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है वह एक साथ पाटलीपुत्र पर दो शक्तिशाली सेनाओं के आक्रमण को निमंत्रित करनेवाला है। प्रवरसेन और गणपतिनाग सामान्य कोटि के वीर नहीं। तिलभट्टक भी ऐसा ही मानते हैं। ये दोनो अनुभवी राजपुरुष हैं। वैशाली के अत्यन्त विश्वसनीय नेता हैं। इनकी राय विचारणीय है। आपकी क्या राय है ? हम ऐसा करके विनाश की ओर तो अग्रसर नहीं हो रहे ? आप अपना मन्तव्य इन्हें समझायें....

'हरिषेण मंत्रीश्वर, मेरे और आपके मार्ग में अन्तर केवल इतना है कि आप धीमे चलना चाहते हैं और मैं शीघ्र। आप प्रतीक्षा करना चाहते हैं और मैं तड़ित् प्रहार के पक्ष में हूँ। तिलभट्टक, आप वैशाली जा रहे हैं। गणपतिनाग आनेवाले हैं। मंत्रगुप्त जब राजकुमार को ले ही गया, तो अब नागराज को यहाँ रोके रखना निरर्थक है। एक ही बात पर समाधान हो सकता है—प्रवरसेन शिशु राजकुमार को वैशाली के संरक्षण में लौटा दें और विश्वासघाती कुंजरक और मंत्रगुप्त को अपने यहाँ से निर्वासित कर दें। फिर भविष्य में जैसा होगा देख लिया जायेगा। लेकिन वे इस बात को मानेंगे नहीं।'

'हम गणपतिनाग के आगे यही प्रस्ताव रखेंगे।' हरिषेण ने कहा।

'रखेंगे अवश्य। लेकिन यदि गणपतिनाग ने स्वीकार नहीं किया तो फिर क्या करेंगे ?'

'यही तो मुख्य प्रश्न है, गुप्तराज। क्या उन दोनो को एक हो जाने दिया जाये ?' तिलभट्टक ने पूछा।

'नहीं, तब हम गणपतिनाग को एक ऐसे युद्ध में फँसायेंगे कि बूढ़ा फिर कभी लड़ने का नाम ही न ले सके !'

'लेकिन गणपतिनाग को पराजित करना हँसी-ठठा नहीं है, यह भी समझ लीजिए गुप्तराज !' हरिषेण ने कहा, 'वह वृद्ध है, पर अनुभवी योद्धा है। आदर-मान भी उसका कम नहीं। समस्त नागकुल उससे भय खाता है, उसी को अपना नेता मानता है। मथुरा के यादव भी नागवंशी ही हैं। अहिछत्र नागकुल के हैं। नागराज हैं ही। मद्र, मालव और यौधेय भी उसका सम्मान करते हैं। वह स्वयं भी अतुलित बलशाली है।'

'लेकिन जो जितना बलवान होता है वह उतना ही आत्मतुष्ट भी होता है। हमने उसका अपमान किया है। बूढ़ा अपने अपमान को कभी भूल नहीं सकता। भूलना उसके स्वभाव मे है ही नहीं। वह प्रतिशोध लेकर रहेगा। वह प्रवरसेन का साथ देगा। हम उस अवसर की प्रतीक्षा करेंगे, लेकिन यहाँ नहीं बूढ़े के मार्ग में। मैं आज ही तीनों प्रदेशों की संयुक्त सेना की हरावल को लेकर प्रयाण कर रहा हूँ। पद्मावती और कांचनका के राजमार्ग पर हमारी सेना अपनी मोरचबन्दी करेगी। हम चुपचाप बैठे प्रतीक्षा करेंगे। जैसे ही गणपतिनाग उधर से निकलेगा, हम उसे युद्ध में फँसा लेंगे। उसकी पराजय के दूरगामी परिणाम होंगे। लोगों को मान लेना होगा कि अब हम और केवल हमीं भारत के चक्रवर्ती बन सकते हैं, हमीं अब इस पद के उपयुक्त हैं। और एक बात यह भी है कि गणपतिनाग को पराजित करके ही हम प्रवरसेन को भी पराजित कर सकते हैं।'

बात तो चन्द्रगुप्त की बिलकुल सही थी। इन दोनो वीर पुरुषों पर सारे भारत की दृष्टि लगी हुई थी। भारत का चक्रवर्ती बननेवाले को सबसे पहले इन दोनो को या इन दोनो में से किसी एक को पराजित करना होगा।

'लेकिन मागधजन और आसपास के सैकड़ों-हजारों प्रजाजन....'

'मानेंगे या नहीं, यही आप कहना चाहते हैं न ? मैं जानता हूँ। बात

आपकी बिलकुल सही है। विज्जका ने मेरे विरुद्ध घनघोर प्रचार किया है। मुझे हीनकुलोत्पन्न कारस्कर ही बना डाला है....'

'गुप्तराज, इस बात को अब आप अपने मन से निकाल ही दीजिए।' हरिषेण ने कहा।

'मैंने तो अपने मन से निकाल दिया है। जब से वैशाली की इस देवी ने मेरा हाथ थामा, मैं इस बात को भूल गया हूँ। परन्तु लोगों के मन में यह बात अभी तक बैठी हुई है, इस तथ्य को हमें समझना होगा।'

'गुप्तराज!' कुमारदेवी ने कहा, 'लोगों की बुद्धि कुंठित भी होती है। लोगों के मन में शक्ति के साथ दुर्बलता भी होती है। लोगों की समझ अद्‌भुत होती है, उनकी नासमझी भी अद्‌भुत होती है। वे किसी असाधारण पराक्रम को देखते हैं तो सब-कुछ भूल जाते हैं। असाधारण कला की भाँति असाधारण पराक्रम भी लोगों को अभिभूत कर देता है। इन दोनों शब्दों का समावेश हम जीवन-कला शब्द में कर सकते हैं। नरपुंगव की जीवन-कला लोकमानस को प्रेरित करती है। एक बात और भी है। मैं स्वयं पितृहन्ता हूँ। मैंने आपसे कहा था कि जो दुर्बल अथवा दुर्जन के हाथ में सत्ता और लक्ष्मी को रहने देता है वह आत्महन्ता ही नहीं पितृहन्ता भी होता है।'

'देवी, यह तो आपका मुझ पर स्नेह है। नहीं तो मैं क्या और मेरा स्वप्न क्या! मेरी अधिक-से-अधिक दौड़ मगधपति बनने तक थी। परन्तु आपने मुझे हिमाद्रि का उत्तुंग शिखर दिखाया, उस पर चढ़ने की प्रेरणा की। आपने मुझे समझाया कि अब मगधपति हुआ तो देश ही नहीं रहेगा। अब या तो भारतपति हो सकता है या कोई नहीं हो सकता। यह कल्पना, देवी, आपने मुझे दी है।'

'हमने तो गुप्तकुमार, आपको अपने स्वप्न, अपने आदर्श और अपनी महत्त्वाकांक्षा की बात कही थी। यह तिलभट्टक इसी के लिए आपके पास आये थे। उसके बाद परिस्थिति में परिवर्तन हुआ और आप अपना सहयोग हमें देने के लिए प्रस्तुत हुए....'

'क्योंकि मैंने देखा कि जो गणपतिनाग-जैसों को बन्दी बना सकते हैं—और यदि उस समय बन्दी न बनाया होता तो आज इस पाटलीपुत्र पर

दुर्बलों का शासन होता—शक्ति उन्हीं में है। उनके चरणों में अपनी कृपाण को समर्पित करना हिमाचल के शिखर पर चढ़ने के समान था। मैं अनुप्राणित हुआ हूँ आपके व्यक्तित्व से। मैं जो दौड़ा जा रहा हूँ आज यह महान पराक्रम करने वह भी आपके ही प्रताप से, आपके ही सहारे....'

'सहारा तो गुप्तराज,' हरिषेण ने अब मुस्कराते हुए कहा, 'आपके लिए देवी होंगी और देवी के लिए आप होंगे। प्रकृति का यही संकेत प्रतीत होता है....'

'लिच्छवियों के सहारे ही मैं हिमालय के शिखर पर चढ़ने की कल्पना कर सका हूँ....और मगधपति बनने का मेरा अकिंचन स्वप्न तिरोहित हो गया है....इसके लिए मैं सबसे पहले तिलभट्टक का, उसके बाद मंत्रीश्वर आपका, और....'

'सबसे अन्त में मेरा, क्यों? वाह गुप्तराज, वाह! आप भी खूब हैं! मुझे सब से अन्त में रख दिया।' कुमारदेवी ने विनोदपूर्वक कहा।

और प्रेम की मधुर मुस्कान ने वहाँ के वातावरण को स्नेहोज्ज्वल कर दिया।

२८. चन्द्रगुप्त का प्रस्थान

लेकिन प्रेम की वह मधुर मुस्कान थी कुमारदेवी-जैसी महान नारी की, जो पुरुष को प्रेरणा देती है, जीवन देती है, स्वप्न देती है और देती है स्वप्न को सार्थक करने की शक्ति और उमंग।

चन्द्रगुप्त के सिर अब ऐसी-वैसी जिम्मेवारी नहीं थी। गणपतिनाग-जैसे सुप्रसिद्ध योद्धा के मुकाबले पर उसे जाना था; और वह इस महान पराक्रम के लिए सब तरह से तैयार था।

उसने अपने-आपको वैशाली के साथ एक कर दिया था; यह कोई सामान्य सफलता नहीं थी। कुमारदेवी के अनुपम व्यक्तित्व ने ही उसमें यह चमत्कारिक

परिवर्तन कर दिखाया था। अब मगधपति का पद हो गया था उसके निकट, क्षुद्रातिक्षुद्र। वह बनना चाहता था भारत का चक्रवर्ती।

इसके लिए सबसे पहले उसे गणपतिनाग को पराजित करना होगा। तभी सार्थक होगा वैशाली के साथ उसका सम्बन्ध; तभी अधिकारी बन सकेगा वह कुमारदेवी की प्रेम-मधुर मुस्कान का।

सेनापतित्व की उसकी योग्यता के सम्बन्ध में तो कोई सन्देह था ही नहीं; लेकिन काम भी कम कठिन नहीं था। पग-पग पर सावधानी रखने की आवश्यकता थी। या तो काम ही पूरा होगा, या प्राण ही गँवाने होंगे। बड़े ही विकट पंथ का राही बन रहा था वह।

'मंत्रीश्वर,' कुमारदेवी ने चन्द्रगुप्त की ही बात के सूत्र को आगे बढ़ाते हुए कहा, 'हमें इस बात को समझना होगा कि यदि भारतवर्ष में एक सु-व्यवस्थित, दृढ़ शासन स्थापित करना है तो पाटलीपुत्र को उसका वास्तविक केन्द्र बनाना होगा।

'हमारा यह नगर सभी दृष्टियों से महान है। देश-विदेश में इसकी कीर्ति फैली हुई है। कुशान, यवन, शक—सभी इस बात को जानते हैं कि इस नगर पर गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश से होकर आक्रमण नहीं किया जा सकता; लेकिन वे यह भी जानते हैं कि इस पर आक्रमण करने का एक मार्ग खुला हुआ है।

'मथुरा से आगे बढ़कर वे सौराष्ट्र और आनर्त की ओर जा सकते हैं और वहाँ से मध्यमिका और अवन्ती होते हुए पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर सकते हैं। इस मार्ग से आने के स्वप्न भी वे प्रायः देखा करते हैं।

'इसलिए गणपतिनाग को या तो हमें अपना मित्र बनाना चाहिए, अथवा पराजित करना चाहिए। ऐसा किये जाने पर ही पाटलीपुत्र नगर एक बार पुनः तक्षशिला से नर्मदा तक अपना साम्राज्य स्थापित कर सकता है। जिस प्रकार गंगा-यमुना का मार्ग निरापद है उसी प्रकार मथुरा से भृगुकच्छ तक का मार्ग भी निरापद करना होगा।'

हरिषेण सुन रहा था। कुमारदेवी का यह कथन उसे अभिनव दृष्टि प्रदान कर रहा था। अब उसकी समझ में आया कि भारत की अखण्डता

और एक केन्द्रीभूत साम्राज्य की स्थापना की योजना में सबसे पहले गणपति-नाग को स्थान क्यों दिया गया।

'गणपतिनाग यहाँ आयेगा। हम उसे मित्र बनने के लिए समझायेंगे। लेकिन वह जठर बूढ़ा इस बात को मानने के लिए कभी तैयार न होगा। इस बीच गुप्तकुमार सेना की प्रथम हरावल के साथ उसके प्रदेश की ओर पहुँच चुके होंगे। जब वह अपनी सेना लेकर प्रवरसेन के सहायतार्थ बढ़ रहा होगा तो उसे विन्ध्य की उपत्यका में रोका जा सकेगा। क्यों कुमार, ठीक है न?'

'मेरी यही योजना है देवी! उस प्रदेश से मैं परिचित भी हूँ; वहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि मेरी देखी-भाली है। बस, मैं आज ही रवाना हो रहा हूँ। मंत्रीश्वर, गणपतिनाग के यहाँ आने पर उसकी मैत्री के लिए पूरा प्रयत्न किया जाये।'

योजना बन गई। हरिषेण और तिलभट्टक गणपतिनाग को लाने के लिए वैशाली जायेंगे और चन्द्रगुप्त उनके लौटने से पहले ही प्रस्थान कर देगा।

तिलभट्टक और हरिषेण कुमारदेवी को प्रणाम कर वैशाली के लिए विदा हो गए।

परन्तु चन्द्रगुप्त को जाने से पहले एक आवश्यक कार्य और करना था। पद्मावती के समाचार उसे नियमित रूप से मिलते रहें तभी उसकी सैनिक हल-चल सफल हो सकती थी। इसलिए उसने कुमारदेवी से कहा—लिच्छवीकुमारी, मध्यमिका नगरी के समीप अग्निमित्र ने कुशानों को पराजित किया और उन्हें वहाँ से मार भगाया। इतिहास इस बात का साक्षी है। उस दिशा को अ-रक्षित नहीं छोड़ा जा सकता। पाटलीपुत्र का विस्तार वहाँ तक हो तभी वह पाटलीपुत्र रह सकता है। इसलिए भारत का साम्राज्य स्थापित करने के हमारे मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह गणपतिनाग ही है। इसे या तो हम अपना मित्र बना लें, या यह शत्रु रह ही नहीं जाये, ऐसा हमें करना होगा। दूसरा कोई उपाय है भी नहीं।

'लेकिन हम इसे वश में करेंगे किस प्रकार? मूल प्रश्न तो यह है।' कुमारदेवी ने कहा, 'इसे पराजित करना सरल नहीं।'

'लिच्छवीकुमारी, उधर का सारा प्रदेश मेरा देखा-भाला है।' चन्द्रगुप्त ने उत्तर दिया, 'वहाँ के पहाड़ों में फँसाकर ही इस शेर को पछाड़ा जा सकता है। मैदानों में वह नरसिंह है। दुर्ग की ओट में वह देव है। पद्मावती को घेरना हाथों गला घोंटना है। उचित अवसर वही है जब वह दो पहाड़ों के बीचवाले सँकरे मार्ग से (पहाड़ी दर्रे से) अपनी सेना निकाल रहा होगा। ठीक उसी समय हम उस पर टूट पड़ेंगे और सेना सहित उसका सफाया कर देंगे। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि पद्मावती से उसके चलने और दर्रे में प्रवेश करने के पूरे समाचार घटिकायंत्र की नियमितता से हमें प्राप्त हों। गणपतिनाग भगवान शंकर का उपासक है। अपने इष्टदेव से पूछे बिना वह कभी घर से बाहर नहीं निकलेगा। इसलिए आज ही किसी को पद्मावती के शिव-मन्दिर में बिठा दीजिए। हमारा वह चर बड़ा चतुर और कुशल होना चाहिए। कहीं पकड़ा गया तो गणपतिनाग उसे वहीं समाप्त कर देगा। क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानती हैं जो इस कार्य को सफलता से सम्पन्न कर सके? वहाँ जाना सिंह की माँद में पैठकर सिंह की दाढ़ों में सिर देना है। देश के भविष्य के लिए समर्पित हो जानेवाला कोई वीर चाहिए। है कोई आपके ध्यान में? मैं स्वयं ही जाता, परन्तु सेना की पहली हरावल लेकर जा रहा हूँ और उसकी वहाँ मोरचेबन्दी इस तरह करनी है कि जब दूसरी टुकड़ी लेकर श्रीषेण और तीसरी टुकड़ी लेकर तिलभट्टक वहाँ पहुँचें तो संयुक्त काररवाई के लिए सब का सम्पर्क और एकीकरण हो सके। देश का भविष्य एक नवयुवक के आत्मसमर्पण पर निर्भर करता है। कोई आपके ध्यान में हो तो तत्काल बुलाइए।'

चन्द्रगुप्त की बात सुनते ही कुमारदेवी विचारमग्न हो गई। पहला विचार तो उसे यह आया कि चन्द्रगुप्त की तैयारियाँ सामान्य कोटि की नहीं; उसने सब दृष्टियों से पूरी तैयारियाँ की हैं। दूसरा विचार उसे यह आया कि कई बार युद्ध सेना, सेनापति, मोरचेबन्दी, शस्त्रास्त्रों की विपुलता आदि से नहीं जीता जाता; उसे जीतते हैं आत्मबलिदान करनेवाले युवक। इस समय किसी ऐसे ही युवक की आवश्यकता थी। यह माँग अकेले चन्द्रगुप्त की नहीं, समूचे ऐतिहासिक क्षण की थी। कुमारदेवी ने मन-ही-मन वैशाली के नव-

युवकों के नाम याद किये। सभी वीर थे, सभी साहसी थे, परन्तु सभी में कुछ-न-कुछ न्यूता भी थी। क्या न्यूनता थी, इसे तो वह निश्चयपूर्वक कह नहीं सकती थी, परन्तु कोई न्यूनता थी अवश्य।

युवक ऐसा चाहिए जो आदर्शवादी हो, जो देश को देवता समझकर उसकी पूजा करता हो, जो विजय का अभिलाषी नहीं, अपने को निछावर करने की तमन्ना रखता हो।

लिच्छवियों में ऐसा युवक कौन था? प्रदर्शन और नामैषणा से दूर देश के हित को अपना एकान्त कर्त्तव्य समझकर चुपचाप बलि हो जानेवाला ऐसा वीर कौन था?

वह सोचती रही, उसे कोई भी ऐसा लिच्छवी युवक दिखाई नहीं दिया।

सहसा उसके मन में स्फुरित हुआ, क्या मैं स्वयं यह कार्य नहीं कर सकती?

दूसरे ही क्षण उसने दृढ़ विश्वास से भरी वाणी में कहा—क्या सेनापति मुझी को यह विरल सम्मान नहीं प्रदान कर सकते?

चन्द्रगुप्त ने सुना और सहसा उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। जब विश्वास हुआ तो उसने मन-ही-मन उस देवी को प्रणाम किया। वह नारी नहीं शक्ति थी, साक्षात् रणदेवी थी।

उसने दोनो हाथ जोड़कर कहा—देवी, चन्द्रगुप्त न रहे तब भी भारतवर्ष का कुछ नहीं बिगड़ेगा; इतिहास का चक्र उसी अनवरत गति से चलता रहेगा। परन्तु एक व्यक्ति ऐसा है जिसके न रहने से इतिहास की गति रुक जायेगी, देश को पूरी एक शताब्दी तक प्रतीक्षा करनी होगी उस व्यक्ति के पुनरागमन के हेतु। आकाश में और पाताल में, धरती पर और द्युलोक में, स्वर्ग में और देवलोक में, यहाँ तक कि उच्च आत्माओं के आध्यात्मिक लोक में भी ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है। जानती हैं ऐसा व्यक्ति कौन है?

'नहीं जानती, आप बतायें।'

'वह व्यक्ति हैं आप। शक्ति आपमें है, शक्ति के रूप में नहीं, देवी के रूप में। तेजस्विनी नारियाँ अनेक बार अवतरित होती हैं; शक्तिशालिनी महिलाएँ भी कई बार जन्म लेती हैं; परन्तु देवियाँ दुर्लभ हैं। इतिहास इसका

साक्षी है, भूगोल इसका प्रमाण है, मानव-जाति का यही अनुभव है।'

'गुप्तकुमार, मैं समझती थी कि तिलभट्टक कवि है, हरिषेण कविराज है, परन्तु अब देखती हूँ कि आप तो सब में श्रेष्ठ और महान कवि हैं। कवि वह है जो अगोचर को भी गोचर कर लेता है। मुझे अपने में देवी कहीं दिखाई नहीं देती, आपको दिख रही है, क्योंकि आप कवि हैं। लेकिन इस समय कवि, काव्य और कविता की बातों के लिए अवकाश नहीं। अभी तो सैनिक मामलों पर विचार करना है। ऐसे नवयुवक का पता लगाना है जो आपको घड़ी-पल की सूचना दे सके।'

'हाँ देवी, ऐसा ही युवक चाहिए। उसकी जरा-सी गलती से, जिस हरावल को मैं ले जा रहा हूँ उसका एक-एक सैनिक मौत के मुँह में चला जायेगा। आपको पता तो होगा ही और न हो तो मैं बताता हूँ। प्रवरसेन प्रवीर है, परन्तु गणपतिनाग भी प्रवीर है और वह पद्मावती में बैठा-बैठा ही पाटलीपुत्र को देख सकता है, क्योंकि उसके पास सुशिक्षित और चतुर गुप्तचर हैं—ऐसे गुप्तचर जिन्हें भगवान कौटिल्य ने "नृपचक्षु" कहा है। इसलिए वहाँ जानेवाले को पूरी तरह सतर्क रहना होगा। भगवान चन्द्रमौलीश्वर उसकी सहायता करें, उसका मार्ग प्रशस्त करें....इससे अधिक मैं क्या कह सकता हूँ?'

कहते-कहते चन्द्रगुप्त का गला भर आया और वाणी वेदना से विह्वल हो उठी।

चन्द्रगुप्त की इस वेदना का पहले तो कोई कारण कुमारदेवी की समझ में नहीं आया। लेकिन जैसे ही समझ में आया उसे आघात-सा लगा। वह मन-ही-मन चीत्कार उठी—ओह, पिता होकर यह स्वयं....

लेकिन चन्द्रगुप्त इस बीच स्वस्थ हो गया था। वह दो डग आगे बढ़ा और उसने प्रकोष्ठ के बन्द कपाटों को धीरे से थपथपाया। कुमारदेवी खड़ी देखती रही।

रुद्ध द्वार तत्काल उन्मीलित हो गए।

जटाजूट-धारी, तेजस्वी योगी-जैसा एक शंकर-भक्त युवक वहाँ दिखाई दिया। उसके गले में रुद्राक्ष की माला थी। पिंगल जटाओं में भस्म रमी हुई

थी। हाथ में पन्नग आभूषण थे। विषवमन करती स्वर्ण-खचित नागिनें उसके शरीर पर लहरा रही थीं। भगवान शंकर के बिम्ब को वह अपने कन्धे पर धारण किये हुए था।

उसकी तरुणाई, तेजस्वी मुखमंडल और वह योगियों का-सा वेश—एक समय तो पहचाननेवाले भी भ्रम में पड़ जाते। सहसा कुमारदेवी भी उसे पहचान न पाई। फिर उसे खयाल आया कि अरे, यह तो काचदेव है, जिसकी सहायता से उसने सुरंगमहल में प्रवेश किया था।

'अरे काचदेव, तुम यहाँ कहाँ ?'

'मैंने ही इसे इसकी प्रेरणा की है देवी।' उत्तर दिया चन्द्रगुप्त ने। 'ऐसे किसी शंकर-भक्त के बिना हमें पद्मावती के घड़ी-पल के समाचार मिल नहीं सकते। और मैं कह ही चुका हूँ कि वहाँ की जानकारी के बिना हम अँधेरे में भटक जायेंगे, नष्ट हो जायेंगे। काचदेव पद्मावती जायेगा। वहाँ जाकर भगवान स्वर्णबिन्दु के मन्दिर में निवास करेगा। लेकिन काचदेव, यह याद रहे कि बूढ़ा गणपतिनाग दो-एक दिन में यहाँ आयेगा और उसे ससम्मान मुक्त कर दिया जायेगा, परन्तु वह अपने अपमान को भूलेगा नहीं और प्रतिशोध लिये बिना मानेगा नहीं। मंत्रगुप्त इस समय प्रवरसेन के यहाँ है। कुंजरक और शिशु राजकुमार भी वहीं हैं। गणपतिनाग यहाँ से मुक्त होते ही प्रवरसेन की सहायता के लिए दौड़ेगा। कांचनका जाने का उसका मार्ग विन्ध्य की पहाड़ी उपत्यका से होकर जाता है। काफी दूर तक रास्ता एक सँकरे दर्रे में होकर गया है। गणपतिनाग उस दर्रे से ही अपनी सेना ले जायेगा, क्योंकि ऐसा करने से कई योजनों का चक्कर बच जाता है। तुम्हें यही मालूम करना है कि गणपतिनाग उस दर्रे में कब प्रवेश करेगा। दिन और समय घड़ी-पल सहित मालूम कर लेना। तभी हम बूढ़े को उस दर्रे में रोक सकेंगे। वह वहाँ युद्ध तो करेगा नहीं; क्योंकि जानता है कि लड़ा तो उसकी सारी सेना नष्ट हो जायेगी। हम उसे गंगाजल की शपथ लेकर जाने देंगे। वह मित्र भले ही न बने परन्तु शत्रु भी नहीं रह जायेगा। गणपतिनाग की वह पराजय पाटलीपुत्र-वैशाली के लिए भारतीय साम्राज्य की पहली सीढ़ी का काम देगी।

'अब यहाँ कोई मगधपति होगा ही नहीं। काचदेव, हमें नया भारत बनाना है—एक, अखण्ड, शक्तिशाली और अभिनव संस्कृतिवाला नया भारतवर्ष! तुम हमारी सहायता करो और स्वयं भी अपने मन से मगधपति के छोटे आदर्श को निकाल दो....'

काचदेव ने योगियों की भाँति आशीर्वाद की मुद्रा में अपने दोनो हाथ उठा दिये। देखकर सबको हँसी आ गई। परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें याद आ गया कि वह जा रहा था गणपतिनाग के यहाँ और जरा-सी भी भूल उसके लिए प्राणान्तकारी हो सकती थी!

थोड़ी देर प्रकोष्ठ का वातावरण गम्भीर बना रहा।

अन्त में चन्द्रगुप्त ने कहा—देवी, अब हम विदा होते हैं। मैं अपनी राह जाता हूँ और काचदेव अपनी। फिर मिलेंगे। और यदि न मिल सके तो देवी हमें कभी-कभी याद कर लिया करें। अभिनव भारत की स्थापना के समय हमें भूल न जायें। बस, हमारी इतनी ही प्रार्थना है....

चन्द्रगुप्त ने जाने के लिए कदम बढ़ाये।

'गणपतिनाग को अनुकूल करने के सभी प्रयत्न हम करेंगे गुप्तकुमार....'

सारे प्रयत्न प्रयत्न ही रहेंगे। गणपतिनाग कभी झुकने का नहीं। मैं उसे जानता हूँ देवी।' चन्द्रगुप्त ने जाते-जाते कहा।

कुमारदेवी खड़ी पिता-पुत्र को जाते हुए देखती रही।

दोनो के सिर पर नंगी तलवार लटक रही थी।

पिता-पुत्र दोनो जा रहे थे—एक लड़ने और मरने, दूसरा मरने और लड़ने। एक के लिए युद्ध में मृत्यु थी, दूसरे के लिए मृत्यु में युद्ध था।

जब वे अदृश्य हो गए तो कुमारदेवी सहसा उच्च स्वर में कह उठी—

पिता और पुत्र! दोनो में अपार शक्ति है एक असम्भव-से आदर्श पर बलि हो जाने की। क्या किसी विजेता की महान विजय से भी बड़ी विजय यह नहीं है? आत्मबलिदान! कितना महान साहस है, कितना उच्च कृत्य है! विजेता की कसौटी है विजय! परन्तु बलि होनेवाले की कसौटी क्या? विजयों की महान परम्परा! इतिहास सदा कहता रहेगा—जीवित रहने पर

उसने क्या न किया होता ! पिता और पुत्र ! वह फिर बोल उठी, 'भारतवर्ष उनके लिए है और मैं भारतवर्ष के लिए हूँ।'

२६. गणपतिनाग की मुक्ति

उस विशाल प्रकोष्ठ में दूसरा कोई भी नहीं था। पिंजर-बद्ध सिंह की भाँति अकेला गणपतिनाग इधर-से-उधर घूम रहा था। मारे क्रोध के उसकी सारी देह फुँकी जा रही थी।

महामंत्री हरिषेण और तिलभट्टक उसे वैशाली से अभी थोड़ी देर पहले ही सुगंगप्रासाद के इस प्रकोष्ठ में पहुँचा गए थे। वह राजकीय नौका में लाया गया था। बड़े ठाट-बाट और धूम-धड़ाके के साथ यहाँ आया था। सेनापति श्रीषेण ठेठ पाटलीपुत्र तक उसके साथ था। लिच्छवी सैनिक उसकी जयजयकार करते हुए साथ चल रहे थे।

लेकिन यह सारा आदर-मान उसे विष-भरी घूँट की तरह लग रहा था। उसके लेखे यह आदर नहीं अपमान था। नाक काटकर शोभा-यात्रा निकालने जैसी ही यह बात थी। वैशाली से अपने अपमान का बदला लेने का वह निश्चय कर चुका था।

मुक्त होने के बाद जब उसने पहले-पहल यह सुना कि मगधपति सुन्दर वर्मा मारा गया और हत्यारा चन्द्रगुप्त भाग गया तो उसके रोष की कोई सीमा न रही। उसने साफ कह दिया कि चाहे जो हो जाये, अब मैं पाटली-पुत्र में पाँव नहीं रखूँगा। हरिषेण और तिलभट्टक को बड़ी अनुनय-विनय करनी पड़ी। बड़ी मनुहारों और मनावनों के बाद बूढ़ा नाव में बैठने को राजी हुआ।

परन्तु रास्ते-भर वह अपना मुँह बन्द किये बैठा रहा। किसी से एक शब्द भी न बोला। मन की बात उसके मन में ही घुमड़ती रही। यदि उसका बस चलता तो साथ बैठे हरिषेण, तिलभट्टक और श्रीषेण को मार-मूरकर

भागीरथी के पानी में कूदकर भाग जाता। उन लोगों का आदर-मान और अभ्यर्थना उसे शूलों की भाँति लग रही थी।

एक जमाना था जब वह स्वयं भारत का चक्रवर्ती बनना चाहता था। अवन्ती से तक्षशिला और पाटलीपुत्र, अंग-वंग और ताम्रलिप्ति तक का सारा भू-भाग अपने शासन के अन्तर्गत करने को उसकी महत्त्वाकांक्षा थी। कुशानों, यवनों और शकों को उसी ने भारत से निकाल बाहर किया था। भगवान शंकर के मन्दिरों की उसने स्थान-स्थान पर स्थापना की थी। संस्कृत भाषा को उसने उसके गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया था। लोक-हृदय में उसने अपना स्थान बना लिया था। वह धाराधीश था। अवन्तीपति था। चक्रवर्ती का पद प्राप्त किये बिना ही भारत ने उसे चक्रवर्ती सम्राट मान लिया था। लेकिन उसके इस स्वप्न को छिन्न-भिन्न कर दिया था उसी के स्वजन भवनाग ने। फिर उसे ठेस पहुँचाई प्रवरसेन ने और जो कसर रह गई थी उसे पूरा किया हीनकुलोत्पन्न कारस्कर चन्द्रगुप्त ने। एक नाक कटनी बाकी रह गई थी, सो उसे काट लिया वैशाली के जयदेव की बित्ता बराबर की उस लौंडिया ने!

मारे क्रोध के वह उफन रहा था। मरने-मारने की मनोदशा हो रही थी उसकी। मगधपति का संरक्षक बनकर वह पाटलीपुत्र का स्वामी बनना चाहता था। प्रवरसेन को भी वह अपने मार्ग से हटाने के मनसूबे कर रहा था! लेकिन इस लौंडिया ने उसके सारे इरादों को धूल में मिला दिया। अनार्यता की हद हो गई! कैसा धोखा खाया उसने! स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इस प्रकार कौटिल्य-नीति का आचरण होगा और मगधपति की उसी के प्रासाद में हत्या कर दी जायेगी! वार मगधपति पर नहीं उसी की छाती पर किया गया था। आघात के लिए प्रेरित किया था हीन चन्द्रगुप्त को इसी लौंडिया ने! सब-के-सब अनार्य आचरण पर तुले हुए थे। आमने-सामने का युद्ध होता तो वह समझ लेता एक-एक से, देख लेता कि कौन कितने पानी में है! परन्तु लड़ने का साहस ही किसमें था? ये कपटी तो अनार्यों की भाँति कपट-लीला पर भरोसा किये हुए थे।

योद्धा था वह और उसके मन-मस्तिष्क में महान युद्धों की ही बात आ

सकती थी। प्रचण्ड युद्ध होता। वह सबको पराजित कर मगधपति का रक्षक बनता। वैशाली को कमर मद्रा के लिए तोड़कर रख देता। प्रवरसेन आता तो बैठा रहता एक कोने में। उस बूढ़े से भला क्या झगड़ना! रुद्रसेन जैसा इसका था वैसा ही प्रवरसेन का भी तो था। और रुद्रसेन के सिवा उनका अपना और था ही कौन? कल्याण वर्मा और रुद्रसेन को वह अपने संरक्षण में लेता। उनको अपने अनुकूल करता, उनका रक्षक बन जाता, और उन्हें अपने आश्रित बनाकर वह बिना युद्ध के ही भारत का सम्राट बन जाता।

परन्तु बुरा हो इस लौंडिया का, ऐसा धोखा दिया, ऐसी कपट चाल चली कि उसके सारे इरादे धूल में मिल गए। अनार्यता की हद हो गई।

वह घायल सिंह की भाँति क्रोध से बावला बना प्रकोष्ठ में घूम रहा था। हरिषेण, तिलभट्टक और कुमारदेवी उससे मिलने के लिए आनेवाले थे। वह उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

प्रतीक्षा करते हुए जब वह लगभग ऊब गया, उसका पारा सातवें आसमान तक पहुँच गया तब द्वारपाल ने आकर निवेदन दिया—जय हो महाराज धारार्भाश की! देवी, मंत्रीश्वर, सेनापति आदि आने की अनुमति चाहते हैं।

'अबे, आ क्यों नहीं जाने देता उन्हें!' बूढ़े ने कड़ककर कहा, 'बहुत आदर-मान करके वध करने की यह प्रथा चाणक्य से सीखे हो क्या? और हर बार एक इर्भा को क्या आजमाया करते हो? कभी तो कोई नया पैंतरा दिखाओ।'

द्वारपाल प्रणाम करके लौट भी गया था।

थोड़ी ही देर में सब वहाँ आ पहुँचे। सब के आगे कुमारदेवी थी। उसने दोनों हाथ जोड़कर और सिर नवाकर गणपतिनाग को प्रणाम किया। उसका यह विनय बूढ़े के लिए जहर हो गया। कुमारदेवी के पीछे हरिषेण था और तिलभट्टक सबके अन्त में। श्रीषेण आया नहीं था। वह तो बूढ़े को यहाँ पहुँचाकर उसी समय वैशाली लौट भी गया था। सेना की दूसरी टुकड़ी लेकर उसे विन्ध्या के वन-पर्वतों की ओर जाना था। चन्द्रगुप्त चला ही गया था। यहाँ गणपतिनाग को अनुकूल करने के प्रयत्न किये जाने को थे।

यदि प्रयत्न फलीभूत न हुए तो उससे युद्ध किया जायेगा। वैशाली ने दोनों तरह की तैयारियाँ कर रखी थीं।

हरिषेण ने आगे आने पर दोनों हाथ जोड़कर कहा—महाराज धाराधीश, सबसे पहले तो हम अपने अपराधों की क्षमा चाहते हैं।

'देखो मंत्री हरिषेण, माना कि तुम कवि हो, परन्तु इस समय मैं कविता सुनने की मनःस्थिति में नहीं। कटे पर नमक छिड़कनेवाली बात मत करो। साफ-सुथरी भाषा में बोलो। बताओ, मैं बन्दी हूँ या मुक्त?'

'महाराज तो कभी बन्दी थे ही नहीं।'

'अच्छा, मैं कभी बन्दी था ही नहीं! तो "बन्दी हूँ" यह मेरा निरा भ्रम ही था! कृपया मेरे सारे भ्रमों का निवारण कर दीजिए। शिशु मगधपति यहाँ नहीं हैं, क्या यह भी मेरा भ्रम ही है? महाराज मगधपति की हत्या कर दी गई है, लेकिन इसे तो आप मेरा स्वप्न ही कहेंगे। तो सच क्या है? शिशु मगधपति इस समय कहाँ हैं? यहाँ इस समय शासन किसका है? सुन्दर वर्मा का हत्यारा कौन है? यह तो आप जानते ही होंगे कि सुन्दर वर्मा मथुरा के यादवों के सम्बन्धी थे। और मथुरा के यादव हमारे सम्बन्धी होते हैं। सारा नागकुल एक है। क्या हम हत्यारे का वध किये बिना छोड़ देंगे? सबसे पहले तो यह बताओ कि मगधपति की हत्या किसने की? उस हीनकुलोत्पन्न कारस्कर चन्द्रगुप्त ने, तुमने या कुमारदेवी ने? जिसने भी यह दुष्कृत्य किया वह हमारा शत्रु है। उसका वध किये बिना हम मानेंगे नहीं। बताओ कौन है हत्यारा?'

हरिषेण क्षुब्ध हो उठा। क्या उत्तर दे यह सहसा उसे सूझ न पड़ा।

लेकिन उसे उत्तर का अवसर दिये बिना ही कुमारदेवी ने तपाक से कहा—राजन्, उनकी हत्या तो मैंने की है!

'हत्या तू ने की है? ओ लड़की, तू राजकुल की नहीं; अनार्य है तू। अनार्यता की हद कर दी है तूने! कपट से तूने मगधपति का वध किया। कपटियों से युद्ध नहीं किया जाता। यदि तू ने मगधपति की हत्या की है तो यह ले....'

गणपतिनाग रोष से काँपता हुआ खड़ा हो गया। उसने म्यान से अपनी तलवार खींच ली। फिर कड़ककर बोला—तुम सब आ जाओ! मैं अकेला ही काफी हूँ। इस महल में तुम सब मारे जाओ या फिर मैं ही मर जाऊँ! आगे बढ़ो....

और वह दो कदम पीछे हटकर पैतरा बदलकर खड़ा हो गया।

लेकिन उसी समय प्रवरसेन का सन्देशवाहक सेनापति ग्रामबल वहाँ आता दिखाई दिया।

गणपतिनाग उसे देखकर ठिठक गया। इतने में ग्रामबल वहाँ आ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला—महाराज, महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं? धाराधीश, नागकुलावतंस क्या एक नारी की हत्या करेंगे? भारत-भर में निन्दा होने लगेगी महाराज! शान्त हो जाइए। महाराज प्रवरसेन ने भी इन संवादों को सुना है और उनके भी रोष का पार नहीं। उन्होंने युद्ध का निश्चय है। आपका यह कृत्य तो हत्या कहा जायेगा। महाराज भी युद्ध करें, हत्या नहीं। मैंने इन सबसे कह भी दिया है। हम इन अपराधों का दंड आमने-सामने युद्ध के मैदान में देंगे।

'ठीक है! मैं भी तुम्हारे साथ तुम्हारा मित्र बनकर आऊँगा।' गणपति-नाग ने कहा, 'मंत्री हरिषेण, तुममें शक्ति हो तो मुझे रोक लो। मैं खुले शब्दों में चुनौती देता हूँ कि हम दोनो साथ आयेंगे।'

'महाराज धाराधीश, भले ही प्रवरसेन आयें भले ही आप आयें। पाटली-पुत्र-वैशाली अपनी सामर्थ्य के अनुसार रणक्षेत्र में आपका स्वागत करेंगे। लेकिन एक बात आप अच्छी तरह समझ लें,' कुमारदेवी ने कहा, 'एक दिन आपको और सभी को भारत-चक्रवर्ती के चरणों में झुकना होगा। हम आप-को झुकाना नहीं चाहते। आप झुकें, यह हमारा अभीष्ट भी नहीं। पाटलीपुत्र को निर्बल जनों के हाथ में आप रखना चाहते हैं केवल इसलिए कि बिना युद्ध किये आप उसके स्वामी बन सकें। लेकिन आपकी यह नीति विदेशी आक्रान्ताओं को आकर्षित और आमंत्रित करनेवाली है। वैसे आप भी जानते हैं कि पाटलीपुत्र पर पूरे बारह वर्षों में भी अधिकार नहीं किया जा सकता। लेकिन खैर, जैसा आपको ठीक लगे। शान्ति चाहते हों तो हमारा मैत्री का

हाथ अब भी प्रस्तुत है। आप अपने प्रदेश में सुखपूर्वक रहें, इस ओर आने का नाम न लें। इतनी दूर से यहाँ का शासन असम्भव है, अस्वाभाविक है। यह मोटी-सी बात आपकी समझ में न आती हो तो खुशी से लड़ने के लिए आइए। हम तैयार हैं। युद्ध हम नहीं चाहते, लेकिन जानते हैं कि युद्ध के बिना भारत एक नहीं हो सकता। उस युद्ध का सेनापति भी यहीं का होगा, इसी पाटलीपुत्र का—मैं उसे हवा में देख रही हूँ।'

'क्या खूब! तुझे तो दिन में भी तारे दिखाई देते हैं। लेकिन मैंने अपनी बात कह दी। मैं योद्धा हूँ, राजवंश का हूँ, नागकुलोत्पन्न हूँ। प्रतिशोध लिये बिना हम शत्रु को छोड़ते नहीं। मैं भगवान स्वर्णबिन्दु शंकर का उपासक हूँ। तक्षकदेव हमारे कुल-देवता हैं। विष पीना हमारे लिए सरल है, पर अपमान को पीना असम्भव। मैंने कह दिया कि मैं महाराज प्रवरसेन के साथ सेना लेकर आऊँगा....हम एक हैं....'

'अच्छी बात है धाराधीश, आप अवश्य आइए और दोनों एक हैं तो सदा एक ही रहिए....'

'लेकिन कहीं तुम्हारे मन में न रह जाये कि इसे यहाँ रोक लेते तो अच्छा होता। हो साहस तो आ जाओ मुझे रोकने। देख लो। तुम भी पद्मावती का पानी....'

'हम किसी को रोकते नहीं। सन्देशों को हम पवित्र समझते हैं। सन्देश-वाहक हमारे यहाँ अवध्य और अक्षत होता है। आप मुक्त हैं, जा सकते हैं।'

'तो इतने दिन मैं बन्दी था?'

'हमने आपको बन्धन में नहीं रखा था।' कुमारदेवी ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'आपका जो उन्माद अभी सेनापति ग्रामबल ने देखा, वैसा ही दौरा आपको उस समय पड़ गया था। हमने आवश्यक समझा कि कुछ समय तक आपके विश्राम की व्यवस्था कर दी जाये। आप मुक्त हैं। जब जी चाहे जा सकते हैं। हमारे विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ भी कर सकते हैं।'

'क्या तुम मार्ग में मेरा वध करना चाहती हो।'

कुमारदेवी ने ताली बजाई। द्वारपाल के आने पर उसने आदेश दिया:—धनुर्धर सेनापति को इसी समय उपस्थित करो। महाराज धाराधीश को ठेठ

पद्मावती की सीमा में वह स्वयं छोड़ आयें। कहो, उन्हें महाराज के साथ जाना होगा।

'बस, बस, रहने दो! हमें इस सम्मान की कोई आवश्यकता नहीं। हम अपने ही चले जायेंगे। तुम तैयार रहना।' नागराज ने फुँफकारकर कहा।

'हम तो तैयार ही हैं नागराज!' कुमारदेवी ने धनुष की टंकार-जैसे स्वर में कहा, 'जब आपका जी चाहे आइए। इतना तो हम भी जानते हैं कि भारत का चक्रवर्ती-पद बच्चों का खेल नहीं। एक युद्ध नहीं, अनेक युद्ध और महान युद्ध होंगे। देश को अग्नि-स्नान की आवश्यकता है, जल-स्नान की नहीं। अग्नि से ही देश को शुद्ध किया जायेगा, जल से वह अब शुद्ध हो नहीं सकता।'

'वाह, वाह! हरिषेण ने बोलना और बातें करना तो तुझे खूब सिखा दिया है री लड़की! परन्तु तेरा वह छोकरा सेनापति, वह हीनकुलोत्पन्न कारस्कर कहाँ है?'

'आयेगा, वह भी आयेगा धाराधीश। लेकिन वह आया तो आपकी सफेदी में धूल लग जायेगी।'

उसके बाद दोनो चुप, एक-दूसरे को घूरते खड़े रहे। अब कुछ कहना व्यर्थ ही होता।

अन्त में सेनापति ग्रामबल ने कहा—देवी, आज हम चले जाना चाहते हैं।

'सेनापति, मन तो मेरा भी चाहता है कि आप लोगों के साथ चलूँ। आपकी विनोद-वार्ताएँ सुनकर मन प्रसन्न होगा और मार्ग भी सुखद हो जायेगा। और जब पुनः मिलेंगे तो इस परिचय के आधार पर एक-दूसरे को अधिक अच्छी तरह पहचान सकेंगे। जब हमारी प्रत्यंचाएँ खिंची न हों तो हम मित्र भी बहुत अच्छे हो सकते हैं, यह सिद्ध करने के लिए मैं साथ चलना चाहती हूँ; क्योंकि मैं जानती हूँ कि अन्त में आप सब हमारे सहायक ही होंगे।' कुमारदेवी ने बात का सारा पहलू ही बदल दिया। उसके साथ वातावरण भी हलका हो गया।

'लेकिन देवी, मेरी ऐसी धारणा है कि आपने जो उत्तर दिया वह उचित नहीं। आप कहना कुछ चाहती हैं और कह कुछ जाती हैं।'

'ऐसी बात तो नहीं। परन्तु भारत के ऐसे दो महान वीरों की मैत्री भला किसे अच्छी न लगेगी ?

'तो वैशाली-पाटलीपुत्र को एक करने की बातें क्यों करती हैं ? क्यों उस हीनकुलोत्पन्न कारस्कर की रक्षा करती हैं ? क्यों शिशु राजकुमार की रक्षा का भार प्रवीर प्रवरसेन और नागराज-जैसों को सौंपकर निश्चिन्त नहीं हो जातीं ? वैशाली की कीर्ति सामान्य कोटि की तो है नहीं ! क्यों अपने हाथों उस नगरी को चौपट कर रही हैं ? एक बार विनष्ट हो जाने पर स्वर्ण सौध-शिखरों का निर्माण वहाँ पुनः न किया जा सकेगा। नगरों के खंडहरों से बड़ी कारुणिकता और कुछ नहीं होती देवी !'

'यह सब मैं जानती हूँ सेनापति ग्रामबल ! और आपने जो उत्तर दिया वह कितना भयंकर है, इसे भी जानती हूँ। एक नहीं अनेक युद्ध कितने भयंकर और विनाशक होते हैं, यह भी जानती हूँ।'

'और यह जानते हुए भी ?'

'विक्षुब्ध समुद्र की पर्वताकार लहरों पर खेलना मेरी घुट्टी में पड़ा हुआ है। संकटों का सामना करना मुझे विरासत में मिला है। अपने उत्तराधिकार की रक्षा मुझे करनी ही होगी। युद्धों से मैं भाग ही कैसे सकती हूँ। युद्ध मुझे करने होंगे, युद्धों को न्योतना होगा। नये भारत का निर्माण मुझे करना ही होगा....'

'युद्धों से ! युद्ध तो करते आये हैं विनाश। युद्धों से नये भारत का निर्माण कैसे होगा ?'

'कभी-कभी प्रजा को अग्नि से शुद्ध करना होता है।'

'अभी यह मधुर स्वप्न है, कविता है; बाद में मृगमरीचिका रह जायेगी देवी ! पछतावे का अग्निदाह ही शेष रहेगा।'

'विजेता तो सदैव विजय का ही वरण करते हैं। सेनापति, विजय ही उनका मानदंड और विजय ही उनकी कसौटी है, लेकिन बलिपथ के पथिक तो अदृश्य विजयों की फूलमालाएँ धारण करते हैं। उनके लिए कोई मान-

दंड, कोई कसौटी नहीं होती। उन्हें किस दंड से नापेंगे आप? पराजय उनका नापदंड नहीं। उनका नापदंड है वे विजय-परम्पराएँ जो किसी इतिहास में उनके नाम से लिखी नहीं होतीं। वे मनुष्य पर इतना निर्भर नहीं करते जितना महाकाल के इतिहास पर। इतिहास का वह महान क्षण इस समय उपस्थित है और वही हमें प्रेरित कर रहा है।'

ग्रामबल खड़ा हो गया। गणपतिनाग भी उठ आया।

'कविता बहुतों को जिलाती है, लेकिन अनेकों को मार भी डालती है।' ग्रामबल ने चलते-चलते कहा।

'कविता करना तो बड़ा सरल है....' गणपतिनाग ने कहा। वह अब कुछ शान्त हो गया था।

'....और जीवन में उसका आचरण तो और भी सरल है....' कुमारदेवी ने कहा।

'....स्वप्नद्रष्टाओं के लिए।' हरिषेण ने वाक्य पूरा कर दिया।

एक-दूसरे का अभिवादन और अभिनन्दन करते हुए वे इस प्रकार विदा हुए मानो उनसे अच्छे मित्र और कोई हों ही नहीं।

३०. गणपतिनाग की पराजय

ग्रामबल और गणपतिनाग पाटलीपुत्र से साथ-साथ चले। मार्ग में उन्होंने अनेक वार्ताएँ कीं; अनेक योजनाएँ बनाईं। उनकी समस्त चर्चाओं और सभी योजनाओं का मूल विषय एक ही था। किसी भी प्रकार चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र से निकालना चाहिए। उसके बिना शान्ति नहीं हो सकती, सन्धि नहीं हो सकती। वैशाली के साथ समझौता भी तभी हो सकता है। वैशाली को राजकुमार के संरक्षण का भार भी तभी सौंपा जा सकता है।

चन्द्रगुप्त के प्रति बूढ़े गणपतिनाग के तिरस्कार की कोई सीमा न थी। वह उसे हीनकुलोत्पन्न, अनार्य, कपटी, कुटिल और कारस्कर ही मानता था।

यदि चन्द्रगुप्त की विजय हुई, वह भारतपति बन गया, उसने मगध पर

अपना अधिकार कर लिया, पाटलीपुत्र में स्थिर हो गया तो देर-अबेर वाका-. टकों को, यौधेयों को, नागवंशियो को, मद्र, यादव, सौराष्ट्र के क्षत्रप और आनर्त के लाट सभी को अपना दास बना लेगा।

इसलिए मुख्य प्रश्न यह था कि भारतपति कौन हो—चन्द्रगुप्त या गणपतिनाग ?

इस प्रश्न का निपटारा युद्ध से ही किया जा सकता था।

गणपतिनाग और ग्रामबल ने मार्ग में ही एक योजना बना डाली।

जब प्रवीर प्रवरसेन पाटलीपुत्र पर आक्रमण करे तो गणपतिनाग उसकी सहायता करेगा। वह सेना लेकर उसके साथ जायेगा। अपने इष्टदेव भगवान स्वर्णबिन्दु शिव से अनुमति लेकर, एक अच्छा दिन देखकर; वह पद्मावती के लिए चल पड़ेगा। मार्ग में दोनो सेनाएँ मिल जायेंगी और साथ-साथ बढ़ती हुई पाटलीपुत्र को घेर लेंगी।

यद्यपि वे जानते थे कि पाटलीपुत्र को घेरना लोहे के चने चबाना है, परन्तु चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र से भगाने का और कोई मार्ग भी नहीं था।

कुमारदेवी को एक अन्तिम सन्देश देने का भी उन्होंने निश्चय किया। यदि वह चन्द्रगुप्त का साथ छोड़ दे तो उसे वैशाली की स्वामिनी स्वीकार कर लिया जायेगा। वैशाली को स्वतंत्र रहने दिया जायेगा। वह स्वतंत्र रहे और अपनी महत्ता तथा गौरव को बनाये रहे।

इस प्रकार निश्चय करने के बाद ग्रामबल कांचनका गया, गणपतिनाग पद्मावती आया। दोनो स्थानों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं।

इधर चन्द्रगुप्त ने भी अपने सत्रियों और गुप्तचरों का जाल विन्ध्य की पहाड़ी उपत्यका में फैला दिया। जिस मार्ग से गणपतिनाग आनेवाला था वहाँ सर्वत्र गुप्तचर टोह लेने के लिए बिठा दिये गए।

लेकिन काफी समय बीत गया और गणपतिनाग की हलचल के कोई समाचार सुनाई नहीं दिये।

काचदेव पद्मावती में स्वर्णबिन्दु शिव के मन्दिर में पहुँच गया था। वह नया शिष्य था, परन्तु भक्ति उसकी अपरम्पार थी। थोड़े ही दिनों में वह स्वर्णबिन्दु शंकर के मठपति का दाहिना हाथ बन गया।

तत्परता उसका मूलमंत्र था। बात मुँह से निकलने भी न पाती थी कि वह दौड़कर उसे पूरा कर देता था। सेवा के लिए उसकी यह आतुरता सभी को पसन्द आई। सभी उसकी ओर आकर्षित हुए और देखते-ही-देखते वह सबका प्रियभाजन बन गया।

घण्टों वह पूजा-पाठ में बिताता था। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते थे कि रात्रि की निःस्तब्धता में वह भगवान से बातें करता है; भगवान स्वयं उसके प्रश्नों का उत्तर देते और उसकी शंकाओं का समाधान करते हैं; स्वयं भगवान त्रिशूलपाणि का हाथ उसके माथे पर है।

इस सम्बन्ध में सत्य जो भी हो, परन्तु अपने स्वभाव के कारण वह सबका प्रिय था और इसी लिए यहाँ उसका मार्ग सुगम हो गया था।

एक बार काचदेव आधीरात के समय अकेला भगवान शंकर के समक्ष बैठा था।

वह सोच रहा था कि गणपतिनाग के प्रस्थान में विलम्ब क्यों हो रहा है? तैयारियाँ तो सब पूरी हो चुकी थीं। प्रवरसेन से सन्देशों का आदान-प्रदान भी हो गया था। एक बार ग्रामबल आकर लौट भी चुका था।

आज इसी बात की जानकारी प्राप्त करने के लिए वह मन्दिर में आकर बैठा था। सहसा उसने मन्दिर के बाहर किसी की आवाज सुनी। वह फुर्ती से शिवलिंग के पीछे छिपकर बैठ गया। थोड़ी ही देर में दो व्यक्ति अन्दर आते दिखाई दिये। गर्भगृह में आने पर काचदेव ने देखा कि उनमें एक गणपतिनाग था और दूसरा शंकर मन्दिर का मठपति।

वह साँस रोककर चुपचाप बैठा रहा।

मठपति शिवलिंग के आगे आसन लगाकर बैठ गया। दीये की मन्द ज्योति उसके ध्यानावस्थित आनन को प्रकाशित कर रही थी।

गणपतिनाग भी उसके समीप ही बैठा था।

बड़ी देर तक दोनो चुप बैठे रहे। चारों ओर शान्ति थी। बाहर भी सन्नाटा था। कहीं से कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ रहा था।

काफी देर मौन छाया रहा। घड़ी-पल युगों-से लम्बे प्रतीत होने लगे। अन्त में मठपति का स्वर सुनाई दिया। नेत्र उसके अब भी मुँदे हुए थे।

केवल ओठ-सम्पुट हिल रहे थे और उनमें से ध्वनि आती सुनाई दे रही थी।

उसने कहा—महाराज गणपतिनाग ! भगवान स्वर्णबिन्दु की आज्ञा है कि महाशिवरात्रि के दूसरे दिन, प्रत्यूष वेला में महाराज प्रयाण करें। विजय हो या न हो, क्योंकि विजय महादेव के हाथ में नहीं, महाकाल के हाथ में है, परन्तु पराजय तो कदापि न होगी। महाराज इस मंगल मुहूर्त में प्रयाण करें।

गणपतिनाग ने दोनों हाथ जोड़कर सिर नवा दिया, जो उसकी स्वीकृति का सूचक था। दो ही पल बाद मठपति और गणपतिनाग उठे और बाहर चले गए।

काचदेव भी उनके पीछे-पीछे तत्काल बाहर निकल आया। जो जानने के लिए आया था वह उसे मालूम हो चुका था। अब उसे भागना चाहिए। यदि उसने यह जानकारी चन्द्रगुप्त को ठीक समय पर नहीं पहुँचाई तो वैशाली और पाटलीपुत्र की अभी तक की सारी तैयारियाँ बेकार हो जायेंगी। यदि गणपतिनाग को पराजित नहीं किया गया तो न रहेगी वैशाली, न रहेगा पाटलीपुत्र और न रह जायेगा मगध ही।

एक क्षिप्रगामी अश्व की व्यवस्था उसके लिए पहले से ही कर दी गई थी। पद्मावती के दुर्ग के बाहर जंगल में वह अश्व अहर्निश कसा-कसाया खड़ा रहता था।

पद्मावती का मुख्य द्वार खुलते ही वह निकल जायेगा।

यह निश्चय करके वह अपने स्थान पर पहुँचा।

महाशिवरात्रि के दूसरे दिन प्रभात की पहली किरण के साथ गणपतिनाग अपनी समस्त सेना के साथ दुर्ग के बाहर निकल आया। अभी वही अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था। आगे चलकर वह पिछाये को सँभालेगा और हरावल की कमान मथुरा के राजकुमार नागसेन को, जो उसका सम्बन्धी था, सौंप दी जायेगी। अनेक युद्धों की अनुभवी अपनी सारी अश्व सेना को उसने साथ ले लिया था। दुर्ग से निकलते ही उसने कूच का आदेश दे दिया और सेना तेज़ी से आगे बढ़ी।

यदि कांचनका और पद्मावती नगरियों के दो उद्भट वीरों ने दो दिशाओं से आकर एक साथ पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर दिया तो केवल मगध का

हो नाश नहीं होगा, पाटलीपुत्र नगर का भी पतन हो जायेगा और वैशाली को भी खेत रहना होगा। मगध-साम्राज्य के अन्तिम अवशेष गणपतिनाग और प्रवरसेन के पाँवों-तले रौंदे जायें, यह बात काचदेव के हृदय में शूल की भाँति खटक उठी। यदि ऐसा हुआ तो मगध मिट जायेगा, पिता का गौरव नष्ट हो जायेगा, मेरी महत्त्वाकांक्षाएँ छिन्न-भिन्न हो जायेंगी। तब भारत का चक्रवर्ती या तो गणपतिनाग होगा अथवा प्रवरसेन। इसलिए इस सन्देश को शीघ्रातिशीघ्र पहुँचाना होगा। इसी सन्देश पर भारत का भाग्य निर्भर करता है। काचदेव को एकदम दौड़ पड़ना चाहिए।

लेकिन किसी को यह सन्देह नहीं होना चाहिए कि वह यहाँ से भागा है। यदि सन्देह हुआ तो उसके पीछे सैनिक दौड़ पड़ेंगे और सारी बात ही बिगड़ जायेगी। अपने जाने पर किसी को सन्देह न हो इसलिए काचदेव ने एक चाल चली। हरिषेण की संगति से वह संस्कृत में कुछ तुकबन्दी करने लगा था। उसने संस्कृत में श्लोक लिखकर मठपति से क्षमायाचना की। फिर इस बात का संकेत किया कि माता नर्मदा बुला रही है और मैं उसका पवित्र जल लेने के लिए जा रहा हूँ। भगवान स्वर्णबिन्दु शंकर का ही ऐसा आदेश हुआ है, इसलिए बिना किसी से मिले-जुले चला जा रहा हूँ। मैंने प्रतिज्ञा की है कि नर्मदा-जल से भगवान शिव का अभिषेक किये बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा, इसी लिए इतने आकस्मिक रूप से जा रहा हूँ। जितने आकस्मिक रूप से गया हूँ उतने ही आकस्मिक ढंग से एक दिन लौट भी आऊँगा; क्योंकि भगवान स्वर्णबिन्दु की शरण के बिना मुझे कहीं सुख नहीं मिलेगा। भगवान के श्रीमुख से आज्ञा प्राप्त होने पर ही मैं जा रहा हूँ, मेरे अपराधों को सबजन क्षमा करें।

इस प्रकार श्लोक लिखकर उसने भगवान शिव के चरणों में कागज रखा और चल दिया। उद्देश्य यही था कि मठपति की दृष्टि उस काग़ज़ पर पड़ जाये, जिसमें किसी को सन्देह न हो।

फिर वह अपने अश्व पर आरूढ़ होकर दौड़ पड़ा। लेकिन दौड़ पड़ा कहना गलत होगा। वास्तव में वह उड़ा जा रहा था। वह शीघ्रातिशीघ्र मगध की सेना के पास पहुँच जाना चाहता था।

तीसरे या चौथे दिन श्रीषेण के सैनिकों से उसकी भेंट हुई ! जिस दर्रे में गणपतिनाग को रोकने का निश्चय किया गया था वहाँ से सैनिक काफी अन्तर पर थे। उनका काम था छिपे रहकर गणपतिनाग के पिछाये को दबाते हुए आगे बढ़ना।

श्रीषेण को मुख्य सेना से सम्पर्क स्थापित करने की अनुमति नहीं थी। न किसी को यह पता लगना चाहिए कि वह यहाँ है। उसे अपनी सैनिक टुकड़ी को पूरी तरह छिपाकर रखना होगा। उसका काम केवल इतना था कि जब गणपतिनाग अपना आगे का मार्ग रुका हुआ देखे और पीछे लौटने का प्रयत्न करे तो लौटना उसके लिए असम्भव हो जाये।

श्रीषेण से ही काचदेव को पता चला कि उसकी सेना के समानान्तर दोनो बाजुओं पर तिलभट्टक की सैनिक टुकड़ी आ रही है। यह टुकड़ी विन्ध्य की पहाड़ी उपत्यका में धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। इस टुकड़ी के सैनिक दिन में छिपे रहते और रात में अपनी मंजिल पूरी करते थे। इनका काम गणपति-नाग को दोनो बाजुओं से दबाना था। चन्द्रगुप्त सामने की ओर से गणपति-नाग का पथ अवरुद्ध करने को था।

गणपतिनाग त्वरित गति से और निःशंक आगे बढ़ता चला जा रहा था। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था और न वह सोच सकता था कि उसे घेरने के लिए ऐसी योजना बनाई गई है। उसने जीवन-भर आमने-सामने के युद्ध किये थे और सदैव अपनी प्रत्यंचा के जोर पर विजयी हुआ था। फिर उसे अपनी शक्ति पर आवश्यकता से अधिक विश्वास था। आत्मतुष्टि का वीरोचित दुर्गुण भी उसमें प्रचुर मात्रा में विद्यमान था।

यों वह वीर था, चतुर था, सतत जागरूक रहनेवाला था, गुप्तचर उसे घड़ी-पल की खबर पहुँचाते रहते थे। इसी लिए तो वह अकेला वैशाली पहुँच गया था। परन्तु इधर यवनों, कुशानों और यूनानियों ने जो नई मोरचेबन्दियाँ शुरू की थीं, शत्रु को भुलावे में डालकर घेरने और सहसा आक्रमण करके नष्ट कर देने की नई युद्ध-योजनाएँ आयोजित की थीं, उनमें गणपतिनाग का जरा भी विश्वास नहीं था। इन व्यूह-रचनाओं को वह वीरत्व का अप-मान समझता था।

चन्द्रगुप्त ने गणपतिनाग की इन दोनो स्वभावगत दुर्बलताओं से लाभ उठाने का निश्चय किया।

गणपतिनाग तेजी से आगे बढ़ता चला गया। प्रशस्त उपत्यका-मार्ग से उसकी सेना निर्विघ्न आगे बढ़ती हुई उस दर्रे के मुँह की ओर मुड़ गई जिस में चन्द्रगुप्त उसे फँसाना चाहता था। यह दर्रा काफी लम्बा और सँकरा था। इसमें होकर जाने से गणपतिनाग का कई योजनों का चक्कर बच जाता था।

शत्रु को दर्रे की ओर बढ़ते देख चन्द्रगुप्त वहाँ से दूर हट गया। गण-पतिनाग ने दर्रे में और उसके चारों तरफ गुप्तचर भेजकर पता लगाया। उन्होंने लौट आकर सूचना दी कि मार्ग निरापद है और कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता। पूरी तरह आश्वस्त हो लेने के बाद ही गणपतिनाग ने दर्रे में प्रवेश करने के आदेश दिये। दर्रा इतना सँकरा था कि उसमें एक साथ एक कतार में केवल तीन अश्वारोही चल सकते थे। गणपतिनाग ने अपने सैनिकों से यह ताकीद भी कर दी कि दर्रे को शीघ्रता से पार करें, मार्ग में कहीं कोई एक क्षण के लिए भी न रुके।

सूर्यास्त के बाद अश्वारोहियों ने दर्रे में प्रवेश किया। अन्धकार को उन्होंने अपना सहायक ही समझा—रात में कोई देख भी न पायेगा और सही-सलामत दर्रा पार कर लेंगे।

अश्वारोहियों के आगे गणपतिनाग के मित्र मथुरा के यादव कीर्तिसेन का युवक पुत्र नागसेन था। वह आया था कौटुम्बिक रीत्यानुसार अतिथि बन-कर। यहाँ उसने यह महान आयोजन देखा तो साथ हो लिया। वह बड़ा वीर और रणकुशल सेनानी था। उसका उत्साह बढ़ाने के लिए गणपतिनाग ने उसी को सेनानायक बनाकर स्वयं पिछाया सँभाला था।

सेना धीरे-धीरे, बिना किसी प्रकार के सन्देह के आगे बढ़ती जा रही थी। लगता था कि दर्रे को बस यों चुटकियों में पार कर लेंगे। इतने में सहसा क्या देखते हैं कि चन्द्रगुप्त सामने मार्ग रोके खड़ा है।

नागसेन ने देखा और स्थिति की भयंकरता का विचारकर एक अश्वा-रोही को तत्काल गणपतिनाग के पास पीछे की ओर भेजा। यदि गणपति-

नाग के पिछाये के अश्वारोहियों ने दर्रे में प्रवेश न किया होगा तो सेना को सकुशल लौटाया जा सकेगा।

परन्तु पद्मावती की पूरी अश्वारोही सेना दर्रे में प्रवेश कर चुकी थी। गणपतिनाग भी दर्रे के अन्दर आ गया था। नागसेन का सन्देश पाकर उसने अश्वारोहियों को पीछे हटकर निकलने का आदेश दिया। उस सँकरे दर्रे में मुड़कर निकलना तो अश्वारोहियों के लिए असम्भव ही था, पीछे हटकर ही वे निकल सकते थे।

कुछ सैनिक पीछे हटे भी; लेकिन इतने में वह रास्ता भी रुक गया। तिलभट्टक की टुकड़ी ने दोनो ओर से बढ़कर उनको घेर लिया। उसके पीछे श्रीषेण की टुकड़ी वैशाली को पताका उड़ाती बढ़ी चली आ रही थी।

अब गणपतिनाग के अश्वारोही दोनों ओर से घिर गए। न आगे बढ़ सकते थे, न पीछे हट सकते थे। गणपतिनाग विवश क्रोध से फुफकार उठा। कहाँ तो वह सोच रहा था कि कई योजनों का चक्कर बच जाने से पाटलीपुत्र के निकट पहुँच रहा होगा और कहाँ इस दर्रे में फँस गया! दो घड़ी में पार कर जाने के बदले अब यहीं रुका रह जाना होगा। न आगे बढ़ सकता था, न पीछे हट सकता था। न लड़ सकता था, न हार मान सकता था। केवल वहाँ खड़ा रह सकता था। अवश्य किसी ने भेद पाकर शत्रु को सचेत कर दिया था और शत्रु ने भी मिनट-मिनट का हिसाब जोड़कर उसे यहाँ फाँस लिया था।

वह क्रोधोन्मत्त होकर ललकार उठा—अरे ओ अनार्य! आ जा मैदान में। हम दोनो द्वन्द्व-युद्ध के द्वारा आपस में निपटारा कर लें। यदि तू जीता तो पद्मावती तेरी हुई; यदि मैं जीता तो पाटलीपुत्र मेरा हुआ। आ, कुछ समय के लिए हम महाभारतकालीन भारत को पुनर्जीवित कर लें!

लेकिन उसकी ललकार दर्रे की दोनो दीवारों से टकराकर निष्फल लौट आई। किसी ने उसकी चुनौती का जवाब न दिया।

गणपतिनाग ने अपने दोनो ओर देखा। दर्रे की चालीस-चालीस हाथ ऊँची और एकदम सीधी चढ़ाई को लाँघकर बाहर निकलना लगभग असंभव

ही था। कुछ सोचकर उसने अपना अश्व आगे लिया। घोड़े को दौड़ाते हुए वह वहाँ आया जहाँ नागसेन ठिठका खड़ा था।

गणपतिनाग ने उसे तीखे और ऊँचे स्वर में कहा—बेटा नागसेन, यदि मैं न रहा तो तू पद्मावती की रक्षा करना। मैं आगे बढ़ता हूँ। इस शूद्र को अभी मार गिराता हूँ, फिर चाहे इस प्रयत्न में मेरे टुकड़े ही क्यों न उड़ जायें!

और नागसेन अभी कुछ कहने भी नहीं पाया था कि वह बादल से गिरनेवाली बिजली की भाँति अपनी लम्बी तलवार लिये चन्द्रगुप्त के सैनिकों पर टूट पड़ा।

उस अकेले ने चन्द्रगुप्त की सेना में कुहराम मचा दिया। अश्वारोही गिरने लगे। घोड़े भागने लगे। सैनिक काँपने लगे। कब उसने तलवार उठाई कब हवा में लहराई, कब वह शत्रु की गरदन पर पड़ी—कुछ भी दिखाई नहीं देता था। प्राणों का मोह छोड़कर वह तलवार चला रहा था। दायें-बायें शत्रु के सैनिक कट-कटकर गिरते जाते थे और वह सुए की नोक की भाँति आगे और आगे धँसता ही चला जाता था।

जो उठा वह गिरा। जो सामने आया वह मारा गया। जो बोला वह काटा गया। जिसने रास्ता नहीं दिया उसके टुकड़े कर दिये गए। वह बूढ़ा जवानों के जोश से तलवार नचा रहा था। सिर पर मौत नाच रही थी और वह शत्रु-सैनिकों को मौत के घाट उतारता आगे बढ़ रह था।

जब वह चन्द्रगुप्त के समीप पहुँच गया तो सिंह की भाँति दहाड़कर बोला—अरे ओ कारस्कर, अरे ओ शूद्र, अब अपनी मृत्यु से गले मिल....

यह कहकर उसने अति प्रचण्ड वेग से चन्द्रगुप्त पर अपनी तलवार चला दी। वार चुकाने के लिए चन्द्रगुप्त घोड़े से उछलकर दूसरी ओर कूद पड़ा। घोड़ा वहीं ढेर हो गया। गणपतिनाग ने पैतरा बदलकर पुनः तलवार खींची। लेकिन उसी समय पीछे से किसी की तलवार उसकी तलवार के साथ जोर से टकराई।

गणपतिनाग के हाथ से तलवार झन्नाती हुई दूर जा गिरी। वह तड़पकर पीछे की ओर देखने के लिए मुड़ ही रहा था कि किसी ने उसे अपनी

बाँहों में कस लिया। बूढ़े ने पहचाना। वह काचदेव था। मुक्त होने के लिए काचदेव को झिंझोड़ता हुआ वह क्रोधोन्मत्त स्वर में चिल्ला उठा—अरे ओ विश्वासघाती के पूत, ओ सँपोले, तू ही है पीछे से वार करनेवाला! पापी, प्रवंचक! तू तो वहाँ जोगी बना बैठा था न?

'था, तब था।' काचदेव ने कहा। परन्तु इतने में उसकी पकड़ शिथिल पड़ गई और नागराज उछलकर दूर जा खड़ा हुआ। वह अपनी तलवार लेने के लिए झुक ही रहा था कि उसके हाथ-पाँव और शरीर में रज्जु-बन्धन लिपट गए!

विवश क्रोध से हाँफता हुआ वह अपने चारों ओर देखने लगा। नागसेन को उसने अपने पीछे आते देखा। लेकिन दूसरे ही क्षण वह भी रज्जु-बन्धनों मे लिपटा हुआ था।

अब बूढ़ा निराश हो गया। दर्रे को गुँजाते हुए बुलन्द स्वर में उसने कहा—ओ शूद्र, आ! अब भी हम द्वन्द्व-युद्ध के द्वारा निर्णय कर लें। शस्त्र से न सही, मुष्टिका से ही लड़ लें....

लेकिन चन्द्रगुप्त ने अत्यन्त शान्त स्वर में उत्तर दिया—बूढ़े गणपतिनाग, तुम व्यर्थ ही गर्जन-तर्जन कर रहे हो! यह भी द्वन्द्व-युद्ध ही है। सैनिक तो सब परे खड़े हैं, पत्थर की मूर्तियों की भाँति। अपने प्राणों की तो ठीक, अब तुम अपने इस अतिथि नागसेन के प्राणों की कुशल मनाओ! इस नाग के बेटे को हम कदापि जीवित नहीं छोड़ेंगे। यह अभी और यहीं मौत के घाट उतारा जायेगा....

यह सुनकर गणपतिनाग तड़प उठा। उसने कहा—अरे ओ कारस्कर, यह मेरा अतिथि है, मेरे मित्र का पुत्र है। छोड़ दे, इसे छोड़ दे!

'छोड़ने के भी नियम होते हैं नागराज! जो युद्ध में पराजित होता है उसे अपनी पराजय स्वीकार कर उन नियमों का पालन करना पड़ता है।

'बता ओ भीरु, क्या नियम हैं तेरे? लुटेरा क्या चाहेगा, या प्रदेश या स्वर्ण? बता तुझे क्या चाहिए—प्रदेश या स्वर्ण?'

'न मुझे प्रदेश की भूख है, न स्वर्ण की। प्रदेश तो यह सारा देर-अबेर भारत-चक्रवर्ती का होगा ही। स्वर्ण मैं जब जितना चाहूँगा मेरे चरणों में

होगा। यदि तुम नागसेन की मुक्ति चाहते हो तो जैसा मैं कहूँ करना और गौरव के साथ उसका पालन करना होगा।'

'गौरव के साथ पालन करना होगा? बता, क्या नियम है तेरा?'

'विशेष कुछ नहीं, केवल भागीरथी का जल लेकर आपको प्रतिज्ञा करनी होगी।'

'क्या? प्रतिज्ञा करनी होगी? किस बात की प्रतिज्ञा?'

'केवल यह कि जहाँ आप दौड़े जा रहे हैं वहाँ जायेंगे नहीं। प्रवरसेन के पास नहीं जायेंगे, पाटलीपुत्र नहीं आयेंगे। आक्रमण में भाग ले नहीं सकेंगे। गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा कीजिए और गंगा मैया आप को मुक्त कर देगी।'

'बातें तो सुनो इस कापुरुष की! युद्ध से काँपता है और युद्ध करने को दौड़ता है! हम ऐसी प्रतिज्ञा सौ जन्म भी नहीं करेंगे! चन्द्रगुप्त, तुझसे जो करते बने कर ले। मैं यह खड़ा हूँ। इतने से जी न भरा हो तो और बाँध ले! ओ सैनिको, खड़े क्या हो? और रज्जु-बन्धन ले आओ। इस कापुरुष के मन में न रह जाये! इसे भी तो पता चले कि सिंह बन्धन में हो या मुक्त वह सदैव सिंह ही रहता है। हो हिम्मत तो अब भी द्वन्द्व-युद्ध कर ले। जो जीते वह पाटलीपुत्र का स्वामी हो। यदि तू जीता तो पाटलीपुत्र तेरा, हम उधर का रुख भी न करेंगे।'

'गणपतिनाग, अब ये सारी बातें निरी बकवास है। आप बन्धन में हैं, इसे आप भी जानते हैं। आपका मित्रपुत्र भी बन्धन में है। केवल प्रतिज्ञा करने पर ही बन्धन-मुक्ति सम्भव है।'

'और यदि प्रतिज्ञा नहीं की?'

'तो जहाँ आप खड़े हैं वहीं खड़े रहेंगे। जहाँ मैं खड़ा हूँ वहीं खड़ा रहूँगा। कल शाम तक हम इसी प्रकार खड़े रहेंगे। उसके बाद आप को पाटलीपुत्र के दुर्ग के अन्दर के तहखाने में ढकेल दिया जायेगा और हमें विवश होकर आपकी सारी सेना का संहार कर डालना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग हमारे सामने नहीं रह जायेगा।'

'अरे ओ हत्यारे, यह तू कैसी बात करता है? लेकिन जो झुकता है वह

नाग नहीं। जा तुझसे जो करते बने कर लेना। मैं झुकूँगा नहीं, न प्रतिज्ञा ही करूँगा।'

लेकिन यह सारा समय नागसेन मन-ही-मन विचार कर रहा था : वीरता प्रदर्शित करने का यह समय नहीं, सेना भी किसी काम की नहीं। चन्द्रगुप्त चाहे तो सारी सेना का नाश कर सकता है और वह यह करके रहेगा। फिर कहाँ होगा देश और कौन-सा होगा अवसर? इस समय कोई रास्ता निकालना चाहिए।

तभी चन्द्रगुप्त ने कहा—गणपतिनाग, मैं कारस्कर हो सकता हूँ, शूद्र हो सकता हूँ, क्षुद्र भी हो सकता हूँ, हीनातिहीन हो सकता हूँ; परन्तु आप इस बात को कान खोलकर सुन लीजिए कि कल सायंकाल तक आपकी सेना सुरक्षित रहेगी, उसके बाद हम उसका विनाश कर डालेंगे। इसके अतिरिक्त हमारे सामने और कोई मार्ग नहीं है। एक भी सैनिक यहाँ से जीवित लौटने नहीं पायेगा। अब आप स्वयं सोचकर देख लीजिए।

गणपतिनाग काँप उठा। उसके सैनिक मारे जायें और वह खड़ा देखता रहे! ऊँ-हुँ! परन्तु ऐसे हत्यारे से बात भी क्या की जाये! निरर्थक है, निरर्थक है!

लेकिन तभी नागसेन ने कहा—मुझे दो क्षण नागराज से मिल लेने दीजिए।

नागराज के पास ले जाने पर उसने अत्यन्त मन्द स्वर में कहा आपको प्रतिज्ञा करनी है पाटलीपुत्र पर आक्रमण न करने की। वैशाली पर आक्रमण न करने की तो कोई प्रतिज्ञा है नहीं! तो अभी प्रतिज्ञा कर लीजिए। गंगा-जल लेकर कह दीजिए कि हम पाटलीपुत्र पर आक्रमण नहीं करेंगे। इन कपटियों के साथ कपट से ही काम करना होगा। हम वैशाली पर आक्रमण करेंगे। इस पापी को पाटलीपुत्र के बाहर घेरेंगे। आप हैं, मैं हूँ, अहिछत्र के अच्युतदेव भी हमारा साथ देंगे। इसे ऐसा घेरेंगे कि न यह भाग सकेगा न लड़ सकेगा; घुटनों के बल गिरकर इसे नाक रगड़नी पड़ेगी। अभी यह अपने को विजयी समझना चाहता है तो समझ लेने दीजिए। अन्तिम विजय का निपटारा तो उसी समय होगा। इसलिए अभी गंगाजल लेकर कह दीजिए—

पाटलीपुत्र पर हम आक्रमण नहीं करेंगे, यह हमारी प्रतिज्ञा है....'

गणपतिनाग ने भी देखा कि इस समय और तो कोई उपाय है नहीं। अपनी सेना का संहार वह अपनी आँखों देख नहीं सकता। ज़िद पर अड़ा रहा तो सारी सेना की हत्या का पाप स्वयं उसी के सिर होगा।

वह उच्च स्वर में बोल उठा—चन्द्रगुप्त, तू अनार्य होकर भी गंगाजल को मानता है, उसका आदर करता है, यह बहुत बड़ी बात है। चलो एक हत्यारा भागीरथी को पवित्र तो मानता है। हमारे लिए गंगा-यमुना माता के समान हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ....

३१. मगधपति का पद समाप्त हुआ

पाटलीपुत्र में सन्देश प्राप्त हुआ। गणपतिनाग-जैसे महावीर ने पराजय स्वीकार कर ली है। चन्द्रगुप्त की जीत हुई है। गणपतिनाग ने वचन दिया है। पाटलीपुत्र पर उनका आक्रमण नहीं होगा।

नगर में समाचार प्राप्त होने पर पहले तो कइयों ने इस पर विश्वास ही नहीं किया!

और विश्वास होता भी कैसे? गणपतिनाग-जैसे महान वीर की पराजय और वह भी आजकल के चन्द्रगुप्त के हाथों?

परन्तु चारों ओर से यही संवाद आ रहे थे। पाटलीपुत्र पर मँडराते हुए भय के बादल छँट गए थे। चन्द्रगुप्त ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया था। लोकमानस पर इसका गहन प्रभाव पड़ा। जनसमुदाय उल्लसित हो उठा। चन्द्रगुप्त उनकी दृष्टि में महान वीर और विजेता बन गया। उसका स्वागत करने के लिए लोगों की उमंग और औत्सुक्य बाँध तोड़ने लगे। कुमारदेवी ने लोगों की उमंग को अपनी राह बहने दिया, अपना मार्ग बनाने दिया।

चन्द्रगुप्त की इस विजय ने सारे भारतवर्ष को यह विश्वास दिला दिया कि देश के नूतन भविष्य का निर्माता वही होगा।

नाग राजाओं को भी परम आश्चर्य हुआ। मद्र, मालव, यौधेय, सभी चकित हो उठे। मथुरा के कीर्तिसेन ने तो दाँतों-तले अँगुली दबा ली। इस एक घटना ने चन्द्रगुप्त के नाम के चारों दिशाओं में डंके बजा दिये।

चन्द्रगुप्त ने भी अभी तो गणपतिनाग को पद्मावती की ओर ससम्मान लौट जाने दिया था। इसके लिए उसकी प्रतिज्ञा ही काफी थी। अधिक अपमानित करने में यह आशंका भी तो थी कि कहीं उसके सम्बन्धी लोग उत्तेजित न हो जायें।

इस घटना का एक सुफल यह हुआ कि लोग-बाग चन्द्रगुप्त के हीन-कुलोत्पन्न होने की बात लगभग भूल ही गए, उसकी कृतघ्नता की बात भी किसी को याद न रही। मगधपति की हत्या करने का कलंक भी मिट गया। किसी को खयाल ही नहीं रहा कि उसने गणपतिनाग को आमने-सामने की लड़ाई में पराजित नहीं किया है, कपट-युद्ध में हराया है। उसके सम्बन्ध में लोगों को केवल एक बात दिखती थी, केवल एक बात याद रही थी और वह थी उसकी अप्रतिम वीरता।

धीरे-धीरे वह लोगों में विजेता प्रसिद्ध हो गया। लोग कहने लगे कि वह वीर है, कुमारदेवी उसकी प्रेरक शक्ति है; दोनों एक हो गए तो वैशाली और पाटलीपुत्र की एकता पत्थर की लकीर हो जायगी और दोनों मिलकर भारत का नेतृत्व कर सकेंगे।

जब प्रवीर प्रवरसेन को गणपतिनाग की पराजय और उसके द्वारा स्वीकृत सन्धि का पता चला तो क्षण-भर के लिए वह स्तम्भित ही रह गया। पहले तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। लेकिन अन्त में विश्वास करना ही पड़ा, क्योंकि हर आदमी के मुँह में यही बात थी। चारों ओर लोग विजयी सेनापति के गीत गा रहे थे, बिना लड़े ही विजय प्राप्त करनेवाले वीर की प्रशंसा कर रहे थे।

अब तो प्रवरसेन को स्वयं भी पाटलीपुत्र पर आक्रमण करने में संकट दिखाई देने लगा! एकदम आक्रमण करके पाटलीपुत्र को जीत ले तभी उसकी विजय हो सकती थी। यदि घेरा डालना पड़ गया तो पाटलीपुत्र का दुर्ग उसके दाँत खट्टे कर देगा। फिर घेरे के कई अनिष्टकारी परिणाम भी

हो सकते थे। उसकी प्रतिष्ठा को, उसके प्रवीर-पद को धक्का लगेगा; विदेशी आक्रमणकारी आने को लालायित हो उठेंगे; देश की आन्तरिक राजनीति में ही परिवर्तन हो जायेगा; चन्द्रगुप्त से द्वेष किसको किस घाट लगा देगा कुछ कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि मथुरा का यादव ही कुशानों का मित्र बन जाये। अहिछत्र तो अब भी विदेशियों का मुँह ताकता है। सौराष्ट्र के क्षत्रप कुशानों की शह में हैं ही। लम्बा घेरा गृहयुद्ध में परिवर्तित हो जायेगा। ऐसी स्थिति में उसे बहुत सोच-समझकर कदम उठाना होगा। अभी तो कुशल इसी में है कि चुप मारकर बैठा जाये। चन्द्रगुप्त की इस विजय के बाद पाटलीपुत्र के लोग सेनापति कुंजरक, महामंत्री मंत्रगुप्त और शिशु मगधपति का स्वागत करें यह सन्देहास्पद ही था। इसलिए उसने चुप लगा जाना और प्रतीक्षा करना ही उचित समझा! पौत्र रुद्रसेन की खातिर भी अभी तो चुप रहना ही ठीक था।

इस तरह सोच-विचारकर प्रवीर प्रवरसेन ने पाटलीपुत्र पर आक्रमण करने की अपनी योजना को सम्प्रति स्थगित कर दिया।

इधर कुमारदेवी ने चन्द्रगुप्त की लोकप्रियता से लाभ उठाने का निश्चय किया। पाटलीपुत्र नगर में डिंडिमिका-घोषणा करवाई कि विजयी सेनापति और विजय प्राप्त करके घर लौट रहे सैनिकों के स्वागतार्थ लोग शोभा-उत्सव का आयोजन करें।

घोषणा होते ही घर-घर सजाया जाने लगा। रंगमंच पर नर्तकियाँ विजय-नृत्य करती दिखाई देने लगीं। पण्य-वीथिकाओं का रंग-रूप ही बदल गया। चारों ओर से जन-समुदाय उत्सव में सम्मिलित होने के लिए उमड़कर आने लगा।

लेकिन कुमारदेवी ने निश्चय कर लिया था कि सारे उत्सव में वह किसी को भी मगधपति के नाम की जय-घोषणा नहीं करने देगी। अब पाटलीपुत्र अकेले मगध का नहीं, समस्त भारतवर्ष का प्रमुख नगर था; वह तक्षशिला से नर्मदा-तट तक के महान गुप्त-साम्राज्य की राजधानी था। चन्द्रगुप्त अब मगधपति नहीं, भारतवर्ष का पहला सम्राट बन रहा था।

आज युग की यही माँग थी। अनेक विदेशी आक्रमणकारी अब भी

भारत की सीमा पर डेरा डाले पड़े थे। वे प्रतीक्षा ही कर रहे थे। भारतवर्ष की विशालता जहाँ उसका बल था, वहीं उसकी निर्बलता भी थी। यदि देश में छोटा-सा भी गृहयुद्ध छिड़ जाता तो विदेशी-लुटेरों की बन आती। कुमारदेवी ने इस अवसर को अखण्ड भारत की स्थापना के लिए उचित समझा।

इसलिए उसने इस बार परिषद् के अधिवेशन की घोषणा नहीं की; केवल शोभा-उत्सव की घोषणा करवाई। लोगों के उत्साह को स्वयं मार्ग बनाने के लिए उसने मुक्त छोड़ दिया।

लोग पूरे उत्साह से उत्सव के आयोजन में लग गए। अल्पना से चौक पूरे जाने लगे। सुशोभन किये जाने लगे। अलंकृतियाँ बनाई जाने लगीं। नटों के क्रीड़ा-कौतुक आरम्भ हुए। गायन-वादन के जलसे होने लगे। नृत्य और नाटिकाओं के कार्यक्रम शुरू हो गए। मल्लयुद्ध, पशुयुद्ध, धनुर्योग, कृपाण-क्रीड़ाएँ आदि के समारोह होने लगे। सम्भाषण और कविता-कथा की प्रतियोगिताएँ की जाने लगीं। सारा पाटलीपुत्र नगर उत्साह के रंग में रँग गया।

और उत्सव के वातावरण में चार चाँद तो तब लगे जब ढेर-के-ढेर लिच्छवी नौकाओं में लद-लदकर पाटलीपुत्र आने लगे। दोनों नगर एक हो गए। दोनों की बस्तियाँ एक हो गईं। दोनों के लोग एक हो गए। दोनों के रंग एक हो गए।

लिच्छवी तो रंगों के प्रेमी होते ही हैं। अपने साथ वे अपने रंगों को भी लाये। उनकी रंग-छटा ने सारे पाटलीपुत्र नगर को मोह लिया। कई लिच्छवियों के रथ नीले रंग के थे। उनमें जुते अश्व नीले थे। अश्वों की वल्गाएँ नीली थीं। रथारोहियों के वस्त्राभूषण भी नीले थे। इसी प्रकार कइयों के रथ पीले, कइयों के हरे, कइयों के लाल, भूरे, और चित्र-विचित्र प्रकार के थे। दुर्ग-प्राचीर के बाहर कोसों तक वस्त्रों का एक नगर ही बस गया था। राग-रंग, खेल-तमाशे और मेले-ठेले से न लोगों को फुर्सत थी, न नगर को।

कुमारदेवी ने लोगों के उत्साह और उत्सव के संवाद चन्द्रगुप्त को पहले ही भेज दिये थे। उसे ताकीद कर दी थी कि वह धीरे-धीरे आये और जिस

प्रदेश में होकर आये व पाटलीपुत्र के उत्सव और उत्साह के समाचार प्रसारित करता हुआ आये।

वह धीरे-धीरे ही आ रहा था। जब लोगों का उत्साह और उत्सव चरम कोटि पर पहुँच जाये तभी उसे नगर में प्रवेश करना था, उससे पहले नहीं।

चन्द्रगुप्त को लेकर अनेक सच्ची-झूठी, अतिशयोक्तिपूर्ण बातें, कथाएँ, लोकोक्तियाँ आदि चल पड़ीं। उसे लेकर अनेक नृत्य-नाट्यों की रचनाएँ की गईं और वे खेले जाने लगे। सभी नाटकों में चन्द्रगुप्त को भारत के उद्धारक नायक के रूप में और कुमारदेवी को उसकी प्रेरक शक्ति के रूप में उपस्थित किया गया था। कई नाटकों में गणपतिनाग की पराजयवाले प्रसंग का समावेश भी कर लिया गया था।

जब पाटलीपुत्र में यह समाचार पहुँचा कि कल सवेरे चन्द्रगुप्त नगर में प्रवेश करनेवाला है तब तो लोगों का उत्साह सारी सीमाओं को ही पार कर गया। युवक उसे लाने के लिए कई योजनों तक सामने दौड़े चले गए।

सारा मार्ग लोगों ने तोरण और बन्दनवारों से सजा दिया था।

अन्त चन्द्रगुप्त आया। वह अपने विशालकाय हाथी धनराज पर आरूढ़ था। हाथी मन्द, मन्थर गति से झूमता-झामता चल रहा था। चारों ओर चन्द्रगुप्त के नाम का जयजयकार हो रहा था। लोग मगधपति को जैसे भूल ही गए थे।

पाटलीपुत्र के दुर्ग को देखते ही धनराज ने अपनी सूँड उठाकर उस महान प्राचीन किले का अभिवादन किया और लोग बिना कहे, बिना समझाये स्वतः ही उच्च स्वर में पुकार उठे—भारतेश्वर महाराज चन्द्रगुप्त की जय हो!

मगधेश्वर का स्थान भारतेश्वर ने ले लिया था।

और ठीक उसी समय दुर्गद्वार में से कुमारदेवी का सुनहरा रथ आता दिखाई दिया। उसे देखते ही लोगों ने जयकारा लगाया—महारानी भगवती कुमारदेवी की जय हो!

अब चारों ओर से महाराज चन्द्रगुप्त और महारानी कुमारदेवी की जय का घोष उठने लगा। लोगों ने मगधपति के स्थान पर भारतपति को

प्रतिष्ठित किया और पाटलीपुत्र को मगध के बदले समस्त भारत की राजधानी बना दिया।

कुमारदेवी आगे बढ़ी। विजयी सेनापति का स्वागत करने के लिए उसके हाथों में फूलों की माला थी। चन्द्रगुप्त उसे देखते ही हाथी से नीचे उतर आया। कुमारदेवी ने उसके गले में पुष्पहार पहनाकर जयध्वनि की—परमभागवत अतुलवीर्य परममाहेश्वर, राजराजेश्वर भारतचक्रवर्ती महाराज चन्द्रगुप्तदेव की जय हो!

लोग उमंगित होकर इस जयध्वनि को बार-बार दुहराने लगे।

जब कुछ शान्ति हुई तो चन्द्रगुप्त ने हाथ उठाकर उच्च स्वर में कहा—भारतरक्षिका भगवती कुमारदेवी की जय हो!

लेकिन लोगों ने तो कुमारदेवी को पहले ही भारत-सम्राज्ञी के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। उन्होंने दूने उत्साह से जयध्वनि की—महाराज्ञी भारत-सम्राज्ञी भगवती कुमारदेवी की जय हो!

उस रात पाटलीपुत्र और वैशाली के अभिनव युग्म का जन्म हुआ। उस रात राजतंत्र और लोकतंत्र का सुन्दर समन्वय हुआ। उसी रात चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी प्रेमतरु की छाँह में बैठे महान भारतीय साम्राज्य की मंगल कल्पना में विभोर होते रहे।

और उस रात वैशाली अथवा पाटलीपुत्र, दोनों में से किसी भी नगर में उत्सव और राग-रंग एक क्षण के लिए भी नहीं थमा।

३२. गुप्तों का गरुड़ध्वज

प्रजा प्रतीकों का निर्माण करती है और प्रतीक प्रजा का। प्रतीकों की प्रतिष्ठा प्रजा करती है और प्रजा को प्राण देते हैं प्रतीक। प्रतीकों से विरहित प्रजा होका यंत्र से विरहित जलयान के समान है, जो तूफानों में टिक नहीं सकती, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। ऐसी प्रजा एक बार गिरकर फिर उठ नहीं सकती; उठने के लिए उसके पास कोई संबल नहीं होता। जिस प्रजा के अपने प्रतीक

नहीं होते वह निरी भीड़ होती है। जो प्रजा अपने प्रतीकों को नहीं समझती वह पंगु होती है, वह चल नहीं सकती, व्यवस्थित और अनुशासित रहना उसे आ ही नहीं सकता।

प्रतीक के बिना गति नहीं, व्यवस्था नहीं, दैनन्दिन जीवन का उत्साह नहीं; और न एकत्रित होने का उल्लास ही होता है। प्रतीक प्रजा में प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं।

कुमारदेवी के मन में यह बात कभी से घर कर गई थी कि अब नये प्रतीकों की सृष्टि होनी चाहिए। नये प्रतीक ही प्रजा की शक्ति और सामर्थ्य को जगा सकते थे। नये प्रतीकों को प्रचलित करने का यही उपयुक्त समय भी था। नये स्वप्न अभी जाग रहे थे; नये आदर्श अभी मूर्त हो रहे थे, नये प्रतीक भी अभी ही अस्तित्व में आ सकते थे। उन्हें अभी ही अस्तित्व में ले आना उचित भी होगा।

विद्युत् वेग से काम करनेवाली कुमारदेवी ने एक क्षण भी नहीं गँवाया। वह तत्काल प्रतीकों के निर्माण में लग गई।

एक दिन सवेरे नगरी में घोषणा की गई। सुनकर प्रजाजन विचारमग्न हो गए। मगध की पताका हटाई जा रही थी। पाटलीपुत्र की पताका फहराई जाने को थी। गरुड़ध्वज की प्रतिष्ठा होने को थी। दुर्ग-प्राचीर के बाहर-वाले विशाल मैदान में इस नये प्रतीक की प्रतिष्ठा का समारोह किया जाने को था।

अभी तक सुगंगप्रासाद पर मगध का मयूरध्वज फहराता था।

आज पाटलीपुत्र के नये झण्डे का निर्माण हुआ था। गुप्तों का गरुड़-ध्वज पाटलीपुत्र का झण्डा बनाया गया था। अब से सुगंगप्रासाद पर यही नया झण्डा लहराने लगा था।

अपने विशाल पंख से आकाश में थाप मारनेवाला, आकाश को भर देनेवाला पक्षीराज उस झण्डे पर दिखाई दिया। आकाश को नापने की उसकी शक्ति लहराते हुए उस झण्डे पर दृष्टिगोचर हो रही थी। लोगों ने पहाड़ जितने ऊँचे स्तम्भ पर पहली बार उस प्रतीक को देखा। उसकी शक्ति और भव्यता लोगों के मन में बस गई। समवेत स्वर में वे पुकार उठे :

'गुप्तों का गरुड़ध्वज ऊँचा रहे ! जय हो गरुड़ध्वज की ! जय हो गुप्त-राज चन्द्रगुप्त की !'

गुप्तों का गरुड़ध्वज आज से पाटलीपुत्र का राजध्वज बन गया था।

फिर तो नित-नूतन प्रतीकों की सृष्टि होने लगी। सिंह पर आरूढ़ लक्ष्मी का प्रतीक आया। गजराज दोनो ओर से लक्ष्मी को निहार रहे थे। ये प्रतीक पाटलीपुत्र के सैन्यबल के सूचक थे।

भाषा में भी परिवर्तन होने लगा। संस्कृत की मधुर स्वर-लहरी वातावरण में गूँजने लगी। प्राकृत का वर्चस्व समाप्त हुआ। संस्कृत देश-भाषा और राज-काज की भाषा बनने लगी। लोग अपनी आशाओं, आकांक्षाओ, मनोभावों और स्वप्नों को इस भाषा में प्रकट करने लगे।

भाषा के बदलते ही लोगों के मन भी बदल गए। साकेत-अयोध्या के वातावरण में चन्द्रगुप्त बाल्यकाल से ही रहा था। बीच में कृतक-तनय के लोभ में वह उस वातावरण से वंचित हो गया था। अब उसने पुनः उस वातावरण को जीवित करने का प्रयत्न किया।

उसने भागवत धर्म की स्थापना आरम्भ की। इस धर्म का बहिरंग सांसारिक, परन्तु अन्तरंग आध्यात्मिक था; रंग संसार का, परन्तु प्राण समर्पणमय था। बौद्धों ने भिक्षुओं की भीड़ लगा दी, उनका इतना पतन हुआ कि राज्याश्रित विहारों में केवल भोजन के लिए जीने लगे। उनका काम अब पूरा हो गया था। अपने युग में उन्होंने देश की काफी सफाई की, परन्तु अब स्वयं दलदल में थे। मूल गौरव नष्ट हो चुका था, केवल थोथा आचरण रह गया था। जैन भी निष्क्रिय हो गए थे। उनकी रुचि संसार की अपेक्षा शून्य में अधिक थी। भगवान शंकर के उपासक उठे तो थे बड़े दम-खम से, लेकिन वह केवल प्रतिक्रिया थी। प्रतिशोध से भरी हुई। उनके पास सृजन का कोई विशाल और व्यापक बल नहीं था।

अब भागवत धर्म को चन्द्रगुप्त ने गुप्तवंश का राजधर्म बनाया। एक नया प्रतीक ही उसने प्रजा के समक्ष रखा। भागवत वह है जो संसार की शोभा बढ़ाये, संसार को सम्पन्न करे, संसार को सुन्दर बनाये और फिर भी जिसें यह दम्भ न हो कि उसने ऐसा अपनी शक्ति से किया है, और जो अपने

सारे कर्तृत्व को अदृश्य के चरणों में समर्पित कर दे। चन्द्रगुप्त ने अपनी विजय को भगवच्चरणों में समर्पित कर दिया। विजेता वह नहीं भगवत था। उसी ने उसे जिताया, क्योंकि युग की वह माँग थी, आवश्यकता थी; वह स्वयं तो किसी की प्रत्यंचा से छूटा हुआ तीर था।

नये प्रतीकों की सृष्टि ने प्रजा को नयी चेतना और नये प्राणों से पूरित कर दिया।

लेकिन सजग और जागरूक रहने की भी अभी बड़ी आवश्यकता थी। गणपतिनाग अभी था। प्रवरसेन भी था। शिशु राजकुमार को वह पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते थे और इसके लिए अवसर की प्रतीक्षा में थे।

इसलिए आवश्यक था कि भारत-भर में वैशाली और पाटलीपुत्र के एकीकरण की घोषणा कर दी जाये। ऐसा करके ही पाटलीपुत्र और वैशाली पर ताक लगाये बैठे रहनेवालों के हौसले पस्त किये जा सकते थे।

एक कौमुदी धवल रात में चन्द्रगुप्त सुगंगप्रासाद के सर्वोच्च शिखर की चन्द्रशाला में बैठा था। कुमारदेवी उसके सामने थी। निर्मल प्रेमधारा-जैसी चाँदनी आकाश से बरस रही थी। नीरस भी रसिक हो जाये, कल्पनाशून्य भी कल्पना की पाँखों पर चढ़कर गगन में विचरण करने लगे ऐसा वह समय और ऐसी वह रात थी।

सारे पाटलीपुत्र नगर की छटा यहाँ से दिख रही थी। उसके सौधों और हर्म्यों के स्वर्णकलश चाँदनी में जगमगा रहे थे। अद्‌भुत और अनुपम थी नगर की शोभा। छोड़कर स्वर्ग में भी जाने को जी न चाहे ऐसी सुन्दर शोभा थी नगर की।

चन्द्रगुप्त देख रहा था; कुमारदेवी भी देख रही थी।

स्थान-स्थान पर स्वर्ण-दीपों से प्रकाशित रत्नों की किरणें आकाश के तारों की भाँति चमक रही थीं।

चन्द्रगुप्त कुमारदेवी को देख रहा था। कुमारदेवी चन्द्रगुप्त को देख रही थी। दोनो के हृदयों में सँपने अँगड़ाइयाँ ले रहे थे।

दोनो डर रहे थे कि कहीं शब्दों में व्यक्त करने से उन सपनों का सौन्दर्य

कलुपित न हो जाये। सौन्दर्य शब्दहीन, वाचातीत रहना चाहता था। प्रेम को शब्दों का बोझ सहन ही कब हुआ है ?

प्रेम की कोंपल उनके हृदयांगन में फूट रही थी। वह फूटी और देखते-ही-देखते वृक्ष बनकर झूमने लगी। लेकिन उनके मन चाह रहे थे कि उस प्रेम-तरु की छाँह में बैठे रहें; निःस्पन्द, निर्वाक्, बस बैठे ही रहें और वह प्रेमतरु इसी प्रकार झूमता रहे।

स्त्री और पुरुष के जीवन में ऐसे क्षण क्वचित् ही आते हैं। ये क्षण किसी महान भविष्य के सूचक होते हैं। बाकी तो लोगों ने प्रेम बेचारे की विडम्बना ही कर रखी है—शब्द, शब्द और थोथे शब्द, निर्हेतुक, निरर्थक परिहास, जल्पना, जड़ विनोद, ठिठुरी हुई प्रणयवार्ता, बासी प्रेमालाप—दुनिया में यह है बेचारे प्रेम की छीछालेदर।

'सटे हों कपोल से कपोल, होती हो मन्द, अति मन्द, अस्फुट-सी बात'—यह प्रेम तो केवल राम और सीता के लिए होता है और ऐसा ही प्रेम लव-कुश के जन्म का कारण बनता है; ऐसा प्रेम युग-परिवर्तनकारी आत्माओं का जनक होता है।

इस समय वहाँ ऐसे ही प्रेम का अभ्युदय हो रहा था।

उन दोनो के बीच निःशब्द वीणा रखी थी, लेकिन उसके तारों में प्रेम की झंकार सोई हुई थी।

सहसा चन्द्रगुप्त ने वहाँ एक स्वर्णमुद्रा रख दी। मुँह से वह कुछ न बोला।

कुमारदेवी ने उस मुद्रा को देखा और उसके ओठों पर एक अतिशय मधुर मुस्कराहट छा गई। उस मुस्कराहट ने उसके नेत्रों को अद्भुत आलोक से दीप्त कर दिया। उसका चेहरा प्रेम की कोमलता से मंडित हो उठा।

उसने चन्द्रगुप्त की ओर देखा और उसे भी चन्द्रगुप्त का चेहरा वैसा ही प्रेम-मंडित दिखाई दिया।

उसने वह स्वर्णमुद्रा उठा ली, लेकिन मुँह से वह भी कुछ न बोली।

उस क्षण से वह स्वर्णमुद्रा पाटलीपुत्र की राजकीय मुद्रा (सिक्का) बनी। उस सिक्के के एक ओर कुमारदेवी और चन्द्रगुप्त खड़े थे और दूसरी ओर

'लिच्छवयः' शब्द उत्कीर्ण था—न थी वैशाली और न था पाटलीपुत्र, न था मगध और न गुप्त और न ही लिच्छवी; था 'लिच्छवयः', जो इस बात का प्रतीक था कि कुमारदेवी और चन्द्रगुप्त एक हो गए हैं; दोनो मिलकर लिच्छवयः हो गए हैं।

कुमारदेवी ने अपना सुन्दर हाथ चन्द्रगुप्त की ओर बढ़ाया। चन्द्रगुप्त ने उस बढ़े हुए हाथ को आदरपूर्वक अपने हाथ में ले लिया। हाथ में हाथ के लिये जाते ही उस निःशब्द वीणा के तारों में प्रेम झंकृत हो उठा।

दोनो मंत्रमुग्ध-से उस झंकार को सुनते रहे, उस झंकार को आत्मसात् करते रहे।

और स्नेह-सपन अँगड़ाइयाँ लेकर उठने लगे....

....स्नेह-सपन की उस नींद से उन्हें जगाया एक जयघोष ने।

सुगंगप्रासाद के नीचे सैकड़ों और हजारों नर-नारी, सैनिक और नागरिक खड़े जयध्वनि कर रहे थे—महारानी भगवती कुमारदेवी की जय हो! परमभागवत महाराज चन्द्रगुप्तदेव की जय हो!

परिस्थिति की वास्तविकता को समझने में उन्हें कुछ समय लगा।

दो ही क्षण बाद हरिषेण मंत्री वहाँ आता दिखाई दिया। उसने हाथ बाँधकर निवेदन किया—महाराज, राजकीय स्वर्णमुद्राओं के प्रचलित किये जाते ही प्रजाजन हर्ष-विभोर हो गए। उन्होंने प्रेम से उन मुद्राओं का स्वागत किया। उनके सोलह बानी शुद्ध स्वर्ण ने लोगों को विशेष रूप से प्रभावित किया। इधर मगध के राजा राजकीय मुद्राओं में खोट करने लगे थे। मिलावटवाले सिक्कों को खरे सिक्कों की भाँति चलाते थे। इस मुद्राचोरी को प्रजा करचोरी से भी अधिक जघन्य अपराध मानती थी। अब महाराज की सौ टंच खरे सोने की स्वर्णमुद्रा देखकर लोगों को विश्वास हो गया कि मुद्राचोरी का युग समाप्त होकर सच्चे मूल्यांकन का, नैतिक शुद्धि का युग प्रारम्भ हुआ है। इसी के उपलक्ष्य में हजारों प्रजाजन नीचे मैदान में एकत्रित हुए हैं।

'लिच्छवयः' शब्द ने भी लोगों पर जादू का-सा असर किया। राजा-

रानीवाली उस मुद्रा ने रामचन्द्र के कई युगों बाद पहली बार नारी को पुरुष के समकक्ष प्रतिष्ठित कर दिया था।

वह स्वर्णमुद्रा चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी के एक होने की, वैशाली-पाटलीपुत्र के एक होने की, गुप्तों और लिच्छवियों के एक होने की घोषणा थी। आज से सब एक हो गए थे। सब लिच्छवी थे, सब गुप्त थे; सब मगध के थे; सब वैशाली के थे; सब भारत के थे।

हरिषेण मंत्री ने पुनः कहा—लोग नीचे एकत्रित हुए हैं। महाराज और महारानी उन्हें दर्शन दें। चन्द्रशाला पर खड़े होकर लोगों को दर्शन दिया जाये। यह पल महान भारत के किसी महान नरपुंगव के आगमन का मंगल-चरण हो। महाराज इधर आयें....

चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के वहाँ देखे जाते ही लोगों ने उत्साह के अतिरेक में गगनभेदी घोष किया—महारानी कुमारदेवी की जय हो! महाराज चन्द्रगुप्त की जय हो!

३३. सोलह वर्ष बाद

वही चन्द्रशाला थी। वही सुगंगप्रासाद था। वही धवल शिखर थे। वही चाँदनी थी। वही रात थी। वही पाटलीपुत्र नगर, भव्य और महान, मानो नींद में सोया पड़ा हो, इस प्रकार शान्त था।

वही समय था। वही पुरानी बातें हो रही थीं। संस्मरणों की मधुरता वातावरण में रम रही थी। कुमारदेवी वहाँ बैठी थी। चन्द्रगुप्त था। सोलह वर्ष का समय बीत गया था, लेकिन सब-कुछ अभी कल के-जैसा ही लग रहा था। अन्तर केवल इतना था कि उन बीते हुए सोलह वर्षों के साक्षी-स्वरूप इस समय उन दोनों के बीच में एक सोलह वर्ष का अत्यन्त तेजस्वी तरुण बैठा हुआ था। उसके नयनों में समस्त भारतवर्ष का तेज प्रतिम्बित हो रहा था। वय के परिमाण में उसकी देह सुदृढ़ और बड़ी लगती थी। उसे देखते ही एक बार तो देखनेवाले पर उसका रोब गालिब हो जाता था।

लगता था जैसे किसी नरसिंह को देख रहे हों और सहसा ही अभिवादन में दोनो हाथ उठ जाते थे। लगता था जैसे विधाता ने उसे गढ़ा ही हो लोगों का नेतृत्व करने के लिए। देखकर लगता था मानो कुमारदेवी का स्वप्न मूर्त हो गया हो!

प्रतापी वह था, तेजस्वी था, शक्तिशाली था, रणकुशल था, लेकिन सबसे बड़ी बात यह कि इस छोटी उम्र में भी निर्णय करने की अद्भुत क्षमता उसमें भी। समस्या कितनी ही जटिल क्यों न हो वह तत्काल निर्णय करता था और उसका किया हुआ निर्णय क्वचित् ही गलत होता था। कुमारदेवी उसकी प्रतिभा के इस चमत्कार को अनेक बार परख चुकी थी और चन्द्रगुप्त के लिए तो तरुण का यह गुण 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' के ही समान था।

चन्द्रगुप्त अपने उस यशस्वी बेटे के मुख को टक लगाये इस प्रकार देख रहा था मानो अन्तिम बार देख रहा हो; मानो इसके बाद देखने को नहीं मिलेगा; देख क्या रहा था जैसे दृष्टि की राह बेटे को पी रहा था।

वह समझ चुका था कि अब सारे भारत का भविष्य इस कुमार के हाथ में है। परिश्रमपूर्वक स्थापित किये हुए उसके साम्राज्य का उत्तरदायित्व अब उस तरुण के कन्धों पर था। उस भार को वहन करने की कुमार की सामर्थ्य जहाँ उसे आनन्दित कर रही थी वहीं उसके मन में विषाद की सृष्टि भी हो रही थी।

मंत्री हरिषेण ने खबर दी थी कि मगध का वह शिशु राजकुमार बड़ा हो गया था। और प्रवरसेन का आश्रय छोड़कर मथुरा के यादव कीर्तिसेन के यहाँ चला आया था, क्योंकि कीर्तिसेन ने उसे अपनी पुत्री देने का निश्चय किया था। नागसेन अभी तक अपनी पराजय को भूला न था। अहिछत्र के अच्युतदेव और गणपतिनाग के साथ मिलकर उसने चन्द्रगुप्त से नवनिर्मित साम्राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र की रूपरेखा बनाई थी।

इस बात की अभी पुष्टि नहीं हो पाई थी; परन्तु अफवाह ऐसी ही थी। उसी की पुष्टि के लिए हरिषेण मंत्री की प्रतीक्षा की जा रही थी; और चन्द्रगुप्त, कुमारदेवी और कुमार समुद्रगुप्त इस समय बैठे इसी विषय पर चर्चा कर रहे थे।

चन्द्रगुप्त को यह चिन्ता सता रही थी कि यदि एक ओर प्रवरसेन ने सिर उठाया, दूसरी ओर मथुरा में षड्यंत्र हुआ और सौराष्ट्र, आनर्त, लाट आदि ने उनका साथ दिया तो मेरे साम्राज्य का क्या होगा, तब तो गुप्तों का नाम-निशान ही मिट जायेगा।

तभी कुमारदेवी ने कहा—लेकिन मंत्री हरिषेण तो एक नई ही बात कहते हैं। वह कहते हैं कि हम चारों ओर से घिरते जा रहे हैं। और यह अभी बच्चा है। सामने गणपतिनाग, प्रवरसेन, अच्युत, कीर्तिसेन, नागसेन आदि अनेक अनुभवी योद्धा हैं।

यह सुनकर समुद्रगुप्त जोश में आकर बोल उठा—मा, तुम मुझे कब तक नन्हा कहती रहोगी? सोलह वर्ष का तो मैं हो गया। अब मैं भी महा-राज के साथ सेनाओं का संचालन और नेतृत्व करूँगा। अब यदि तुमने बच्चा कहा तो यवनी को बुलाकर यहीं पालना डलवाकर उसमें लेट जाऊँगा और तुम कहोगी कि बेटा समुद्रगुप्त उठ, सेना का संचालन कर, तब भी नहीं उठूँगा, अँगूठा चूसता रहूँगा और कहूँगा कि मैं तो नन्हा बच्चा हूँ....

कुमारदेवी हँस पड़ी और बोली—बेटा, तेजस्विता तो तुझमें प्रचुर है, परन्तु फिर भी नन्हा तो तू है ही।

चन्द्रगुप्त बिना कुछ बोले मा-बेटे के इस विवाद को सुनता और बेटे को स्नेहपूर्वक देखता रहा।

'लेकिन मा, तुम तो कहा करती हो कि लिच्छवी नन्हा नहीं होता, निर्बल नहीं होता। तो क्या मैं लिच्छवी नहीं? सिंह का तो शावक भी वन को गुँजा देता है। तुम्हीं ने तो बताया है कि काठ का सिरहाना लगानेवाले लिच्छवी तरुणों ने वैशाली को वैशाली बनाया। कठोर जीवन के बिना भी भला कोई सैनिक बन सकता है मा? और सैनिक को विपत्तियों से क्या डर?'

'कहता तो तू ठीक है बेटा। लेकिन सुनते हैं कि बात बड़ी बेढब हो गई है। सच-झूठ का पता तो हरिषेण के आने पर ही चलेगा; लेकिन कहते हैं कि काचदेव भी शत्रु-पक्ष में जा मिला है। यदि यह सच....'

'हाँ देवी, सच ही है। इसमें सन्देह की जरा भी गुंजाइश नहीं। काच-देव निश्चयपूर्वक शत्रुओं से जा मिला है।'

ऊपर आनेवाले के इन शब्दों को सुनकर तीनों व्यक्ति चौंक पड़े । सिर उठाकर देखा तो सामने हरिषेण मंत्री खड़ा था । तीनों को प्रणाम करके मंत्री वहीं सामने एक आसन्दी पर बैठ गया। उसका चेहरा गम्भीर था। अवश्य समाचार भी गम्भीर होने चाहिए ।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा । अंगदेश की चम्पावती से समाचार आये थे कि वहाँ विद्रोह हो गया । काचदेव वहीं का प्रदेशपति था । सारी बात को जाने बिना सहसा किसी निर्णय पर पहुँचा नहीं जा सकता था । पता नहीं विद्रोह की प्रेरणा किसने की ? काचदेव ने, चम्पावती के नागरिकों ने या उनकी ओट में किसी बाहरी शक्ति ने ? यदि विद्रोह काचदेव ने किया है तब तो भीषण गृहयुद्ध छिड़ जायेगा ।

इतने में समुद्रगुप्त ने निश्चयात्मक स्वर में कहा—मा, तुम आज्ञा दो तो मैं स्वयं चम्पावती चला जाऊँ और अपराधी को ढूँढ़ निकालूँ । लेकिन फिर यह मत कहना कि ऐसा क्यों किया ? अपराधी बिना दंड के सुधर सकते हैं—इसे भिक्खु भले ही मानें, मैं नहीं मानता । राजकाज बिना दण्ड-भय के नहीं चल सकता । काचदेव बड़ा भाई हो या कोई भी हो । अपराधी को दण्ड, योग्य का आदर, विद्वान का सम्मान, निरपराधी का रक्षण ये मेरे अटल नियम हैं । अपराधी कोई भी हो, चाहे बड़ा भाई ही क्यों न हो....

'अरे बेटे, तब तू जनमा भी नहीं था । उस समय काचदेव न होता तो इस गुप्त-साम्राज्य की नीव भी नहीं रखी जा सकती थी । काचदेव न होता तो आज हम पाटलीपुत्र में न होते । बेटा, वह अपराधी हुआ भी तो उसे मनाने और समझाने के लिए स्वयं मुझे चम्पावती जाना होगा । कुछ भी हो, है तो वह तेरा बड़ा भाई ही !'

'क्यों मा, जिस महाभारत की कथा तुम सुनाती हो उसमें का कर्ण क्या अर्जुन का बड़ा भाई नहीं था ? राज्य खोना और राज्य सँभालना ये दोनों काम एक साथ तो स्वयं भगवान विष्णु भी नहीं कर सकते, फिर हम किस खेता की मूली हैं ! मैं तो यही जानता हूँ कि अपराधी अपराधी होता है । बड़ा भाई है तो उसे आदर दिया जायेगा, समझाया जायेगा, मनाया जायेगा, समझौते की कोई सूरत निकाली जायेगी. लेकिन वह गुप्त-साम्राज्य की जड़

उखाड़ने का काम करे तो उसे कैसे सहा जाये; तुम्हीं बताओ ? मैं तो समझता हूँ कि इस समय इन बातों के लिए भी हमारे पास समय नहीं होना चाहिए। तुम आज्ञा दो तो मैं तत्काल वहाँ जाकर पता लगा आऊँ।'

'तेरे सिर बेटा, यहीं बड़े-बड़े उत्तरदायित्व हैं। तू चला जायेगा तो उन्‍हें कौन पूरा करेगा ? अभी तो इस नगर पर ही भय के बादल मँडरा रहे हैं।'

'चम्पा का विद्रोह अलग और एकाकी विद्रोह नहीं है युवराज। यह शृंखला की एक कड़ी है। चम्पा में विद्रोह हो। उसे दबाने के लिए यहाँ से सेना जाये तो मथुरा का यादव उठे। उसे रोकने के लिए कोई जाये तो कांचनका का प्रवरसेन उठ खड़ा हो।' हरिषेण ने समझाते हुए कहा, 'इस प्रकार हमें घेरने और एक साथ कई मोर्चों पर युद्ध में फँसाने की यह योजना प्रतीत होती है। हमारी जीत तभी हो सकती है जब हम शत्रुओं से एक-एक कर लड़ें। हमें यही सोचना होगा कि इस तरह कैसे लड़ा जा सकता है!'

वातावरण गम्भीर हो गया। किसी को चम्पावती जाना ही होगा। कौन जा सकता है ? समुद्रगुप्त नहीं, वह अनुभवहीन है। महाराज को ही जाना होगा। यह सोचकर कुमारदेवी सहसा गम्भीर हो उठी।

अब पहली बार चन्द्रगुप्त बोला—यों देखा जाये तो यह हमारा घरेलू झगड़ा है। कारण मेरी समझ में आ गया। काचदेव को अवश्य एक बात का बुरा लगा होगा।'

'किस बात का ?'

'देवी, अब उस पर विचारने से लाभ ही क्या ? हमें अकेला मगध या अकेला पाटलीपुत्र तो सँभालना नहीं है। सम्पूर्ण भारतवर्ष को सँभालने के दृष्टि-कोण से ही सोचना-विचारना चाहिए। युवराजपदीय कुमारामात्य का पद समुद्रगुप्त को मिला, यह काचदेव को अच्छा नहीं लगा। परन्तु प्रश्न मेरा, तुम्हारा, राजपरिवार और सन्तान-प्रेम का नहीं भारतवर्ष का है। जो योग्य है अधिकार उसी को मिलेगा और तभी साम्राज्य की रक्षा हो सकेगी। यह बात उसे समझानी होगी। इसलिए मैं ही जाता हूँ। सेना लेकर जाना उचित नहीं। वह पुत्र है। मैं पिता हूँ। तुम सब मुझे जाने की अनुमति दो। हरि-षेण, इस समय यही एक उपाय मेरी समझ में आता है। सेना ले जाने से

तो गृहयुद्ध छिड़ने की आशंका है। सेना का नाम सुनकर वह और भी सशंक हो जायेगा। यहाँ बुलाने से भी कोई लाभ नहीं। मान लो, न आये, तब ?' इसलिए मुझी को जाने दो।'

चन्द्रगुप्त की इस बात ने सभी को चिन्तित कर दिया। महाराज को अकेला शत्रुओं के बीच जाने दें; और क्या शत्रु उन्हें लौट भी आने देंगे ?

न 'हाँ' कहते बनता था, न 'ना'। बात बिलकुल छोटी थी, पिता-पुत्र के बीच की; परन्तु परिणाम उसका बहुत बड़ा था, साम्राज्य रहेगा या नष्ट हो जायेगा !

अन्त में हरिषेण बोला—महाराज, आपका जाना ही उचित है। संभवतः आपका पितृ-प्रेम उसे सद्बुद्धि दे और वह समझ जाये तो शत्रुओं की सारी बाजी ही उलट जायेगी। इस समय पाटलीपुत्र के दो दावेदार उठ खड़े हुए हैं। एक मगधपति और दूसरा काचदेव। दोनो को हमारे शत्रुओं का समर्थन प्राप्त है दोनो को लेकर युद्ध होगा, उसमें दोनो ही मर मिटेंगे. साथ ही पाटलीपुत्र और गुप्त-साम्राज्य को भी मिटाते जायेंगे। हमें इस परिस्थिति को बनने से रोकना है। पहले समझौते से और फिर एक सर्वव्यापी युद्ध के द्वारा। जड़ को जमने से पहले ही उखाड़ देना चाहिए।

'क्या मेरे जाने से काम नहीं चलेगा हरिषेण ?' कुमारदेवी ने कहा।

'लेकिन मैं ही क्यों न चला जाऊँ ?' समुद्रगुप्त ने कहा।

'नहीं, दूसरा कोई नहीं, अकेले महाराज ही जायेंगे।' हरिषेण ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'जो महाराज के किये हो सकता है वह किसी के भी किये नहीं।'

तय हो गया कि चन्द्रगुप्त जायेगा और अभी ही जायेगा।

पाटलीपुत्र में तो किसी को पता भी नहीं चलना चाहिए कि महाराज चन्द्रगुप्त कहीं गये हैं, नगर में नहीं हैं।

चन्द्रगुप्त तैयार होने के लिए अपने प्रकोष्ठ में गया। हरिषेण ने ताली बजाई। द्वारपाल के आने पर उसने कहा—महाराज का शीघ्रगामी अश्व तैयार करो।

कुमारदेवी की छाती भर आई। वह उठकर अन्दर के प्रकोष्ठ में चली

गई। उसने महाराज के कन्धे पर हाथ रख दिया। चन्द्रगुप्त ने चौंककर पीछे देखा। कुमारदेवी के चेहरे पर उसे अकल्पित वेदना दिखाई दी। उसकी आँखों में आँसू भी छिपे बैठे थे।

'अरे, अरे, देवी! यह तो राजधर्म है। हमें इसका पालन करना ही होगा। राजा के लिए पिता, पुत्र, बन्धु-बान्धव सबसे प्रिय होता है राजधर्म। यदि देश ही सुरक्षित न रहा तो राजधर्म रहेगा कहाँ? मुझे जाना ही होगा देवी!'

'लेकिन इस बार न जाने क्यों ऐसा लग रहा है कि आपको अकेला न छोड़ूँ, आपके साथ चलूँ।'

'तो फिर यहाँ क्या होगा? यहाँ है ही कौन? देखा नहीं तुम्हारे साथ रहने पर समुद्र कितना प्रगल्भ हो जाता है। वह मातृभक्त है। मैं राज्य की बाग-डोर उसे सौंपता हूँ। तुम्हारे यहाँ रहते मैं निःश्चन्त रहूँगा। इसलिए तुम यहीं रहो। भय इस नगर पर भी मँडरा रहा है। तुम समुद्रगुप्त को सँभालो। भारत युगों तक याद रखे ऐसा पुत्र तुमने दिया है। उसकी तुलना में मैं क्या हूँ? वह भारत का भविष्य है। मैं तो भूतकाल हुआ। तुम यहाँ रहकर उसका मार्गदर्शन करो....'

'पता नहीं वहाँ क्या हो? आप सेना लेते जाइए।'

'देवी, मैं पिता हूँ, वह पुत्र है। वह सेना लेकर आये तो भी क्षम्य है, मैं नहीं। मुझे तो अकेला ही जाना होगा और समझा-बुझाकर उसे अनुकूल करना होगा।'

'महाराज! देव! ऐसा लगता है मानो आपको अन्तिम बार देख रही हूँ।'

'अरे देवी, प्रेम क्या नहीं देखता? बहुत कुछ गलत देख लेता है और बहुत कुछ सच। अच्छा, अब चलूँ।'

तभी हरिषेण वहाँ आया। वह चिन्तित लग रहा था। उसने कहा—महाराज, अभी गुप्तचर ने समाचार दिये हैं कि विदिशा का नागराज सदा-चन्द्र भी इसमें सम्मिलित है। इस षड्यंत्र का प्रणेता प्रवरसेन नहीं, गणपति-

नाग है। अब महाराज को जल्दी निकल जाना चाहिए। समय बिलकुल ही नहीं है....

चन्द्रगुप्त बाहर निकल आया। वह धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगा। कुमारदेवी टक लगाये उसे देखती रही।

जब वह दिखना बन्द हो गया तो कुमारदेवी भग्नहृदय की भाँति नीचे बैठ गई। उसने अत्यन्त व्यथित होकर कहा—समुद्रगुप्त, बेटा! दौड़! अपने पिता से मिल तो आ। अब वह लौटकर पाटलीपुत्र नहीं आयेंगे। जा-बेटा, जा....राजधर्म! आह रे यह राजधर्म!

'ऐसे इस राजधर्म को सिरजा किसने है मा?' समुद्रगुप्त जाते-जाते रुककर खड़ा हो गया और बोला, 'तुम बातें तो करती हो राम की, रघुवंशियों की। और जब ऐसा अवसर आता है तो दुर्बल हो जाती हो। कल को मुझे भी युद्ध में जाना होगा।'

'बेटा, तूने प्रेम का—नारी के प्रेम का अनुभव नहीं किया है। किसी भी पुरुष में उसका अनुभव करने की सामर्थ्य नहीं है। मुझे लगता है कि मैं अकेली रह गई हूँ। बेटा, जा दौड़, उनसे मिल तो आ!'

और वह अवसन्न वहीं बैठी रह गई। समुद्रगुप्त दौड़ता हुआ नीचे चला गया।

वातावरण में मानो इस अर्थ की वीणास्पन्दित गीत-पंक्ति लहरा रही थी—वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।